

गंगा-पुराण

(पुराणों से उद्धृत गंगा-प्रसंगों का संकलन)

संकलक एवं सम्पादक
राजर्षि गांगेय हंस



2.5

गंगा पुराण



गंगा पुराण

संकलक एवं सम्पादक
राजर्षि गांगेय हंस

प्रकाशक
श्रीशङ्कराचार्य गंगा सेवा न्यास
श्रीविद्यामठ, बी. ६/९७, केदारघाट, वाराणसी - १ (उत्तर प्रदेश)



संकलक एवं सम्पादक

राजर्षि गांगेय हंस

प्रकाशक

श्रीशङ्कराचार्य गंगा सेवा न्यास

श्रीविद्यामठ, बी. ६/९७, केदारघाट, वाराणसी - १ (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ

ISBN : 978-81-9287-10-1-1

गंगा दशहरा संवत् २०७१ विक्रमी, श्रीकाशी

मूल्य - गंगा सेवा

मुद्रक

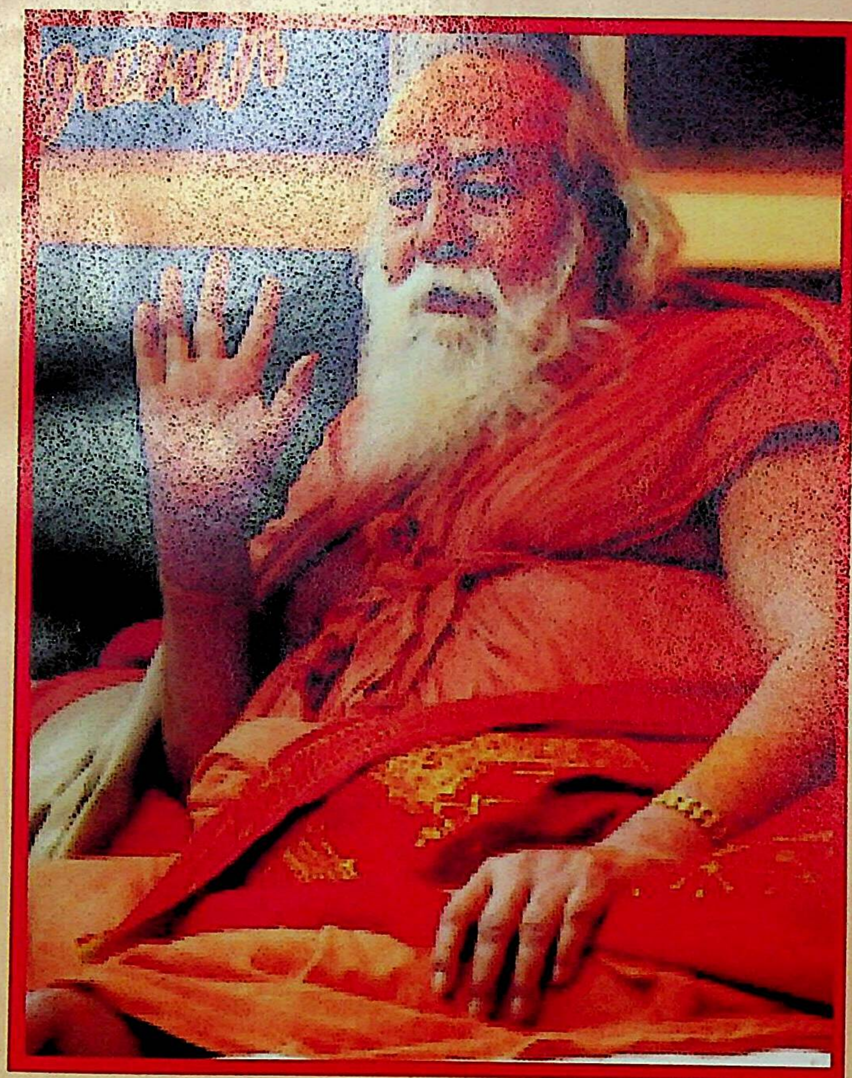
श्रीजी प्रिण्टर्स, नाटी ईमली, वाराणसी-०१

फोन : ०५४२-२२०११०४, २२०७६३४

अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर

जगद्गुरु शङ्कराचार्य

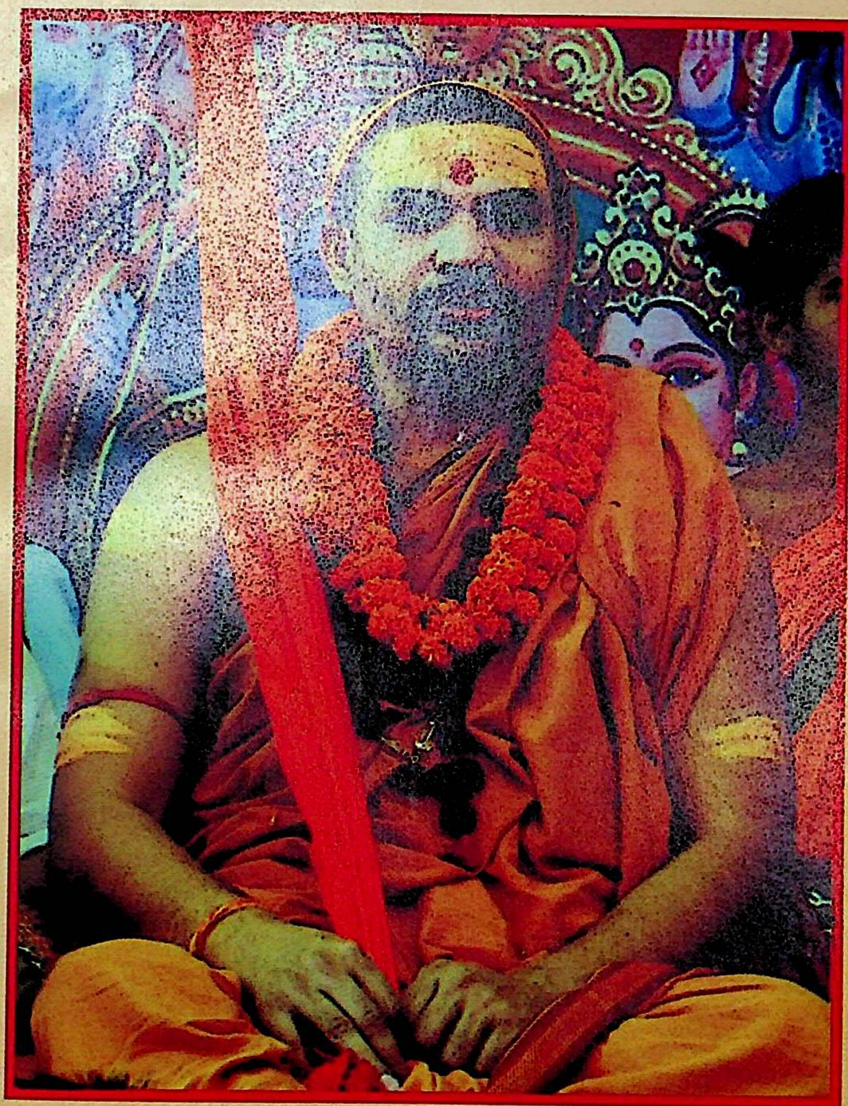
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज



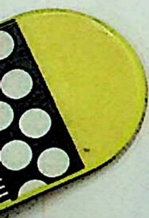
विश्वं दर्पण-दृश्यमान-नगरी-तुल्यं निजान्तर्गतम् ।
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ॥
यः साक्षात् कुरुते प्रबोध-समये स्वात्मानमेवाद्वयम् ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

(प्रस्तुत ग्रन्थ गुरु-कृपा-प्रसूत है)

-गांगेय हंस



सनातन धर्म एवं मानवीय मूल्यों के सार्वभौम संरक्षक
पूज्य दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी महाराज
जिनकी प्रेरणा एवं करुणापूर्ण सौजन्य का प्रतिफल है प्रस्तुत ग्रन्थ 'गंगा-पुराण'
-गांगेय हंस





जय-जय गंगे

'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

शिष्य प्रतिनिधि - पूज्य शङ्कराचार्य जी महाराज
सार्वभौम संयोजक - गंगा सेवा अभियानम्
उपाध्यक्ष - अ.भा. श्रीरामजन्मभूमि पुनरुद्धार समिति
न्यासाध्यक्ष - विद्याश्री धर्मार्थ न्यास
सचिव - अयोध्या श्रीरामजन्मभूमि रामालय न्यास

तिथि - प्लवङ्ग २०७१ ज्येष्ठ कृष्ण ४
दिनाङ्क १८ मई २०१४ ई.
स्थान श्रीकाशी

गाङ्गंवारि पुनातु नः

गंगा भारत की आत्मा है । भारत की कल्पना बिना गंगा के नहीं हो सकती । देश में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में गंगा के लिए सम्मान की भावना है । व्यक्ति यदि अपने जीवन में गंगा में स्नान न कर सके अथवा गंगा का दर्शन न कर सके तो उसके भी मन में यह इच्छा होती है कि कम से कम उसकी अस्थियाँ तो गंगा में प्रवाहित हो ही जाएँ । अनेक भारतीय अपने घर में गंगाजल अवश्य ही रखता है । सनातनधर्मियों का सबसे बड़ा पर्व कुम्भ इसी गंगा नदी के किनारे आयोजित होता है ।

पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा गंगा की अविरलता-निर्मलता एवं उनके सर्वोच्च सम्मान की प्राप्ति के लिए श्रीशङ्कराचार्य गंगा सेवा न्यास के तत्त्वावधान में गंगा सेवा अभियानम् का गठन किया गया है । इस अभियानम् की माँग पर गंगा को राष्ट्रनदी घोषित किया गया । परन्तु केन्द्र सरकार द्वारा अब तक जमीनी स्तर पर गंगा को न तो निर्मल बनाया गया और न ही उन पर बने बाँधों को हटाकर अविरल ही किया गया । राष्ट्रनदी का सम्मान भी अब तक माता गंगा को प्राप्त नहीं हुआ है । अतः पूज्य शङ्कराचार्य जी महाराज की प्रेरणा से माता गंगा के लिए अनेक धरना-प्रदर्शन, रैली, सभा एवं यहाँ तक कि आमरण अनशन भी हुए हैं ।

अभियानम् की ओर से निरन्तर गंगा की सेवा की जा रही है । प्रस्तुत ग्रन्थ 'गङ्गा-पुराण' भी गंगासेवा रूपी महायज्ञ की एक समिधा है । गंगा सेवा में ऐसे ही अन्य अनेक समिधाओं की हमें अपेक्षा और आवश्यकता है । माता गङ्गा पर लिखी गयी कोई भी सार्थक कृति, रचना एवं काव्य को प्रकाशित कराने के लिये श्रीशङ्कराचार्य गङ्गा सेवा न्यास कृतसंकल्पित है ।

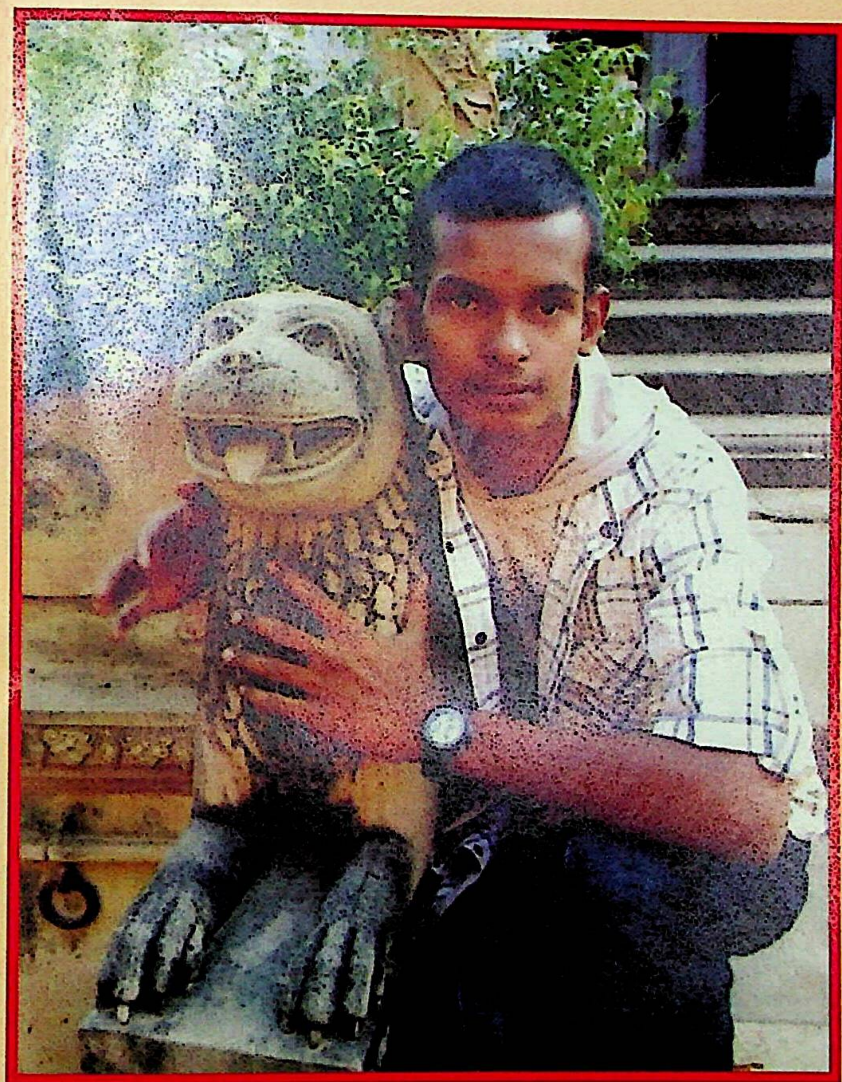
गंगा अभियान के समय में हमारे मन में यह विचार आया कि अनेक पुराण बने हैं परन्तु अब तक गंगा पर कोई पुराण नहीं बना । अतः एक ऐसे ग्रन्थ का निर्माण किया जाए जिसमें मात्र गंगा की ही बात हो । हमारी यह इच्छा जब डॉ. गांगेय हंस जी को मालूम हुई तो उन्होंने इस कार्य में अपना सम्पूर्ण श्रम एवं समय दिया और समस्त पुराणों से गंगा सम्बन्धी उल्लेख संकलित कर हमारी इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास किया । इसी बीच उनके कलियुग के श्रवण कुमार सरीखे पुत्र सोमेश का भी काशी में अचानक देहान्त हो गया परन्तु हंस दम्पति ने न तो काशीवास छोड़ा और न ही गंगा सेवा । अपना सम्पूर्ण जीवन माता गंगा की सेवा में समर्पित करने का निर्णय लेकर वे आज भी काशी में पत्नी महादेवी हंस सहित अभियानम् के अभिन्न अंग के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं । हंस दम्पति को माता गंगा यश प्रदान करें और वे गंगा सेवा करते हुए अपना 'गांगेय हंस' यह नाम सार्थक करें, यही शुभकामना है ।

'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

श्रीविद्यामठ, केदार घाट, वाराणसी - 221001 (उ.प्र.)
दूरभाष - 0542-2450520,362 चलभाष - 9670296702/9670396703/9670496704 ई-मेल - me@swamishreeh.org वेबसाईट - www.swamishreeh.org







स्व. सोमेश सिंह

(2 अक्तूबर 1990 - 19 फरवरी 2010)

'आत्मा वै जायते पुत्रः' के न्याय से अपनी ही आत्मा प्रिय पुत्र स्व. सोमेश सिंह की पावन स्मृति को श्रीविद्यामठ परिवार की ओर से समर्पित प्रस्तुत ग्रन्थ 'गंगा-पुराण'

-गांगेय हंस

प्राक्कथन

आज के भौतिक विज्ञानवाद के आविर्भाव से पहले भी मनुष्य लाखों वर्षों से प्रकृति की गोद में रहता आया है और इस भौतिक विज्ञानवाद के उदय के बाद भी रह रहा है । पर दोनों स्थितियों में अन्तर यह है कि आज के इस भौतिकवाद के उदय से पहले मनुष्य प्रकृति की गोद में ऐसे रह रहा था जैसे माँ की गोद में उसका शिशु, पर आज ? विज्ञान का भौतिकवादी व्यक्ति मदिरा पी लेने के बाद प्रकृति की गोद में उसी तरह रह रहा है जैसे वेश्या की गोद में उसका ग्राहक । आज वह एकमात्र उपभोक्ता हो गया है और प्रकृति उसका उपभोग्य। वेश्या का ग्राहक तो उसका उपभोग मूल्य चुकाकर करता है पर मनुष्य प्रकृति का उपभोग बिना मूल्य चुकाये किये जा रहा है । आज वह बेतहाशा जंगल काटे जा रहा है, पर जंगल उगा देना उसकी सामर्थ्य से बहुत बाहर की बात है । वह ऊर्जा के सारे संसाधनों, जैसे — कोयला, खनिज, तेल आदि का दोहन भविष्य की चिंता एवं पर्यावरण संतुलन का ध्यान रखे बिना किये जा रहा है, पर धरती की गोद को ऊर्जा के संसाधनों से भर देना उसकी सामर्थ्य में नहीं । इस विज्ञान ने हमारी धरती को नंगा किया है पर उसे वस्त्र प्रदान करना इसके बस की बात नहीं । जो केवल वस्त्र खींचे उसे दुःशासन कहते हैं और जो उसे वस्त्रावृत करे उसे कृष्ण कहते हैं । हमारे ऋषियों द्वारा अनुसंधानित अध्यात्मवाद और आज के भौतिक विज्ञानवाद में कृष्ण और दुःशासन का अन्तर है । यदि आज पृथ्वी रूपी द्रौपदी को निर्वस्त्र होने से बचाना है तो निश्चित रूप से एक बार पुनः

आत्मीयता के भाव हम ऋग्वेद के नदी सूक्त में भी देख सकते हैं जहाँ ऋषि नदियों के प्रति आत्मीयता प्रकट करते हुये उन्हें अपने परिवार के सगे-सम्बन्धी की तरह आमन्त्रित करता है । (ऋ.वे.10/75/5) । लेकिन आज हमारी उपभोक्तावादी विचारधारा ने प्रकृति और पर्यावरण के प्रति हमारी संवेदना को पूरी तरह नष्ट कर दिया है । हम राम की जगह रावणी संस्कृति के अनुयायी बन गये हैं और प्रकृति पूजक की जगह प्रकृति को पराभूत करने के प्रयत्न में जुट गये हैं । आज गङ्गा माता भी हमारी इसी विचारधारा का शिकार होकर रह गयी हैं ।

'गङ्गा' मात्र दो अक्षरों से बना यह शब्द सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति, सनातन धर्म और भारत राष्ट्र की आत्मा है । गङ्गा प्रकृति के हृदय की धडकन हैं । यह दो अक्षरों का शब्द 'राम-नाम' की तरह ही महामन्त्र है और देवाधिदेव महादेव शंकर जी यदि रामनाम को निरन्तर अपने मुख में धारण करते हैं तो गङ्गा को भी वे निरन्तर अपने शीश पर धारण करते हैं और गङ्गाधर कहलाते हैं । गङ्गा मात्र नदी नहीं, जल का मात्र भौतिक संसाधन नहीं वरन् विश्वचेतना का सकरुण प्रवाह हैं । विविध भौगोलिक परिक्षेत्रों, अनेकानेक प्रजातियों, भाषाओं, बोलियों और सभ्यताओं वाला यह देश यदि अनादि काल से राष्ट्रीयता के सूत्र में संगुफित है तो निश्चित रूप से वह एकात्मकता का सूत्र गङ्गा, गौ, गायत्री, गीता और गोविन्द ही हैं । ये ही भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र के पाँच प्राण हैं। यह गङ्गा अपने भौतिक स्वरूप में जहाँ गोमुख से निकलकर हिमालय की उपत्यकाओं में तन्वंगी कुमारिका की तरह किल्लोल करती हुयी इस देश के विशाल मैदानी भाग में आकर पीनपयोधरा होती हुयी गङ्गासागर में विराट् समुद्र से मिलकर एकाकार हो जाती हैं तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति एवं धर्म के गोमुख वेदों से निकलकर ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों एवं उपनिषदों की उपत्यका से होती हुयी पुराणों के मैदानी एवं विस्तृत भाग को अपने पवित्र-प्रवाह से

आत्मीयता के भाव हम ऋग्वेद के नदी सूक्त में भी देख सकते हैं जहाँ ऋषि नदियों के प्रति आत्मीयता प्रकट करते हुये उन्हें अपने परिवार के सगे-सम्बन्धी की तरह आमन्त्रित करता है । (ऋ.वे.10/75/5) । लेकिन आज हमारी उपभोक्तावादी विचारधारा ने प्रकृति और पर्यावरण के प्रति हमारी संवेदना को पूरी तरह नष्ट कर दिया है । हम राम की जगह रावणी संस्कृति के अनुयायी बन गये हैं और प्रकृति पूजक की जगह प्रकृति को पराभूत करने के प्रयत्न में जुट गये हैं । आज गङ्गा माता भी हमारी इसी विचारधारा का शिकार होकर रह गयी हैं ।

'गङ्गा' मात्र दो अक्षरों से बना यह शब्द सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति, सनातन धर्म और भारत राष्ट्र की आत्मा है । गङ्गा प्रकृति के हृदय की धड़कन हैं । यह दो अक्षरों का शब्द 'राम-नाम' की तरह ही महामन्त्र है और देवाधिदेव महादेव शंकर जी यदि रामनाम को निरन्तर अपने मुख में धारण करते हैं तो गङ्गा को भी वे निरन्तर अपने शीश पर धारण करते हैं और गङ्गाधर कहलाते हैं । गङ्गा मात्र नदी नहीं, जल का मात्र भौतिक संसाधन नहीं वरन् विश्वचेतना का सकरुण प्रवाह हैं । विविध भौगोलिक परिक्षेत्रों, अनेकानेक प्रजातियों, भाषाओं, बोलियों और सभ्यताओं वाला यह देश यदि अनादि काल से राष्ट्रीयता के सूत्र में संगुफित है तो निश्चित रूप से वह एकात्मकता का सूत्र गङ्गा, गौ, गायत्री, गीता और गोविन्द ही हैं । ये ही भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र के पाँच प्राण हैं। यह गङ्गा अपने भौतिक स्वरूप में जहाँ गोमुख से निकलकर हिमालय की उपत्यकाओं में तन्वंगी कुमारिका की तरह किल्लोल करती हुयी इस देश के विशाल मैदानी भाग में आकर पीनपयोधरा होती हुयी गङ्गासागर में विराट् समुद्र से मिलकर एकाकार हो जाती हैं तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति एवं धर्म के गोमुख वेदों से निकलकर ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों एवं उपनिषदों की उपत्यका से होती हुयी पुराणों के मैदानी एवं विस्तृत भाग को अपने पवित्र-प्रवाह से

अभिसिंचित करती हुयी भारत के विराट् जनमानसरूपी समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं । अपनी ही एक कविता को यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा —

गङ्गा वर्तमान के नाम अतीत की पाती है,
कौन कहता है कि मात्र नदी है यह,
यह तो भारतीय संस्कृति की थाती है ।
एक शिशु की तरह इसकी गोद में उतर कर देखो,
पानी की धार नहीं है यह
यह तो जगन्माता की दूध भरी छाती है ।
ऋतुएँ आती हैं, जाती हैं,
सूरज उगता है और डूब जाता है,
घूमता है काल चक्र, बदलता है मौसम
उम्र का घट भी बूँद-बूँद रीत जाता है,
पर गङ्गा है कि,
इन परिवर्तनों के बीच होकर अविकल बहती है,
ये वो माँ है जो अपने बच्चों के साथ
हर पल, हर क्षण रहती है ।
जन्म से मृत्यु तक, उछाह से बधाह तक
जीवन में वह मोड़ कहाँ, जहाँ
यह माँ साथ नहीं रहती है ?
यह हमारे आँसू और मुस्कान मे है,
घर और सीवान में है,
हमारी पूजा और राष्ट्रगान में है,
वेद की ऋचाओं में, पुराण की कथाओं में
नानी की कहानी में और माझी के तान में है ।
यह ब्रह्मा की पूजा है, शिव की उपासना है,

विष्णु का प्रसाद है ।
सागर की दुल्हन है,
धरती की धड़कन है,
धवल हिमालय का उन्मुक्त हास है ।
यह ऋषियों की तपस्या है, यमपुर की समस्या है,
स्वर्ग की सीढ़ी है,
यह भारत का अतीत, वर्तमान
और आने वाली पीढ़ी है ।
यह सुहागिनों की प्रार्थना है,
माताओं की मन्नत है,
दुखियों के आँसू और भिखारियों की जन्नत है ।
इसके तट का कण-कण तीरथ है,
भगीरथ से गङ्गा नहीं गङ्गा से भगीरथ हैं ।
गङ्गा से हम हैं, हमारे राष्ट्र की आत्मा है,
यह ब्रह्मद्रवी, धर्मद्रवी, अमृत स्वरूपा है,
यह नदी नहीं यह तो द्रवरूप परमात्मा है ।

पर आज यही गङ्गा मृत्यु शैय्या पर पड़ी कराह रही है । अपनी थकी हुयी लहरों से अपने पुत्रों को पुकार रही है । कुछ रावणी संस्कृति वाले इस बीमार गङ्गा को भी अनेकों बाँधों एवं परियोजनाओं के बन्धन में बाँध कर इसका दोहन कर रहे हैं । बढ़ती हुयी आबादी और शहरीकरण का बोझ भी माँ की कोख पर पड़ रहा है । कुछ लोग इस मरती हुयी गङ्गा की आरती उतारने में व्यस्त हैं । वे मरते-मरते भी इस माँ के आँचल का सम्पूर्ण पुण्य लूट लेना चाहते हैं । प्रश्न यह कि यदि आप की माँ मृत्यु शैय्या पर पड़ी हो तो क्या आप उसकी आरती उतारेंगे, उसके कानों में चीख-चीखकर यह पूछेंगे कि मरते-मरते भी धन कहाँ गाड़ रखी हो? बताकर जाओ या उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध

करेंगे? लोग अपने-अपने तरह से मरती हुयी गङ्गा को लूट रहे हैं । गङ्गा प्राधिकरण पर हजारों करोड़ रुपये और खर्च होने वाले हैं । जाने कितने लोगों के सपनों में आरामदेह कारें और शानदार महल बनकर तैयार हैं, बस उन्हें यथार्थ रूप देना है । इस महालूट में गङ्गा का आँचल और मैला और तार-तार होने वाला है। ऐसे स्वार्थी संवेदनहीन पुत्रों की माता क्या स्वस्थ होंगी जो उसे माँ भी कहते हैं और उसमें अपना पनाला भी बहाते हैं ।

गङ्गा की इसी करुण दशा को देखकर एक संत का हृदय चीत्कार कर उठा है । परम परिव्राजकाचार्य अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य **स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज** ने गङ्गा माता को उसके सभी बन्धनों से मुक्त करके उसके प्रवाह को गंगोत्री से गङ्गासागर तक अविरल और निर्मल बनाने का दृढ़ संकल्प लेकर सार्वभौम गङ्गा सेवा अभियानम् का आरम्भ किया है, जिसके परिणामस्वरूप ही गङ्गा राष्ट्रनदी घोषित हुयी हैं । इस अभियानम् के सार्वभौम संयोजक पूज्य **दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी** निरन्तर गङ्गा सेवा अभियानम् के महत्त्व और दुरूह कार्य एवं उद्देश्य को पूर्ण करने में लगे हुये हैं । उन्हीं की प्रेरणा एवं आशीर्वाद का प्रतिफल यह प्रस्तुत ग्रन्थ 'गङ्गापुराण' है जो जन-जन में माँ गङ्गा के प्रति चेतना एवं संवेदना जगाने के उद्देश्य से ही संकलित एवं सम्पादित किया गया है ।

इस ग्रन्थ के पूर्ण होने में हमारे पूज्य सद्गुरुदेव वर्तमान द्विपीठाधीश्वर पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के आशीर्वाद का सबसे मुख्य योगदान है । मैं उनके पावन चरणों में अपना सम्पूर्ण जीवन निर्माल्य की तरह अर्पित कर रहा हूँ । **त्वदीयं वस्तु गुरुदेव तुभ्यमेव समर्पये** । परम पूज्य 'स्वामिश्रीः'

अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी के पावन चरणों में भूरिशः प्रणाम निवेदन करते हुये श्रीविद्यामठ, केदारघाट वाराणसी की दोनों संन्यासिनी बहनों साध्वी शारदाम्बा एवं साध्वी पूर्णाम्बा जी के प्रति भी उनके सहयोग के लिये आभार प्रकट करता हूँ । इस ग्रन्थ के पूरा होने में श्रीविद्यामठ के ग्रन्थालय के अतिरिक्त, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से भी सहयोग लिया गया है । मैं उन पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ ।

यह पुस्तक मेरी धर्मपत्नी श्रीमती महादेवी हंस जी के काशीवास की इच्छा का भी परिणाम है । काशीवास का मूल्य तो मैंने अपना स्वास्थ्य, थोड़ा बहुत संचित धन एवं अपने कनिष्ठ प्रिय पुत्र स्व. सोमेश सिंह को खोकर चुका दिया है । इस ग्रन्थ को मैं अपने प्रिय पुत्र स्व. सोमेश सिंह (जो पितृभक्ति में श्रवणकुमार से तनिक भी कम नहीं था और मात्र उन्नीस वर्ष की अवस्था में दुर्घटना का शिकार होकर इस बूढ़े पिता को जीवन भर रोने के लिये असहाय छोड़ कर चला गया) की पावन स्मृति को श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित करता हूँ । उसका पाञ्चभौतिक शरीर तो माँ गङ्गा की भौतिक धारा को समर्पित हो गया पर उसकी स्मृति को माँ गङ्गा की इस वाङ्मयी साँस्कृतिक धारा को समर्पित करता हूँ । यह पुस्तक मेरे अभिन्नात्मा स्व. सोमेश को वाङ्मयी गङ्गा से तर्पण है । **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** भगवान् उसकी आत्मा को शान्ति दें ।

दिनाङ्क : 24-4-2011 ई.

भवदीय

गांगेय हंस

श्रीविद्यामठ, केदारघाट, वाराणसी (उ.प्र.)

विषयानुक्रमणिका





प्रथम अध्याय

इतिहास - पुराण

1- पुराण -

सायण के अनुसार पुराण वह है जो विश्वसृष्टि की आदिम दशा का वर्णन करता है ।[1] यद्यपि वेदों को समस्त धर्मों का मूल माना गया है[2] -**'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**, तथापि वेदों का उपबृंहण[3] करने के कारण पुराणों की महत्ता वेदों से अधिक है -

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ।।[4]

पुराणों की व्याप्ति एवं सरोकार निश्चित रूप से वेदों से अधिक है। वेदों पर सबका अधिकार नहीं है । श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा है - **स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा**[5], अर्थात् वेदों में स्त्रियों, शूद्रों एवं पतित द्विजों का अधिकार नहीं है । स्पष्ट है कि वेदों में केवल द्विजातियों का ही अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का ही अधिकार है, लेकिन पुराणों के तो वक्ता ही शूद्र सूतजी हैं तथा रामनाम की तरह ही पुराणों पर चारों वर्णों एवं स्त्रियों का भी समान रूप से अधिकार है ।

वेदों की तरह ही पुराण भी अनादि काल से चले आ रहे हैं । आज जैसे साहित्य और लोकगीत हैं उसी तरह से प्राचीन काल में वेद और पुराण थे । जैसे साहित्य विशेष रूप से सुशिक्षित एवं अभिजात्य वर्ग के ही लिये ही संवेद्य है, उसमें आम जन की न कोई विशेष रुचि ही होती है और न वह उनके लिये संवेद्य ही होता है, लेकिन लोकगीतों में आम जन की विशेष रुचि एवं संवेद्यता होती है, ठीक उसी तरह वेद केवल द्विजातियों के लिये ही संवेद्य थे और पुराणों में सबकी और

प्रथम अध्याय

इतिहास - पुराण

1- पुराण -

सायण के अनुसार पुराण वह है जो विश्वसृष्टि की आदिम दशा का वर्णन करता है ।[1] यद्यपि वेदों को समस्त धर्मों का मूल माना गया है[2] -**'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**, तथापि वेदों का उपबृंहण[3] करने के कारण पुराणों की महत्ता वेदों से अधिक है -

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ।।[4]

पुराणों की व्याप्ति एवं सरोकार निश्चित रूप से वेदों से अधिक है। वेदों पर सबका अधिकार नहीं है । श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा है - **स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा**[5], अर्थात् वेदों में स्त्रियों, शूद्रों एवं पतित द्विजों का अधिकार नहीं है । स्पष्ट है कि वेदों में केवल द्विजातियों का ही अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का ही अधिकार है, लेकिन पुराणों के तो वक्ता ही शूद्र सूतजी हैं तथा रामनाम की तरह ही पुराणों पर चारों वर्णों एवं स्त्रियों का भी समान रूप से अधिकार है ।

वेदों की तरह ही पुराण भी अनादि काल से चले आ रहे हैं । आज जैसे साहित्य और लोकगीत हैं उसी तरह से प्राचीन काल में वेद और पुराण थे । जैसे साहित्य विशेष रूप से सुशिक्षित एवं अभिजात्य वर्ग के ही लिये ही संवेद्य है, उसमें आम जन की न कोई विशेष रुचि ही होती है और न वह उनके लिये संवेद्य ही होता है, लेकिन लोकगीतों में आम जन की विशेष रुचि एवं संवेद्यता होती है, ठीक उसी तरह वेद केवल द्विजातियों के लिये ही संवेद्य थे और पुराणों में सबकी और

विशेषकर सामान्य जन की विशेष रुचि थी । शायद इसीलिये पुराणों के वक्ता सामान्य जन के प्रतिनिधि के रूप में सूतजी थे । सूत जाति महाभारत के अनुसार क्षत्रिय पिता एवं ब्राह्मणी माता के गर्भ से उत्पन्न संतान होती थी और प्रतिलोम विवाह के परिणाम एवं वर्णभ्रष्ट होने के कारण इनकी गणना शूद्रों में होती थी । ये प्रायः रथ हाँकने का कार्य करते थे ।

पुराणों के वेदों के समान प्राचीन होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पुराणों की चर्चा वैदिक साहित्य में बार-बार आती है । अथर्ववेद के अनुसार यजुः, ऋक्, साम, छन्द आदि वेद पुराण के साथ यज्ञ के उच्छिष्ट में ही स्थित हैं —

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।।[5]

वृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में याज्ञवल्क्य जी कहते हैं- 'हे मैत्रेयी ! जिस प्रकार जिसका ईंधन गीला है, ऐसे आधान किये हुये अग्नि से धुँआ निकलता है, इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, मन्त्र विवरण और अर्थवाद हैं, वे इस महद्भूत के ही निःश्वास हैं[6]। छान्दोग्यपनिषद् के अनुसार — 'इतिहास और पुराण पाचवाँ वेद हैं - **इतिहासपुराण च पंचमम् ।**[7] मत्स्यपुराण के अनुसार तो पुराण वेद से भी पहले ब्रह्मा की स्मृति में आये —

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।।[8]

शतपथ ब्राह्मण में पुराणों को तो वेद तक कहा गया है —

तानुपदिशति पुराणं वेदः ।
सोऽयमितिहासपुराणमावक्षीतैवमेव अध्वर्यु सम्प्रैष्यति ।[10]

अर्थात् 'यज्ञानुष्ठाता उन्हें उपदेश करें कि पुराण ही वेद हैं ।'

2- इतिहास-पुराण -

प्राचीन वाङ्मय में 'इतिहास-पुराण' शब्द प्रायः युग्म की तरह ही प्रयुक्त हुये हैं । छान्दोग्य में भी इतिहास पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त हुये हैं — **इतिहास पुराण पंचमम् ।**[11] महाभारत में इतिहास-पुराण शब्द प्रायः एक साथ युग्म की तरह प्रयुक्त हुये हैं —

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥[12]

वायुपुराण में भी इतिहास-पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त हुआ है।[13] फिर भी आचार्यों के दृष्टिकोण में इतिहास-पुराण में इषत् भेद है । लेकिन यह भेद स्पष्ट नहीं है । ब्रह्माण्ड पुराण में इतिहास और पुराण दोनों का समान अर्थों में प्रयोग करते हुये दोनों का एक ही उद्देश्य बताया है- **इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्**[14] अर्थात् 'इतिहास और पुराण दोनों का ही उद्देश्य वेदों की शिक्षा का विस्तार करना है ।' श्रीमद्भागवत् भी इतिहास पुराण को एक साथ प्रयुक्त करते हुये कहता है —

इतिहासपुराणानि पंचमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्य ससृजे सर्वदर्शनः ॥[15]

अर्थात् फिर सर्वदर्शी ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से इतिहास पुराण रूप पाँचवाँ वेद बनाया ।

मत्स्यपुराण के अनुसार पुरातन काल की घटनाओं को पंडितजन पुराण कहते हैं - **पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।**[16] वायु पुराण के अनुसार- 'प्राचीन काल से प्रमाणित होने के कारण पुराण कहा जाता है - **यस्मात्पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन हि स्मृतम् ।**[17] जबकि इतिहास धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश सहित तथा प्राचीन चरित्रों से युक्त ग्रन्थ को कहा जाता है —

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

जगद्गुरु आदि शङ्कराचार्य जी के अनुसार 'इतिहास' ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित उर्वशी-पुरुरवा के संवादादि का नाम है तथा 'पुराण' **असद्वा इदमग्रं आसीत्** इत्यादि सृष्टि विषयक वचनों का नाम है - **इतिहास इति उर्वशीपुरुरवसोः संवादादि- उर्वशी ह्यप्सराः इत्यादि ब्राह्मणमेव, पुराणम् असद्वा इदमग्र आसीत्,** इत्यादि ।[18] सायण के मतानुसार सृष्टि-विषयक इस प्रकार के वचन जैसे - 'आरम्भ में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था' पुराण हैं और उर्वशी पुरुरवा आदि का आख्यान इतिहास है ।[19]

इसी प्रकार अमरकोशकार ने जो लक्षण इतिहास का दिया है, महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने वही लक्षण पुराण का दिया है -

"इतिहासं पुरावृतम्" (अमरकोश)[20]

"पुराणं पुरावृतम्" (नीलकण्ठी टीका)[21]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय मनीषा इतिहास और पुराण में कोई विशेष भेद नहीं मानती थी । सभी पुराण उपरोक्त विवेचन के आधार पर इतिहास ही हैं । हाँ आज के इतिहास लेखन में और भारतीय पुराणों में पर्याप्त भेद है । आज का इतिहास लेखन उस शीत गृह की तरह है जिसमें अतीत का मात्र शव सुरक्षित रहता है जबकि पुराण स्मृतियों का वह सागर है जिसमें प्राणवंत अतीत की लहरें उच्छरित होती रहती हैं । आज का इतिहास अतीत की घटनाओं का सूचना मात्र हैं जबकि पुराण अतीत के रसायन से निष्पन्न संस्कार का नाम है । व्यक्ति का स्थूल व्यक्ति के सूक्ष्म की ही अभिव्यक्ति है । हमारे ऋषियों एवं मनीषियों का ध्यान व्यक्ति के इसी सूक्ष्म पर केन्द्रित था । वे व्यक्ति एवं समाज का निर्माण बाहर से मूल्य थोपकर नहीं वरन् भीतर से मूल्य विकसित कर करना चाहते थे । बाहर से निर्मित वस्तु निर्जीव होती है, जबकि भीतर से विकसित वस्तु सजीव। कागज के निर्जीव फूलों का निर्माण हम बाहर से पंखुड़ी जोड़कर कर सकते हैं

पर सचमुच के सजीव पुष्प तो अपने भीतर से ही खिलते हैं । हमारे ऋषियों ने मानव और मानव समाज को बाहर की अपेक्षा भीतर से निर्मित करने के लिये इतिहास की जगह पुराण की रचना की । उनकी दृष्टि घटनाओं की अपेक्षा घटनाओं के पीछे चलने वाली कारणरूप सूक्ष्म और अदृश्य मानव प्रवृत्तियों पर थी और पुराणों में उन्हीं कारणरूप सूक्ष्म प्रवृत्तियों का रूपात्मक एवं काव्यात्मक वर्णन है । इतिहास जो घटित होता है मात्र उन घटनाओं का दस्तावेज है । पर जो घटित होता है वह आवश्यक नहीं कि हमारी सुविधाओं और अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर ही घटित हो । हमको अनगढ़ की जगह सुघड़ बनाने के लिये घटित हो । अतः हम इतिहास से सबक तो सीख सकते हैं पर उसका अनुकरण नहीं कर सकते । पर पुराण हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप निर्मित किये गये हैं । ये हमें मात्र अतीत की सूचना ही नहीं देते पर उस अतीत के विष का शमन कर हमारे लिये उसे पाथेय बना देते हैं । मात्र भौतिक इतिहास का सम्बल बनाकर जीने वाली सभ्यतायें एवं संस्कृतियाँ जल्दी ही थक कर काल-कवलित हो जाती हैं पर आध्यात्मिकता की गोद में जीने वाली सभ्यतायें एवं संस्कृतियाँ शाश्वत बन जाती हैं ।

हमारे प्राचीन मनीषियों के अनुसार इतिहास के ज्ञान के लिये पुराणों का ज्ञान आवश्यक था । महाभारत के अनुसार जो इतिहास पुराण से अनभिज्ञ हैं उनसे वेद भी डरता है कि यह मुझ पर प्रहार कर देगा ।[22]

पद्मपुराणोक्त 'पुराण शब्द' की निरुक्ति का उपबृंहण करते हुये श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने 'पुराणोत्पत्ति-प्रसंग' ग्रन्थ में पुराण शब्द से परिभाष्य अर्थ का निर्देशन **'विश्वसृष्टेरितिहासः पुराणम्'** इस प्रकार किया है । उनके मत में पुराण शब्द केवल पुरातन अर्थ मात्र का वाचक नहीं वरन् विश्व-सृष्टि-इतिहास अर्थ में ही यह परिभाषित है । इस प्रकार एक विशेष प्रकार का इतिहास लेखन ही पुराण है । ऐसा इतिहास जो

जीवन का स्पन्दन बन जाये पुराण है । निरुक्तकार यास्क के अनुसार जो प्राचीन होकर भी नवीन होता है वह पुराण है - **पुरा नवं भवति।**[23] वायु पुराण के अनुसार **'यस्मात् पुरा ह्यस्तीदं'** अर्थात् जो प्राचीन अवस्था में जीवित था वह पुराण है । भाव यह है कि प्राणवंत और जीवंत इतिहास ही पुराण है । इतिहास के पात्र वर्तमान समाज के प्राण नहीं मात्र स्मृति होते हैं जबकि पुराणों के पात्र जैसे- राम-सीता, कृष्ण-राधा, शिव-पार्वती, हरिश्चन्द्र-तारामती, नल-दमयंती आदि समाज की मात्र स्मृति नहीं वरन् संस्कार, प्रेरणा एवं प्राण हैं ।

पुराणों के लक्षण -

पुराणों के लक्षण पुराणों में ही दिये गये हैं । ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार,-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।[24]

अर्थात् 'सर्ग वा सृष्टि का विज्ञान प्रतिसर्ग वा सृष्टि का विस्तार. लय और फिर से सृष्टि, सृष्टि आदि की वंशावली, मन्वन्तर अर्थात् किस-किस मनु का अधिकार कब तक रहा और उस काल में कौन-कौन सी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं और वंशानुचरित अर्थात सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का संक्षिप्त वर्णन ये ही पुराणों के पाँच लक्षण होते हैं ।' पुराणों के पंच-लक्षण प्रायः सभी पुराणों को मान्य हैं एवं सभी पुराणों ने इन्हें दोहराया है पर श्रीमद्भागवत के अनुसार पुराण के दस लक्षण होने चाहिये, जिससे श्रीमद्भागवत स्वयं विभूषित है —

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।।
दशमस्य विशुध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चांजसा ।।[25]

अर्थात् इस भागवत पुराण में (1) सर्ग (2) विसर्ग (3) स्थान

(4) पोषण (5) ऊति (6) मन्वन्तर (7) ईशानुकथा (8) निरोध (9) मुक्ति (10) आश्रय — इन दस विषयों का वर्णन है । इनमें जो दसवाँ अर्थात् आश्रय-तत्त्व है, उसी का ठीक-ठीक निश्चय करने के लिये कहीं श्रुति से, कहीं तात्पर्य से और कहीं दोनों के अनुकूल अनुभव से महात्माओं ने अन्य नौ विषयों का बड़ी सुगम रीति से वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत् में पुराणों के इन दस लक्षणों के साथ ही साथ सभी पुराणों का एकमात्र उद्देश्य भी इंगित कर दिया गया है, और वह उद्देश्य है- परम आश्रय तत्त्व की सही जिज्ञासा, परम सत्य एवं परमाधिष्ठान तत्त्व का सही एवं सटीक निरूपण । यहीं आकर आज के इतिहास लेखन से हमारे पुराण न केवल पृथक् हो जाते हैं वरन् उससे कहीं बहुत अधिक श्रेष्ठ और जीवनोपयोगी भी हो जाते हैं। भागवत् के अनुसार महापुराणों के दस लक्षण होते हैं और छोटे पुराणों के पाँच ।

3- पुराणोंकी संख्या -

पुराणों की संख्या प्रायः सर्वसम्मत से अठ्ठारह ही मानी जाती है पर उपपुराणों की संख्या इतनी सुनिश्चित नहीं है एवं अठ्ठारह पुराणों की नामों की सूची पर भी सभी विद्वान् एवं पुराणकार एक मत नहीं हैं । पद्मपुराण के अनुसार पुराण सब शास्त्रों के पहले से विद्यमान हैं । ब्रह्मा जी ने सबसे पहले पुराणों का ही स्मरण किया था । पुराण त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के साधक एवं परम पवित्र हैं । उनकी रचना सौ करोड़ श्लोकों में हुयी है । समय के अनुसार इतने बड़े पुराणों का श्रवण और पठन असंभव देखकर स्वयं भगवान् उनका संक्षेप करने के लिये प्रत्येक द्वापर युग में व्यास रूप से अवतार लेते हैं और पुराणों को अठ्ठारह भागों में बाँटकर उन्हें चार लाख श्लोकों में सीमित कर देते हैं। पुराणों का यह संक्षिप्त संस्करण ही इस भूमंडल में प्रकाशित होता है । देव लोक में आज भी सौ करोड़ का विस्तृत पुराण उपस्थित है —

पुराणं सर्वं शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥[26]

मत्स्यपुराण में भी पद्मपुराण के इसी मत का समर्थन होता है —

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
पुराणमेकमेवासीत् तथा कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम् ॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे-युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे-द्वापरे सदा ॥
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटि प्रविस्तरम् ॥[27]

अर्थात् मत्स्य भगवान् मनु से कहते हैं, 'राजर्षे ! ब्रह्मा जी ने कल्प के आदि में समस्त शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराण का ही स्मरण किया था । इसके बाद उनके मुख से वेद प्रादुर्भूत हुये । अनघ ! उस कल्पान्तर में सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत पुराण एक था । यह त्रिवर्ग का साधनरूप और पुण्यप्रद था । काल प्रभाव से पुराण की ओर से लोगों की उदासीनता देखकर प्रत्येक द्वापर युग में मैं सदा व्यास नाम से प्रकट होता हूँ और उस पुराण को संक्षेप कर चार लाख श्लोकों में बना देता हूँ । वही अट्ठारह भागों में विभक्त होकर इस भू-लोक में प्रकाशित होता है । आज भी पुराण इस देव लोक में सौ करोड़ श्लोकों का ही है । व्यास जी के विष्णु रूप होने की बात महाभारत एवं विष्णु पुराण आदि में भी कही गयी है —

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
कोह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद् भवेत् ॥[28]

पराशर जी मैत्रेय से कहते हैं, 'हे मैत्रेय ! भगवान् कृष्णद्वैपायन को तुम साक्षात् नारायण ही समझो, क्योंकि संसार में नारायण के अतिरिक्त

और कौन महाभारत का रचयिता हो सकता है ?'

देवीभागवत में शौनक जी सूत जी से पूछते हैं 'सूत जी ! आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं । अब हम यह सुनना चाहते हैं कि पुराण कितने हैं और उनमें कितने श्लोक हैं ? विस्तारपूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।' इस पर सूतजी कहते हैं 'मुनिवरों ! सुनो, सत्यवतीनन्दन व्यासजी के मुखारबिन्द से मैने जितने पुराण सुने हैं, उनका आनुपूर्वी तुम्हारे सामने उल्लेख कर रहा हूँ । मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत्, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, वामन, वायु, विष्णु, वाराह, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड़, कूर्म और स्कन्द इन नामों के अट्ठारह पुराण हैं —

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
नालिंगाग्नि पुराणानि कूस्कं गारुड़मेव च ॥[29]

श्रीमद्भागवतानुसार अट्ठारह पुराण अपनी श्लोक संख्या के साथ निम्न हैं —

क्रम सं.	नाम	श्लोक सं.
1-	ब्रह्म पुराण	दस हजार
2-	पद्म पुराण	पचपन हजार
3-	विष्णु पुराण	तेइस हजार
4-	शिव पुराण	चौबीस हजार
5-	श्रीमद्भागवत महापुराण	अट्ठारह हजार
6-	नारदीय पुराण	पच्चीस हजार
7-	मार्कण्डेय पुराण	नौ हजार
8-	अग्नि पुराण	पन्द्रह हजार चार सौ
9-	भविष्य पुराण	पन्द्रह हजार पाँच सौ
10-	ब्रह्मवैवर्त पुराण	अट्ठारह हजार
11-	लिंग पुराण	ग्यारह हजार
12-	वाराह पुराण	चौबीस हजार

13-	स्कन्द पुराण	इक्यासी हजार एक सौ
14-	वामन पुराण	दस हजार एक सौ
15-	कूर्म पुराण	सत्रह हजार
16-	मत्स्य पुराण	चौदह हजार
17-	गरुड़ पुराण	उन्नीस हजार
18-	ब्रह्माण्ड पुराण	बारह हजार

कुल श्लोक संख्या चार लाख हैं । श्रीमद्देवीभागवत में पुराणों की श्लोक संख्या में ईषत् अन्तर है । मत्स्य पुराण में इसके अनुसार चौदह हजार श्लोक, भविष्य पुराण में चौदह हजार चार सौ श्लोक, ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार एक सौ श्लोक, अग्नि पुराण में सोलह हजार श्लोक; स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार श्लोक हैं । श्रीमद्देवीभागवत में महापुराणों में शिव पुराण के स्थान पर वायु पुराण का उल्लेख है । मत्स्यपुराण की सूची भी श्रीमद्देवीभागवत से मिलती है तथा इसमें भी पुराणों की गणना में शिवपुराण नहीं, उसके स्थान पर वायुपुराण है ।

हमारे भारतीय मनीषियों में जैसे समाज एवं प्राकृतिक शक्तियों का मानवीयकरण किया है उसी प्रकार पुराण का भी मानवीयकरण पुराण-पुरुष के रूप में किया है । पुराण पुरुष का हृदय-पद्म, सिर- ब्रह्म, दाहिनी भुजा-विष्णु, बाँयी भुजा-शिव, शंख-श्रीमद्भागवत, दाहिना पैर-मार्कण्डेय, बाँया पैर-अग्नि, दाहिनी जंघा-भविष्य, बाँयी जंघा-ब्रह्मवैवर्त, दाहिनी कुहनी-लिंग, बाँयी कुहनी-वाराह, बाल-स्कन्द, त्वचा-वामन, पीछे का भाग-कूर्म, मांसपेशी-मत्स्य और मांस-गरुड़ पुराण हैं ।

पद्म पुराण एवं भविष्य पुराण में पुराणों के सात्त्विक, राजस् और तामस् तीन विभाग किये हैं ।

पद्म पुराण के अनुसार –

सात्त्विक पुराण –

(1) विष्णु पुराण (2) नारद पुराण (3) श्रीमद्भागवत पुराण (4)

गरुड़ पुराण (5) पद्म पुराण (6) वाराह पुराण हैं ।

राजस् पुराण –

(1) ब्रह्माण्ड पुराण (2) ब्रह्मवैवर्त पुराण (3) मार्कण्डेय पुराण (4) भविष्य पुराण (5) वामन पुराण (6) ब्रह्म पुराण हैं ।

तामस् पुराण -

(1) मत्स्य पुराण (2) कूर्म पुराण (3) लिंग पुराण (4) शिव पुराण (5) स्कन्द पुराण (6) अग्नि पुराण हैं ।

भविष्यपुराणानुसार –

सात्त्विक-पुराण -

(1) ब्रह्मवैवर्त पुराण (2) स्कन्द पुराण (3) पद्म पुराण (4) भागवत पुराण (5) ब्रह्म पुराण (6) गरुड़ पुराण हैं ।

राजस् पुराण -

(1) मत्स्य पुराण (2) कूर्म पुराण (3) नृसिंह पुराण (4) वामन पुराण (5) शिव पुराण (6) वायु पुराण हैं ।

तामस् पुराण -

(1) मार्कण्डेय पुराण (2) वाराह पुराण (3) आग्नेय पुराण (4) लिंग पुराण (5) ब्रह्माण्ड पुराण (6) भविष्य पुराण हैं ।

पद्मपुराणानुसार सात्त्विक पुराण मोक्षप्रद, राजस पुराण स्वर्गप्रद तथा तामस पुराण नरकप्रद हैं —

सात्विका मोक्षदाः प्रोक्ता राजसाः स्वर्गदाः शुभाः ।
तथैव तामसा देवि निरय प्राप्ति हेतवः ।।[30]

जबकि भविष्यपुराणानुसार राजस् पुराणों में कर्मकाण्ड का प्रतिपादन होता है तथा तामस् पुराण शाक्तधर्मपरायण होते हैं —

राजसाः षद् स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि ।
तामसाः षद् स्मृताः प्राज्ञैः शक्तिधर्मपरायणाः ।।[31]

मत्स्य पुराण के अनुसार सात्त्विक-पुराणों में अधिकतर हरि का

महत्त्व होता है, राजस-पुराणों में ब्रह्मा का महात्म्य अधिक होता है तथा तामस-पुराणों में अग्नि और शिव का महत्त्व अधिक होता है । संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों का महात्म्य विशेष रूप से रहता है -

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्या पितृणां च निगद्यते ॥[32]

पर मत्स्य पुराण में सात्त्विक, राजस् और तामस् पुराणों के अलग-अलग प्रभेद नहीं हैं ।

4- उपपुराण -

उपपुराणों की संख्या पर पुराणकार विद्वान् एक मत नहीं हैं । कहीं-कहीं अट्ठारह तो कहीं सत्ताइस उपपुराण के नाम मिलते हैं, जो निम्नवत् हैं —

(1) सनत्कुमार (2) नरसिंह (3) बृहन्नारदीयपुराण (4) शिवधर्मोत्तर (5) पुर्वासस (6) कापिल (7) मानव (8) उशनस् (9) वारुण (10) आदित्य (11) कालिका (12) साम्ब (13) नन्दिकेश्वर (14) सौर (15) पाराशर (16) माहेश्वर (17) वसिष्ठ (18) भार्गव (19) आदि (20) मुद्गल (21) कल्कि (22) देवी (23) महाभागवत (24) बृहद्धर्मोत्तर (25) परानन्द (26) पशुपति (27) हरिवंश ।

अट्ठारह उप पुराणों की सूची निम्नवत् है —

(1) नरसिंह (2) वायवीय (3) शिव धर्मारथ (4) आश्चर्य (5) बृहन्नारदीय (6) नन्दिकेश्वर (7) औशनस् (8) कापिल (9) वारुण (10) साम्ब (11) कालिका (12) माहेश्वर (13) कल्कि (14) दैव (15) पराशर (16) मारीच (17) सौर (18) आदि पुराण ।

5- पुराणों की श्लोक संख्या -

मत्स्यपुराणानुसार अट्ठारहों पुराणों की श्लोक संख्या सवा पाँच

लाख है पर अट्ठारह पुराणों की कुल श्लोक संख्या चार लाख ही होती है वह भी पुराणों में दी गयी श्लोक संख्यानुसार, पर वर्तमान में अट्ठारह पुराणों की इतनी भी श्लोक संख्या उपलब्ध नहीं हैं । पर पुराणों की चार लाख श्लोक संख्या में हम यदि रामायण एवं महाभारत की एक लाख चौबीस हजार श्लोक संख्या मिला दें तो इतिहास पुराण को मिलाकर मत्स्य पुराण की दी गई सवा पाँच लाख की श्लोक संख्या पूरी हो जाती है । पर सच तो यह है कि रामायण एवं महाभारत की भी पूरी-पूरी श्लोक संख्या अनुपलब्ध है ।

6- पुराणों का वर्तमान स्वरूप -

नारदीय पुराण में सभी पुराणों की सूची दी गयी है । उपलब्ध पुराणों में भविष्य पुराण को छोड़कर शेष पुराण उस सूची में मिल जाते हैं । बँगला विश्वकोष के अनुसार महापुराणों की सूची एवं परिचय निम्न प्रकार है —

1- ब्रह्मपुराण -

इस पुराण की जो प्रति मुम्बई से छपी है, उसकी अपेक्षा विश्वकोष में दी हुयी सूची अधूरी है । इस पुराण में 245 अध्याय हैं । यह वैष्णवपुराण है ।

2- पद्मपुराण -

प्राप्त पद्मपुराण में चार खण्ड हैं — (1) सृष्टि खण्ड (2) भूमि खण्ड (3) पाताल खण्ड (4) उत्तरखण्ड । इस पुराण के दो संस्करण प्राप्त हैं - गौड़ीय और दाक्षिणात्य । प्राप्त पद्मपुराण में अड़तालीस हजार पाँच सौ बावन श्लोक मिलते हैं पर 'स्वर्ग खण्ड' और 'क्रिया योग सागर' इसी के भाग बताये जाते हैं । इनको जोड़ने से छः खण्ड और श्लोक संख्या पचपन हजार हो जाती है ।

3- विष्णुपुराण -

इस पुराण का बहुत सा भाग लुप्त हो गया है । विष्णु धर्मोत्तर

पुराण तथा ब्रह्मोत्तर खण्ड को, जो इसके अंश कहे जाते हैं, मिलाने से इसकी श्लोक संख्या सोलह हजार होती है । सात हजार श्लोक फिर भी नहीं मिलते ।

४- शिव पुराण -

इसकी श्लोक संख्या पूरी है । यह प्रति मुम्बई से छपी है ।

५- श्रीमद्भागवत -

इस पुराण की प्राप्त प्रतियाँ श्रीधरीटीका के अनुसार प्रमाण मानकर छपी हैं । पर श्रीधरजी की टीका जिन श्लोकों पर है उनकी संख्या अट्ठारह हजार नहीं है । 'विजयध्वज' की टीका में जो अध्याय और श्लोक भागवत के बताये गये हैं, उनको जोड़ देने पर श्लोक संख्या पूर्ण हो जाती है ।

6- नारदीयपुराण -

इस पुराण की प्राप्त प्रति में अट्ठारह हजार एक सौ दस श्लोक मिलते हैं । शेष छः हजार आठ सौ नब्बे श्लोक लुप्त हो गये जान पड़ते हैं । बृहन्नारदीय की गणना उपपुराणों में होती है ।

7- मार्कण्डेय पुराण -

इसमें नौ हजार श्लोक होने चाहिये । पर प्राप्त प्रति में केवल छः हजार नौ सौ श्लोक हैं ।

8- अग्नि पुराण -

इसमें कौमार व्याकरण बड़ा ही सुन्दर संस्कृत व्याकरण है । यह यथावत प्राप्त है।

9- भविष्य पुराण -

भविष्य पुराण की चार स्थानों से प्रकाशित चार प्रतियाँ हैं । नारद पुराण में जो विषय सूची है उससे कहीं की प्रति पूर्णतः नहीं मिलती है।

10- ब्रह्मवैवर्तपुराण -

यह पुराण भी अपनी पूर्ण श्लोक संख्या में उपलब्ध नहीं है ।

11- लिंगपुराण -

नवल किशोर प्रेस की पुस्तक नारद पुराण की दी गयी सूची से ठीक मिलती है ।

12- वाराहपुराण -

यह पुराण भी अधूरा छपा है । इसमें केवल 218 अध्याय हैं तथा दस हजार से कुछ अधिक श्लोक हैं ।

13- स्कन्दपुराण -

इसकी श्लोक संख्या इक्यासी हजार एक सौ उपलब्ध है । यह पुराण भारत के सभी तीर्थों एवं व्रतों का विश्वकोष है ।

14- वामनपुराण -

यह पुराण नारद पुराण में छपी हुयी सूची से मिलते हुये रूप में उपलब्ध है।

15- कूर्मपुराण -

नारद पुराण में इसकी श्लोक संख्या 17,000 बतायी गयी है पर प्राप्त प्रतियों में छः हजार के लगभग श्लोक हैं ।

16- मत्स्यपुराण -

यह पुराण अपने प्राचीन रूप में उपलब्ध है ।

17- गरुड़पुराण -

गरुड़ पुराण की पूर्ण पुस्तक उपलब्ध नहीं है । वर्तमान ग्रन्थ तो बस एक खण्ड मात्र है । इस पुराण का प्रेतखण्ड ही बहुत प्रचलित है और श्राद्ध कर्मों में प्रायः पंडित लोग उसका पारायण करते हैं ।

18- ब्रह्माण्डपुराण -

इस पुराण की उपलब्ध प्रति में आध्यात्मरामायण तथा ललितोपाख्यान जो इसी के अंश कहे जाते हैं, मिला देने से इसकी श्लोक संख्या पूरी हो जाती है ।

सारांश यह है कि वेदों की तरह ही पुराणों के श्लोक भी काल

प्रवाह के क्रम से लुप्त हो गये हैं । इतना तो स्पष्ट ही है कि हम अपने पूर्वजों के रिक्थ सभाँलकर रख नहीं पाये हैं । वाल्मीकीय रामायण मात्र काव्यग्रन्थ ही नहीं इतिहासग्रन्थ भी है । अतः दोनों प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ अर्थात् वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत के श्लोकों को मिला दें तो उनकी संख्या लगभग एक लाख चौबीस हजार हो जाती है और उनमें यदि पुराणों के चार लाख श्लोक और जोड़ दिये जाये तो इतिहास-पुराण के कुल श्लोकों की संख्या सवा पाँच लाख के लगभग हो जाती है। इन सवा पाँच लाख श्लोकों में गङ्गा कहाँ-कहाँ और कितनी है, बस यही इस प्रस्तुत निबन्ध का विषय है । यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इन सवा पाँच लाख श्लोकों के इतिहास पुराणों में गङ्गा वैसे ही विस्तृतरूप में प्रवहमान हैं जैसे कि हरिद्वार से लेकर गङ्गासागर तक प्रवाहित हैं ।



द्वितीय अध्याय

पुराणों में गङ्गा

भौगोलिक जगत् में गङ्गा गोमुख हिमनद से निकलकर गङ्गोत्री, उत्तरकाशी, रुद्रप्रयाग और ऋषिकेष से होती हुयी हरिद्वार में पृथ्वी के मैदानी भाग का स्पर्श करती हैं । गोमुख से हरिद्वार तक गङ्गा करीब बारह हजार फुट नीचे गिरती हैं और यहाँ से क्रमशः स्फीत होती हुयी सागर तक की यात्रा पूरी करती हैं । हिमालय की ऊँचाईयों में गङ्गा की धारा अति क्षिप्र लेकिन क्षीण सी दिखती है वही मैदानी भागों में आकर थोड़ी मन्थर लेकिन काफी स्फीत हो जाती है और हरिद्वार से लेकर गङ्गासागर तक लगभग चार लाख वर्गमील उपजाऊ गङ्गा कछार का निर्माण करती है । उसी तरह भारतीय वैदिक वाङ्मय में गङ्गा वेदों से निकलती हैं लेकिन हिमालय की ऊँचाईयों की तरह ही वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय के सर्वोच्च शिखर ऋग्वेद में वह एक अत्यन्त क्षीण धारा सी दिखती हैं । फिर वहाँ से उतरकर ब्राह्मणग्रन्थों में भी क्षीण रूप से बहती हुयी उपनिषदों की उपत्यका में जहाँ-तहाँ चमकती हुयी पुराणों के विस्तृत मैदानी भाग में उतरकर उसके चार लाख श्लोकों को अपनी पावन धारा से अभिषिक्त करती हुयी भारतीय संस्कृति के गङ्गासागर में समा उससे एकमेक हो जाती है ।

वैदिक साहित्य में गंगा -

ऋग्वेद में गङ्गा की अपेक्षा सिन्धु और सरस्वती की महिमा अधिक गायी गयी है । पूरे वैदिक संहिता में गङ्गा का नाम केवल दो बार आया है, प्रथम तो ऋग्वेद के छठे मंडल में, जिसके ऋषि भारद्वाज जी हैं गङ्गा का नाम निम्न प्रकार से आया है —

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् ।

उरुः कक्षो न गांग्यः ।[33]

जिसमें अन्तिम पाद का अर्थ है, 'गङ्गा के तटों पर उगी हुयी घास या झाड़ी के समान वृद्धि प्राप्त करता हुआ' । ऋग्वेद के नदी सूक्त में (जिसके ऋषि प्रियमेध के पुत्र सिन्धुक्षित हैं) कुल नौ मन्त्र हैं । इन मन्त्रों में ऋषि सिन्धु नदी की महिमा का गान करता है और अपने स्तोत्र श्रवण के लिये अन्य नदियों को निमन्त्रण भेजता है। ऋषि जिन दस नदियों को सादर आमन्त्रित करता है उसमें सबसे पहले वह गङ्गा का नाम लेता है —

इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतूद्रि स्तोमं सचिता परुष्णया ।

असिकन्या मरुद्वृधे वितस्त्यार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया ।।[34]

अर्थात् 'हे गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (राबी), असिक्नी (चिनाव) के साथ मरुद्वृधा, वितस्ता (झेलम), सुषोमा और आर्जीकीया (व्यास) आदि नदियों ! आप सभी हमारे इन स्तोत्रों को सुनें ।'

वास्तव में गङ्गा का महत्त्व तो बीजरूप में ऋग्वेद में ही पड़ जाता है । नदी सूक्त में गङ्गा के नाम का सभी नदियों के नाम में सर्वप्रथम उल्लेख संयोगवशात् नहीं है वरन् यह गङ्गा की महिमा का द्योतक है । ऋग्वेद से ही गङ्गा नदियों में अग्रगण्य है। इसी तरह छठे मण्डल में जो गङ्गा का नाम आया है वह भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण संदर्भ में है । इस मन्त्र में उपमा अलंकार के माध्यम से ऋषि कहता है कि जैसे गङ्गा अपने तट के वनस्पतियों, घासों और प्राणियों को (गांग्य अर्थात् गङ्गा के तट पर उत्पन्न) पोषित और विकसित करती है ठीक उसी तरह व्यापारी वर्ग अपने सान्निध्य में बसने वाले शिल्पी जनों को पोषित एवं विकसित करें। यहाँ गांग्य शब्द के अन्तर्गत गङ्गा के लगभग चार लाख वर्ग मील का उपजाऊ कछार एवं उस कछार में बसने वाली मानव सहित सभी

प्राणियों की प्रजातियाँ एवं वनस्पतियाँ सब एक साथ सम्बोधित हो जाती हैं । गङ्गा के द्वारा निर्मित अत्यन्त उपजाऊ, उर्वर मैदानी भाग ही गङ्गा का वात्सल्यपूर्ण ह्रदय प्रदेश है जो अपनी गोद में पलने वाली सभी प्राणियों को मातृत्त्व, पोषण एवं संरक्षण प्रदान करता है । गङ्गा की इसी विशेषता ने गङ्गा को नदी से माता बना दिया । इस सघन जन-संकुल देश की एक तिहाई जनसंख्या का पोषण यही गङ्गा माता करती हैं तथा इन्हीं के तटों पर इस देश की जनसंख्या का घनत्त्व सर्वाधिक है । हमारी संस्कृति स्वभाव से ही कृतज्ञ है । फिर भला यह कृतज्ञ संस्कृति गङ्गा को माता और देवी का दर्जा कैसे नहीं देती ? एक पुत्र के लिये विश्व की सबसे पवित्र वस्तु उसकी माँ का आँचल होता है, फिर भला गङ्गा का अक्षुण्ण जल-प्रवाह जो उस माँ का आँचल है, हम भारतीयों के लिये सबसे पवित्र कैसे नहीं बन जाता ? वेदों में ऋषियों ने सिन्धु को वेगशील अद्भुत घोड़ी के साथ-साथ सुन्दर स्त्री से भी तुलना की है ।[35] नदियों का मानवीकरण तो वेदों से ही आरम्भ हो जाता है । पुराणों तक आते-आते यही सुन्दर स्त्री माँ का रूप धारण कर लेती है ।

वास्तव में नदियों की पूजा विश्व की सभी प्राचीन संस्कृतियों में होती रही है । विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में आर्य सभ्यता के साथ-साथ, सिन्धु घाटी की सभ्यता, मिश्र, सुमेरियन एवं बेबोलोनियन आदि सभ्यतायें आती हैं । प्राचीन मिश्र के निवासी अपने देश की प्रसिद्ध नदी नील को 'हापी' नामक देवता के रूप में पूजते थे । इसी तरह सुमेरियन एवं बेबीलोनियन सभ्यता के लोग अपनी धरती वर्तमान इराक में बहने वाली नदियों दजला एवं फरात की देव रूप में उपासना करते थे । इन नदियों को देवी-देवता के रूप में पूजन के पीछे बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण है । अन्य देशों की प्राचीन सभ्यता से लेकर भारत में, जो कि विश्व की सबसे प्राचीनतम सभ्यता वाला देश है, उन्हीं नदियों की पूजा होती है, जो कृषि कार्य में सहायक हैं । ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ जो

विस्तार में किसी प्रकार भी गङ्गा से कम नहीं हैं उनकी पूजा नहीं होती है । वास्तव में प्राचीन विश्व कृषि प्रधान विश्व था । कृषि कार्य में प्रवीण होने के कारण ही मानव प्रजाति अन्य प्रजातियों से इतना अधिक सभ्य एवं विकसित हो सकी । यही कारण है कि कृषि प्रधान सभ्यता वाले भारत देश में कृषि कार्य में सर्वाधिक योगदान देने के कारण गङ्गा एवं गौ 'देवी' और 'माता' के रूप में पूजित होने लगीं ।

वेदों में गङ्गा के दिव्यत्व के बीज के साथ-साथ ही उसकी महिमा के भी बीज पड़ जाते हैं । वेदों में रामकथा एवं कृष्णकथा के पात्रों के मात्र नाम ही बीज रूप में आये हैं जिनका विकास पुराणों एवं महाकाव्यों में होता है । इसी तरह गङ्गा के देवत्व के साथ-साथ उनकी महिमा के बीज भी वेद में द्रष्टव्य हैं जो पुराणों में आकर वटवृक्ष ही नहीं 'वटाटवी' बन जाते हैं, जिसके निकुंज में आज तक भारतीय संस्कृति निर्बाध फल-फूल रही है । पुराणों में तो गङ्गा की महिमा महासागर की तरह ही अगाध और असीम है पर उसका बीज ऋग्वेद के नदी सूक्त का एक खिल मन्त्र है जिसका अनुवाद यों है — 'जो लोग श्वेत (गङ्गा) या कृष्ण (यमुना) दो नदियों के संगम में स्नान करते हैं, वे स्वर्ग को उड़ते हैं, और जो धीर लोग वहाँ निवास करके अपने सहज मृत्यु द्वारा शरीर त्याग करते हैं, वे मोक्ष पाते हैं ' —

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ।।[36]

अन्य वैदिक साहित्य में भी गङ्गा की धारा क्षीण भले ही हो पर टूटी नहीं है । वैदिक साहित्य के मुख्य चार भाग किये जाते हैं —

1- मन्त्र या संहिता भाग, 2- ब्राह्मण ग्रन्थ, 3- आरण्यक, 4- उपनिषद्। संहिता भाग में गङ्गा का बीज तो हमने वापित होते हुये देख ही लिया । अब ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हमें गङ्गा बीज से अंकुर बनते हुये दिखती हैं । शतपथ ब्राह्मण, जो शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण है और

ऐतरेय ब्राह्मण जो ऋग्वेदीय ब्राह्मण है; इन दोनों में एक प्राचीन गाथा का उल्लेख है ।[37] इन दोनों ब्राह्मणों में गङ्गा-यमुना के किनारे पर भरत दौष्यन्ति की विजयों एवं यज्ञों का उल्लेख हुआ है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'नाडपित पर अप्सरा शकुन्तला ने भरत को गर्भ में धारण किया, जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने के उपरान्त इन्द्र के पास यज्ञ के लिये एक सहस्त्र से अधिक अश्व भेजे ।

एतत् विष्णोः क्रांन्तम् । तेन हैतेन भरतो दौष्यांतिरीजे । तेनेष्ट्वा इमां व्यष्टि व्यानशे । यैयं भरतानाम् । तदेतत् गाथयाऽभिगीतम् अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यंतिर्यमुनामनु । गङ्गायां वृत्तघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशते हयन् ।[38]

जैमनीय ब्राह्मण जो कि सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ है, में भी गङ्गा का उल्लेख है।[39]

आरण्यकों में भी गङ्गा अपने प्रवाह की अक्षुण्णता को बनाई हुई है । आरण्यक, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों का मध्यवर्ती वैदिक साहित्य है। नगरों तथा ग्रामों से दूर अरण्यों में ही इनका अध्ययन-अध्यापन होने के कारण इन्हें आरण्यक कहते हैं । तैत्तरीय आरण्यक में जो कि कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है तथा प्रसिद्ध कठोपनिषद् भी इसी आरण्यक से सम्बन्धित है, गङ्गा का उल्लेख मिलता है । इस आरण्यक में सन्ध्यावन्दन और स्वाध्याय में संलग्न उन मुनिजनों का स्तवन किया गया है जो गङ्गा यमुना के मध्य स्थित पवित्र भू-भाग पर निवास करते हुये तपस्या में लीन हैं ।

आरण्यकों के बाद वैदिक साहित्य में उपनिषदों का क्रम आता है। वेदान्त दर्शन के तीन प्रस्थानों — उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता में भी उपनिषदों का प्रथम स्थान है । वैदिक साहित्य के अन्तिम ध्येय ब्रह्मतत्त्व का निरूपण होने से इन्हें वेदान्त भी कहा गया है । मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों के नाम आते हैं । वे सभी **'निर्णयसागर प्रेस'**

बम्बई से मूल गुटका के रूप में प्रकाशित हैं । इसके सिवा **'आड्यार लाइब्रेरी'** मद्रास से भी उपनिषदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जो अनेक भागों में विभक्त है । उस संग्रह में लगभग 179 उपनिषदों का प्रकाशन हो गया है । इसके अतिरिक्त **'गुजराती प्रिंटिंग प्रेस'** मुम्बई से मुद्रित उपनिषद् वाक्य महाकोष में 223 उपनिषदों का प्रकाशन हो गया है । भगवत्पाद् शंकराचार्य जी महाराज ने निम्न द्वादश उपनिषदों पर अपने भाष्य लिखे हैं - **(1) ईश (2) केन (3) कठ (4) प्रश्न (5) मुण्डक (6) माण्डूक्य (7) ऐतरेय (8) तैतरीय (9) श्वेताश्वतर (10) छान्दोग्य (11) वृहदारण्यक (12) कौशीतकि ब्राह्मण** । श्रीमद्भगवद्गीता भी उपनिषद् कोटि में ही आती है । वह सभी उपनिषदों की मुकुट मणि है । गीता माहात्म्य का प्रसिद्ध श्लोक है —

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

अर्थात् सभी उपनिषदें गाय हैं और गीता उनका दुग्धामृत है जिसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने पार्थ को वत्स बनाकर सुधीजनों के लिये दुहा है । उपनिषदों की उपत्यका में भी गङ्गा लुप्त नहीं हैं । यत्र-तत्र उसकी धवल धार चमककर वहाँ भी अपनी अविकलता का प्रमाण दे देती है । रामोत्तरतापिनी उपनिषद् में याज्ञवल्क्य जी अत्रि मुनि से कहते हैं 'एक समय भगवान् शंकर ने काशी में एक हजार मन्वन्तर तक जप, होम और पूजनादि के द्वारा श्रीराम की आराधना करते हुये श्रीराम मन्त्र का जप किया । इससे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम ने शंकर जी से कहा कि 'भगवन् ! आपको जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लो मैं उसे दूँगा ।' तब सत्यानन्दचिन्मय भगवान् शंकर ने श्रीराम से कहा 'भगवन् ! मणिकर्णिका तीर्थ में, मेरे काशी क्षेत्र में अथवा गङ्गा में या गङ्गा के तट पर जो प्राण त्याग करता है, उस जीव को आप मुक्ति प्रदान कीजिये । इसके सिवा

दूसरा कोई वर मुझे अभीष्ट नहीं है ।'[40]

वास्तव में गङ्गा को सर्वोच्च सम्मान उपनिषदों में ही मिला है । सर्व उपनिषदों का सार गीतोपनिषद् (श्रीमद्भगवद्गीता) में भगवान् स्वयं श्रीमुख से गङ्गा को अपना स्वरूप बतलाते हैं — **'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'** अर्थात् धाराओं में मैं गङ्गा हूँ । भगवान् की इसी घोषणा के साथ ही गङ्गा ब्रह्मद्रवी हो गई और पुराणों में महिमा के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हुई ।

पौराणिक साहित्य में गंगा –

वेदों के गोमुख से निकलकर ब्राह्मण ग्रंथों की गङ्गोत्री से होती हुई आरण्यकों की उत्तर काशी को अपनी पावन धारा से अभिषिक्त करती हुई उपनिषदों के रुद्र प्रयाग में ब्रह्मद्रव से विभूषित होती हुई गङ्गा पुराणों की हरिद्वार में प्रवेश करती हैं और जैसे भौतिक जगत् में लगभग चार लाख वर्ग मील मैदानी भाग का निर्माणकर उसे अपने वात्सल्य रस की उर्वरता से परिपूर्ण करती हैं, ठीक उसी तरह पुराणों के लगभग चार लाख श्लोकों एवं वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत को मिलाकर कुल सवा लाख श्लोकों के पुण्यारण्य में सनातन धर्म की साम्राज्ञी की तरह विहार करते हुये ब्रह्मस्वरूप महासागर में विलीन हो जाती हैं । पुराणों में गङ्गा का उल्लेख विशेष करके श्रीमद्भागवत, पद्म, शिव, स्कन्द, विष्णु, वायु, मत्स्य, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, कूर्म, वामन, ब्रह्माण्ड, लिंग, भविष्य, मार्कण्डेय आदि में विस्तृत रूप से हुआ है । उपपुराणों में भी बृहन्नारदीय, देवीभागवत आदि में गङ्गा का विस्तार से वर्णन है । इसके अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत में भी गङ्गा की उत्पत्ति एवं माहात्म्य का विषद् वर्णन है । सारे तथ्यों को यथावत प्रस्तुत करें तो यह निबन्ध भी हजारों पृष्ठों के विस्तार का हो जायेगा जो संभव नहीं । अब हम कतिपय पुराणों में ही गङ्गा की उत्पत्ति एवं उनके माहात्म्य का दिग्दर्शन करेंगे ।

1 - श्रीमद्भागवत् में गङ्गा -

श्रीमद्भागवत सभी पुराणों में मुकुटमणि है । यह पुराण नहीं महापुराण है । अन्य पुराण पाँच लक्षणों से विभूषित हैं जबकि श्रीमद्भागवत दस लक्षणों से विभूषित है । वेदों के चार विभाग एवं महाभारत जैसे इतिहास ग्रन्थ की रचना के उपरान्त भी जब व्यास जी का मन शान्ति को न प्राप्त कर सका तथा वे कृतकृत्यता का अनुभव नहीं कर सके, तब नारदजी ने उन्हें श्रीमद्भागवत की रचना की प्रेरणा दी । श्रीमद्भागवत लिखकर व्यास जी के मन को शान्ति मिली ।

श्रीमद्भागवत में गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित् से कहते हैं 'राजन् ! जब राजा बलि की यज्ञशाला में साक्षात् यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णु ने त्रिलोकी को नापने के लिये अपना पैर फैलाया तब उनके बाँये पैर के अँगूठे के नख से ब्रह्माण्ड कटाह का ऊपर का भाग फट गया । उस छिद्र से होकर जो ब्रह्माण्ड के बाहर जल की धारा आई वह उस चरणकमल को धोने से उसमें लगी हुई केसर के मिलने से लाल हो गयी । उस निर्मल धारा का स्पर्श होते ही संसार के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वह स्वयं सर्वथा निर्मल ही रहती है । पहले किसी और नाम से न पुकारकर इसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे । वह धारा हजारों वर्ष बीतने पर स्वर्ग के शिरोभाग में स्थित ध्रुवलोक में उतरी, जिसे विष्णुपद भी कहते हैं । उस ध्रुवलोक में उत्तानपाद के पुत्र परमभागवत ध्रुव जी रहते हैं । वे नित्यप्रति बढ़ते हुये भक्तिभाव से 'यह हमारे कुल देवता का चरणोदक है' ऐसा मानकर आज भी उस जल को बड़े आदर से सिर पर चढ़ाते हैं । ...... इसके पश्चात् आत्मनिष्ठ सप्तर्षिगण उनका प्रभाव जानने के कारण 'यही तपस्या की आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मान कर उसे आज भी इस प्रकार आदरपूर्वक अपने जटाजूट पर वैसे ही धारण करते हैं जैसे मुमुक्षुजन प्राप्त हुयी मुक्ति को। .... वहाँ से गङ्गाजी करोड़ों विमानों से घिरे हुये आकाश में होकर

उतरती हैं और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती मेरु के शिखर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं । वहाँ से ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चार धाराओं में विभक्त हो जाती हैं तथा अलग-अलग चारों दिशाओं में बहती हुयी अन्त में नद-नदियों के अधीश्वर समुद्र में गिर जाती हैं ।'

'इनमें से सीता ब्रह्मपुरी से गिरकर केसरांचलों के सर्वोच्च शिखरों में होकर नीचे की ओर बहती गन्धमादन के शिखरों पर गिरती हैं और भद्राश्ववर्ष को प्लावितकर पूर्व की ओर खारे समुद्र में मिल जाती हैं । इसी प्रकार चक्षु माल्यवान के शिखर पर पहुँच कर वहाँ से बेरोक-टोक केतुमाल वर्ष में बहती हुयी पश्चिम की ओर क्षार समुद्र में जा मिलती हैं। भद्रा मेरु पर्वत से उत्तर के शिखर की ओर गिरती हैं तथा एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर जाती हुयी अन्त में शृंगवान् के शिखर से गिरकर उत्तर कुरुदेश में होकर उत्तर की ओर बहती हुयी समुद्र में मिल जाती हैं । अलकनन्दा ब्रह्मपुरी से दक्षिण की ओर गिरकर अनेकों गिरि-शिखरों को लाँघती हुयी हेमकूट पर्वत पर पहुँचती हैं, वहाँ से अत्यन्त तीव्र वेग से हिमालय के शिखरों को चीरती हुयी भारतवर्ष में आती हैं और फिर दक्षिण की ओर समुद्र में जा मिलती हैं । इसमें स्नान करने वाले पुरुषों को पद-पद पर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञों का फल भी दुर्लभ नहीं है ।[41]

उपरोक्त प्रकरण के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के बलिबन्धन प्रकरण में भी गङ्गा की उत्पत्ति का उल्लेख उपरोक्त प्रकरण के समान ही है । श्रीशुकदेवजी परीक्षित् जी से कहते हैं 'इस समय एक बड़ी अद्भुत घटना घट गयी । अनन्त भगवान् का त्रिगुणात्मक वामन रूप बढ़ने लगा । वह यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशायें, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि सब के सब उसी में समा गये ।.... उन्होंने अपने एक पग से बलि की सारी पृथ्वी नाप ली, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशायें घेर लीं । दूसरे पग से उन्होंने स्वर्ग को

भी नाप लिया । तीसरा पग रखने के लिये बलि की तनिक सी भी कोई भी वस्तु नहीं बची । भगवान् का वह दूसरा पग ही ऊपर की ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक, और तपलोक से भी ऊपर सत्यलोक में पहुँच गया । भगवान् के चरणकमलों की आभा से सत्यलोक की आभा भी फीकी पड़ गयी । स्वयं ब्रह्मा भी उसके प्रकाश में डूब से गये । उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों, सनन्दन आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों एवं बड़े-बड़े योगियों के साथ भगवान् के चरण कमल की अगवानी की । ..... अगवानी करने के बाद उन्होंने स्वयं विश्वरूप भगवान् के ऊपर उठे हुये चरणों का अर्घ्य, पाद्यादि से पूजन किया । पूजा करके बड़े प्रेम और भक्ति से उन्होंने भगवान् की स्तुति की । परीक्षित् ! ब्रह्मा के कमण्डलु का वही जल विश्वरूप भगवान् का पाँव पखारने से पवित्र होने के कारण उन गङ्गा जी के रूप में परिणित हो गया जो आकाश मार्ग से पृथ्वी पर गिरकर तीनों लोकों को पवित्र करती हैं । ये गङ्गा जी क्या हैं ? भगवान् की मूर्तिमन्त उज्जवल कीर्ति ।[42]

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ।।[43]

श्रीमद्भागवत के उपरोक्त प्रकरणों में हम देख सकते हैं कि गङ्गा कोई सामान्य नदी नहीं वरन् भगवान् की मूर्तमन्त उज्जवल कीर्ति हैं । गङ्गा का नाम-स्मरण, उनकी गाथा एवं माहात्म्य का श्रवण साक्षात् अधोक्षज भगवान् का संकीर्तन है । गङ्गा के प्रवाह का संगीत भगवान् विष्णु का यशःगान है । उपरोक्त प्रकरण में यह भी बताया गया है कि गङ्गा में स्नान करने वाले पुरुषों को पद-पद पर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञों का फल भी दुर्लभ नहीं है —

'स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं

न दुर्लभमिति ।'[44]

आगे चलकर श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध में सगर चरित प्रकरण में गङ्गा की उत्पत्ति का सविस्तार वर्णन किया गया है — 'रोहित का पुत्र था हरित । हरित से चम्प हुआ । उसी ने चम्पापुरी बसायी थी । चम्प से सुदेव और उसका पुत्र विजय हुआ । विजय का भरुक, भरुक का वृक और वृक का पुत्र हुआ बाहुक । शत्रुओं ने बाहुक का राज्य छीन लिया तब वह अपनी पत्नी के साथ वन में चला गया । वन में बाहुक की मृत्यु हो गयी । महर्षि और्व ने यह जानकर कि उसकी पत्नी गर्भवती है उसे सती होने से रोक दिया । जब बाहुक की पत्नी की सौतों को यह बात मालुम हुयी, तब उन्होंने उसे भोजन के साथ गर (विष) दे दिया। परन्तु गर्भ पर उस विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि उस विष को लिये हुये ही बालक का जन्म हुआ, अतः गर के साथ पैदा होने के कारण वह बालक सगर कहलाया । सगर बड़े यशश्वी राजा हुये।'

सगर चक्रवर्ती सम्राट् बने । ...... और्व ऋषि के उपदेशानुसार उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण वेद एवं देवतामय आत्मस्वरूप, सर्वशक्तिमान् भगवान् की आराधना की । उनके यज्ञ में जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्र ने चुरा लिया । उस समय महारानी सुमति के गर्भ से उत्पन्न सगर के पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञानुसार घोड़े के लिये सारी पृथ्वी छान डाली । जब उन्हें कहीं घोड़ा नहीं मिला तब उन्होंने बड़े घमण्ड से सब ओर पृथ्वी को खोद डाला । खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तर के कोने पर कपिल मुनि के पास अपना घोड़ा दिखाई दिया । घोड़े को देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुये उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़े को चुराने वाला चोर है ।' ...... उसी समय कपिल मुनि ने अपनी पलकें खोलीं । ...... चूँकि उन्होंने कपिल मुनि जैसे ऋषि का तिरस्कार किया था इसके परिणामस्वरूप उनके शरीर में ही आग जल उठी और वे सब जलकर राख हो गये।

......"सगर की दूसरी पत्नी का नाम था केशनी । उसके गर्भ से उन्हें असमंजस नाम का पुत्र हुआ था । असमंजस के पुत्र का नाम था अंशुमान । वह अपने दादा सगर की आज्ञाओं के पालन तथा उन्हीं की सेवा में लगा रहता था । असमंजस पहले जन्म में योगी थे । संग के कारण वे योग से विचलित हो गये थे, परन्तु अब भी उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण बना हुआ था । इसीलिये वे ऐसे काम किया करते थे, जिनसे भाई-बन्धु उन्हें प्रिय न समझें । यहाँ तक कि खेलते हुये बच्चों को सरयू में डाल देते थे । अन्त में उनकी ऐसी करतूत देखकर पिता ने पुत्र स्नेह को तिलांजलि दे दी और उन्हें त्याग दिया । तदनन्तर असमंजस ने अपने योग बल से उन सब बालकों को जीवित कर दिया और अपने पिता को दिखाकर वे वन में चले गये[44]।'

'उसके बाद राजा सगर की आज्ञा से अंशुमान घोड़े को ढूँढ़ने के लिये निकले । उन्होंने अपने चाचाओं के द्वारा खोदे हुये समुद्र के किनारे-किनारे चलकर उनके शरीर के भस्म के पास ही घोड़े को देखा। वहीं भगवान् के अवतार कपिल मुनि बैठे हुये थे । उनको देखकर अंशुमान ने उनके चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एकाग्र मन से उनकी स्तुति की । फिर उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़े को ले आये । सगर ने उस यज्ञ पशु के द्वारा यज्ञ की शेष क्रिया समाप्त की ।'[45]

'अपने पुरखों को तारने के लिये अंशुमान ने गङ्गाजी को लाने के लिये बहुत वर्षों तक घोर तपस्या की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । समय आने पर उनकी मृत्यु हो गयी । अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी वैसी ही कठिन तपस्या की परन्तु वे भी असफल ही रहे और समय आने पर उनकी भी मृत्यु हो गयी । दिलीप के पुत्र थे भगीरथ । उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती गङ्गा ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि 'मैं तुम्हें वर देने के लिये आयी हूँ ।' उनके

ऐसा कहने पर राजा भगीरथ ने बड़ी नम्रता से अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मृत्युलोक में चलिये ।'

इस पर गङ्गा जी ने कहा 'जिस समय मैं स्वर्ग से पृथ्वी तल पर गिरुँ, उस समय मेरे वेग को कोई धारण करने वाला होना चाहिये । ऐसा न होने पर मैं पृथ्वी को फोड़कर रसातल में चली जाऊँगी । इसके अतिरिक्त इस कारण से भी मैं पृथ्वी पर नहीं जाऊँगी कि लोग मुझमें अपना पाप धोयेंगे । फिर मैं उस पाप को कहाँ धोऊँगी ?'

इस पर भगीरथ ने कहा 'माता ! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्र की कामना को त्यागकर संन्यास धारण कर लिया है, जो संसार से उपरत होकर अपने आप में शान्त हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ और लोकों को पवित्र करने वाले परोपकारी सज्जन हैं, वे अपने अंग स्पर्श से तुम्हारे पापों को नष्ट कर देंगे, क्योंकि उनके हृदय में अघरूप अघासुर को मारने वाले हरि सदा निवास करते हैं ।

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥[46]

समस्त प्राणियों के आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण कर लेंगे ।'

'गङ्गा जी से इस प्रकार कहकर राजा भगीरथ ने तपस्या के द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न किया । फिर शिव जी ने सावधान होकर गङ्गा को अपने सिर पर धारण कर लिया । ऐसा उन्होंने इसलिये भी किया कि भगवान् के चरणों का सम्पर्क होने के कारण गङ्गाजल परम पवित्र है । इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवन पावनी गङ्गा जी को वहाँ ले गये जहाँ उनके पितरों के शरीर राख के ढेर बने हुये थे । वे वायु के वेग के समान चलने वाले रथ पर सवार होकर आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे मार्ग में पड़ने वाले देशों को पवित्र करती हुयी गङ्गा जी दौड़ रही थीं । इस प्रकार गङ्गासागर संगम पर पहुँच कर उन्होंने सगर के जले हुये पुत्रों को अपने जल में डुबो लिया । यद्यपि सगर के जले

हुये पुत्र ब्राह्मण के तिरस्कार के कारण भस्म हो गये थे, इसलिये उनके उद्धार का कोई उपाय नहीं था । फिर भी केवल शरीर के राख के साथ गङ्गाजल का स्पर्श हो जाने से ही वे स्वर्ग चले गये । परीक्षित्! जब गङ्गाजल से शरीर के राख का स्पर्श हो जाने से सगर के पुत्रों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गयी तब जो लोग श्रद्धा के साथ नियम लेकर श्रीगङ्गाजी का सेवन करते हैं, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है ।

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥
भस्मीभूतांगसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजा ।
किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥[47]

- श्रीमद्भागवत 9/9/12-13

इसके बाद गङ्गा की महिमा का मुग्ध कण्ठ से गान करते हुये अमलात्मा परमहंस श्रीशुकदेव जी कहते हैं - 'परीक्षित् ! मैंने गङ्गा जी की महिमा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । क्योंकि गङ्गाजी भगवान् के उन चरण कमलों से निकली हैं, जिनका श्रद्धा के साथ चिन्तन करके बड़े-बड़े मुनि निर्मल हो जाते हैं और तीनों गुणों के कठिन बन्धन को काट कर तुरन्त भगवाद्स्वरूप बन जाते हैं । फिर गङ्गाजी संसार का बन्धन काट दें तो इसमें कौन सी बड़ी बात है ?

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥
संन्निवेश्य मनो यस्मिंछ्रद्धया मुनयोऽमलाः ।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥[48]

- श्रीमद्भागवत 9/9/14-15

इस तरह से हम देख सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में गङ्गा की उत्पत्ति एवं माहात्म्य का बड़े ही सुन्दर पर संक्षिप्त रूप से वर्णन है ।[49]

एकादश स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण से स्वधाम सिधारने के लिये देवता प्रार्थना करते हुये उनकी चरणकमलों की वन्दना करते हुये गङ्गा का स्मरण करते हैं । इस प्रकरण में भी अति संक्षेप में गङ्गा की उत्पत्ति और माहात्म्य दोनो ही आ गये हैं । देवता भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये कहते हैं - 'अनन्त ! वामनावतार में दैत्य राजा बलि की दी हुयी पृथ्वी को नापने के लिये जब आपने अपना पग उठाया था और वह सत्यलोक में पहुँच गया था, तब वह ऐसा जान पड़ता था मानों कोई बहुत बड़ा विजय ध्वज हो । ब्रह्माजी के पखारने के बाद उससे गिरती हुयी गङ्गाजी के जल की तीन धारायें ऐसी जान पड़ती थीं मानों उसमें लगी हुयी तीन पताकायें फहरा रही हों । उसे देखकर असुरों की सेना भयभीत हो गयी थी और देव सेना निर्भय । आपका वह चरणकमल साधुस्वभाव पुरुषों के लिये आपके धाम वैकुण्ठलोक की प्राप्ति का और दुष्टों के लिये अधोगति का कारण है । भगवन् ! आप का वही पादपद्म हम भजन करने वालों के सारे पाप-ताप धो-बहा दे ।

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेव चम्बोः ।
स्वर्गाय साधुसु खलेष्वितराय भूमन्
पादः पुनातु भगवन् भजतामघं नः ॥[50]

- श्रीमद्भागवत 11/6/13

श्रीमद्भागवत की गङ्गोत्पत्ति प्रकरण की सबसे बड़ी वैज्ञानिकता यह है कि इसमें आज के विज्ञान के तरह ही ब्राह्मण्ड को सीमाहीन नहीं वरन् सीमाबद्ध दिखाया गया है। कोई भी उत्पन्न होने वाली वस्तु अनन्त और असीम नहीं हो सकती है । पश्चिम के दर्शन में आकाश को एक तत्त्व नहीं माना जाता था तथा उसे अनादि मान लिया गया था । आज से करीब ढाई हजार वर्ष पहले पश्चिमी ग्रीक सभ्यता का उदय हुआ था । पाश्चात्य दर्शन का प्रारम्भ ग्रीक दार्शनिक थेल्स से माना जाता है जिसके

अनुसार संसार की सभी चीजें जल से बनी हैं । उसके अनुसार पानी वह मूलतत्त्व था जिससे संसार की सभी वस्तुएँ बनी हैं । इसके बाद प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक एनाक्सीमेनीज ने वायु को जल की जगह पर मूल तत्त्व माना । पाइथागोरस यूरोप का एक अर्थ में सांख्यवादी लगता है क्योंकि उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु संख्या है । इसके बाद हेराक्लिट्स पश्चिम का प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ । उसका मानना था कि प्रत्येक वस्तु अग्नि से ही प्रकट होती है । इसके बाद ग्रीक दर्शन का और आगे विकास होता है और एम्पेडोक्लीज ने सुझाव दिया कि प्रत्येक वस्तु चार मूल तत्त्वों से मिलकर बनी है और वे चारों तत्त्व हैं — पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल। एम्पेडोक्लीज का समय इतिहासकारों द्वारा करीब 440 ई.पू. निर्धारित किया जाता है । एम्पेडोक्लीज से लेकर आइन्सटीन के पहले तक पश्चिम के दार्शनिकों को यह पता नहीं था कि आकाश भी एक तत्त्व है और यह भी पैदा होता है और विनष्ट होता है, क्योंकि **'जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः'** । पाश्चात्य विद्वानों में आइन्सटीन ने सर्वप्रथम स्वीकार किया कि आकाश भी उत्पन्न होता है । उसके अनुसार समय (टाइम) आकाश (स्पेस) एवं द्रव्य (मैटर) ये तीनों एक दूसरे पर आश्रित अर्थात् एक दूसरे के सापेक्ष हैं । आकाश भी निरपेक्ष सत्ता नहीं है और ना ही वह अनन्त और अपरिमित है । सृष्टि की उत्पत्ति के सबसे आधुनिकतम् सिद्धान्त महाविस्फोट (बिगबैंग) के अनुसार भी अन्तरिक्ष की उत्पत्ति महाविस्फोट के साथ हुयी और वह आज भी फैल रहा है । इस अन्तरिक्ष के बाहर एक प्रकार का पदार्थ भरा है । जिसे डार्क मैटर कहा जाता है। यहाँ अंतरिक्ष से आशय आकाश की उस सीमा रेखा से है जिसके भीतर असंख्य ब्रह्माण्ड घूर्णित होते हुये प्रकाश के वेग से फैल रहे हैं ।

हमारे भारतीय दर्शन में वेदों में ही आकाश की उत्पत्ति की बात कह दी गयी है । ऋग्वेद के नासदीयसूक्त[51] में ही उस अवस्था की कल्पना की गई है जब यह आकाश भी नहीं था —

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ॥
किंमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भ किमासीद गहनं गभीरम् ॥[52]

- ऋग्वेद 10/29/1

अर्थात् 'उस महाप्रलय अवस्था में न तो असत् था और न सत् ही था । उस समय रजस् अर्थात् पृथ्वी से पाताल पर्यन्त लोक नहीं थे । तो क्या आकाश-अन्तरिक्ष और ऊपर के लोक थे ? वे भी नहीं थे । क्या आवरक था ? नहीं । जब आवर्य (आवरण करने योग्य) ही कुछ नहीं था तब आवरक कहाँ से होता ? वह देश (स्पेस) भी तो नहीं था जिसमें स्थित होकर आवरक आवर्य का आवरण करता । क्या दुष्प्रवेश्य और अत्यन्त अगाध जल था ? नहीं, वह भी नहीं था ।' नासदीयसूक्त के इस पहले मन्त्र में आज के महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्त महाविस्फोट के ठीक पूर्व की स्थिति का वर्णन है ।

तब काल (टाइम), स्पेस (अन्तरिक्ष) और द्रव्य (मैटर) ये तीनों नहीं थे । उपरोक्त मन्त्र में आकाश और द्रव्य का निषेध किया गया है और दूसरे मन्त्र यह कहकर कि **'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः'** अर्थात् उस समय मृत्यु अर्थात् काल नहीं था और न मृत्यु के अभाव से सिद्ध अमरण स्वभाव का कोई प्राणी ही था, रात-दिन और इनसे उपलक्षित मास, ऋतु, संवत्सर-प्रभृति सर्वकाल और इनके साधक सूर्य, चन्द्र नहीं थे । काल का भी निषेध कर दिया गया है । केवल एकमात्र अनिर्वचनीय परमब्रह्म की सत्ता थी । फिर उससे आकाश उत्पन्न हुआ —

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म,
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।

- तैत्तिरीय उपनिषद् उ.2/1/3

अर्थात् ब्रह्म से आकाश की उत्पत्ति हुयी । हम यहाँ इतना ही कहना चाहते हैं कि जो तथ्य विज्ञान के सामने प्रकट हो रहे हैं उसे हमारे

ऋषियों ने ज्ञान दृष्टि से पहले ही दर्शन कर हमारे वेदों में लिखा है । उन्हें पहले से ही पता था कि आकाश भी एक तत्त्व है, वह भी उत्पन्न होता है तथा उसकी भी एक सीमा है । विराट् रूप भगवान् विष्णु का पाद आकाश की उसी सीमा से टकरा गया एवं उसके चारों तरफ कारणसलिल के रूप में विद्यमान ब्रह्म द्रव्य स्रवित होकर भगवान् के पाद पद्मों को प्राक्षालित करते हुये ब्रह्मकमण्डलु में एकत्रित हो गया और वही गङ्गाजल बना ।

2- विष्णु पुराण में गंगा -

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के आठवें अध्याय में गङ्गा के आविर्भाव का तथा किंचित् माहात्म्य का भी वर्णन है — 'सप्तर्षियों से उत्तर दिशा में ऊपर की ओर जहाँ ध्रुव स्थित है वह अति तेजोमय स्थान ही आकाश में भगवान् विष्णु का तीसरा धाम है । पाप-पुण्य के नष्ट हो जाने पर प्राणीगण जिस स्थान पर जाकर फिर शोक नहीं करते वहीं भगवान् विष्णु का परमपद है । ...... इस विष्णु पद से ही देवांगनाओं के अंगराग से पाण्डुवर्ण हुयी सी, सर्वपापहारिणी श्री गङ्गाजी उत्पन्न हुयी हैं । विष्णु भगवान् के वाम चरण कमल के अंगूठे के नख रूप स्रोत से निकली हुयी उन गङ्गाजी को ध्रुव दिन-रात अपने मस्तक पर धारण करते हैं । तदनन्तर जिनके जल में खड़े होकर प्राणायाम-परायण सप्तर्षिगण उनकी तरंगों से कम्पायमान होती हुयी जटाओं के साथ अघमर्षण मन्त्र का जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जल समूह से आप्लावित होकर चन्द्रमण्डल क्षय के अनन्तर पुनः पहले से भी अधिक कांति धारण करता है, वे श्री गङ्गाजी चन्द्रमण्डल से निकलकर मेरु पर्वत के ऊपर गिरती हैं और संसार को पवित्र करने के लिये चारों दिशाओं में जाती हैं । चारों दिशाओं में जाने से वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा इन चार भेदों वाली हो जाती हैं। जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणी भेद को भगवान् शङ्कर ने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्ष से भी अधिक अपने मस्तक

पर धारण किया था, और जिसने श्रीशङ्कर के जटाकलाप से निकलकर पापी सगर पुत्रों के अस्थिचूर्ण को आप्लावित कर उन्हें स्वर्ग पहुँचा दिया था ।'[53]

गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये विष्णु पुराणकार का कथन है — 'गङ्गा में स्नान करने से शीघ्र ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है । गङ्गा के प्रवाह में पुत्रों द्वारा पितरों के लिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिन का तर्पण भी उन्हें सौ वर्ष तक दुर्लभ तृप्ति देता है । जिसके तट पर राजाओं ने महायज्ञों से महेश्वर भगवान् पुरुषोत्तम का यजन करके इहलोक और स्वर्गलोक में परम सिद्धि लाभ की है । जिसके जल में स्नान करने से निष्पाप हुये यतिजनों ने भगवान् केशव में चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाण पद प्राप्त किया है। जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श, जलपान, स्नान तथा यशोगान करने से ही नित्यप्रति प्राणियों को पवित्र करती रहती हैं —

श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने-दिने ।।[54]

- विष्णुपुराण 2/8/120

तथा 'गङ्गा'-'गङ्गा' ऐसा नाम सौ योजन की दूरी से भी उच्चारण किये जाने से जीवों के तीन जन्मों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं । त्रिलोकी को पवित्र करने वाली वह गङ्गा जिससे उत्पन्न हुई है, वही भगवान् का तीसरा परमपद है —

गङ्गा गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ।।
यतः सा पावनायालं त्रयाणां जगतामपि ।
समुद्भूता परं तत्तु तृतीयं भगवत्पदम् ।।[55]

- विष्णु पुराण 2/8/121-122

विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश के चौथे अध्याय में सगर, सौदास,

खट्वांग और भगवान् श्रीराम के चरित्र का वर्णन है । इसमें सगर की पीढ़ियों के वृत्तान्त में पृथ्वी पर गङ्गावतरण की प्रक्रिया का अति संक्षेप में वर्णन है । यथा - 'राजा सगर की सुमति और केशिनी दो स्त्रियाँ थीं। उनमें से भगवान् और्व के वरदान से केशिनी से एक तथा सुमति से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुये । केशिनी के पुत्र का नाम असमंजस था । यह असमंजस बाल्यावस्था से ही बड़ा दुराचारी था, लेकिन जब यौवन आने पर भी उसकी आदतों में सुधार नहीं हुआ तो पिता सगर ने दुखी मन से उसे त्याग दिया । लेकिन सगर के साठ हजार पुत्रों ने भी असमंजस के चरित्र का ही अनुकरण किया ।'

'राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया । अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार उन्होंने अपने साठ हजार पुत्रों को सौंप दिया । एक दिन कोई व्यक्ति उस घोड़े को चुराकर पृथ्वी में घुस गया । तब उस घोड़े के खुरों के चिन्हों का अनुसरण करते हुये इन साठ हजार पुत्रों में से प्रत्येक ने एक-एक योजन पृथ्वी खोद डाली । पाताल में पहुँचकर इन राजकुमारों ने अपने घोड़े को फिरते हुये देखा । पास ही में अपने तेज से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुये घोड़े को चुराने वाले परमर्षि कपिल को सिर झुकाये बैठे देखा । कपिल मुनि को घोड़े का चोर समझकर ये दुरात्मा 'मारो-मारो' ऐसा चिल्लाते हुये उनकी तरफ दौड़े । तब भगवान् कपिल के कुछ आँख बदलकर देखते ही वे सब अपने शरीर से ही उत्पन्न हुई अग्नि से जलकर नष्ट हो गये ।'

महाराज सगर की आज्ञा से असमंजस के पुत्र अंशुमान भगवान् कपिल से क्षमा-प्रार्थना करने एवं यज्ञ का घोड़ा लाने के लिये जाते हैं। वे भगवान् कपिल को प्रणति एवं स्तुति के द्वारा प्रसन्न करके अपने पितरों के उद्धार का मार्ग पूछते हैं । इस पर कपिल मुनि कहते हैं - 'तुम्हारा पौत्र गङ्गाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लायेगा । उनके जल से तुम्हारे पुरखों की अस्थियों का स्पर्श होते ही ये सब स्वर्ग को चले जायेंगे ।'

इस प्रकरण में गङ्गाजल के माहात्म्य का वर्णन करते हुये भगवान् कपिलदेवजी कहते हैं - 'भगवान् विष्णु के चरण-नख से निकले हुये गङ्गाजल का ऐसा महात्म्य है कि वह कामनापूर्वक केवल स्नानादि कार्यों में ही उपयोगी नहीं है, अपितु बिना कामना के मृतक पुरुष की अस्थि, चर्म, स्नायु अथवा केश आदि का स्पर्श हो जाने से या उसके शरीर का कोई अंग गिरने से भी वह देहधारी को तुरंत स्वर्ग में ले जाता है ।[56]

भगवान् कपिल के ऐसा कहने पर उनसे अनुमति माँगकर अंशुमान घोड़ा लेकर सगर को सौंप दिये और इस तरह से सगर महाराज का यज्ञ पूरा हुआ । इस अंशुमान के पुत्र हुये दिलीप । दिलीप के पुत्र का नाम था भगीरथ, जिसने गङ्गा जी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाकर उनका नाम भागीरथी कर दिया ।[57]

विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश के ही साठवें अध्याय में जह्नु के गङ्गापान की कथा मात्र एक पंक्ति में आती है । जिसके अनुसार पुरुरवा के आयु, अमावसु, विश्वावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु नामक छः पुत्र उत्पन्न हुये । अमावसु के भीम, भीम के कांचल, कांचल के सुहोत्र और सुहोत्र के जह्नु नामक पुत्र हुआ, जिसने सम्पूर्ण यज्ञशाला को गङ्गाजल से आप्लावित देख क्रोध से रक्तनयन हो भगवान् यज्ञपुरुष को परम समाधि के द्वारा अपने में स्थापित कर सम्पूर्ण गङ्गाजी को पी लिया था । तब देवर्षियों ने इन्हें प्रसन्न किया और गङ्गाजी को इनकी पुत्री के रूप में पाकर ले गये ।[58]

इस तरह से हम देखते हैं कि विष्णु पुराण में भी गङ्गा का अत्यधिक महत्त्व है और इन्हें भगवान् विष्णु के यश की विमल कीर्ति कहा गया है ।

3- शिव पुराण में गङ्गा –

शिवमहापुराण में स्वतन्त्र रूप से गङ्गा की न तो कथा है और ना ही उनके नाम पर कोई अध्याय है पर अन्य कथाओं के बीच में उनका

एवं उनके माहात्म्य का उल्लेख है । कोटिरुद्रसंहितान्तर्गत तीसरे एवं चौथे अध्याय में अनुसुइया एवं अत्रि की कथा है तथा गङ्गा एवं अत्रीश्वर लिंग की महिमा का वर्णन है । ऋषियों के पूछने पर सूतजी अत्रीश्वर लिंग की कथा सुनाते हुये कहते हैं - 'दक्षिण दिशा में चित्रकूट पर्वत के समीप कामद नामक बड़ा वन है । वहाँ ब्रह्मा के पुत्र अत्रिऋषि अनुसुइया के संग कठिन तप करते थे । अचानक वहाँ सौ वर्ष का भयानक अकाल पड़ा । सब वृक्ष सूख गये । कहीं नाम मात्र का जल नहीं बचा । अनुसुइया की प्रार्थना पर अत्रिमुनि अनावृष्टि निवारणार्थ भगवान् शिव की घोर आराधना करने लगे । इस बीच उनके सभी शिष्य उनको छोड़ कर चले गये । परम पवित्र अनुसुइया अपने पति की सेवा में लगी रहीं ।'

'उन दोनों के तप से प्रसन्न होकर देवता-ऋषि, सभी नदियों सहित गङ्गा भी दर्शन देने आयीं । सभी देवता एवं ऋषि तो अत्रि एवं अनुसुइया जी के तप एवं शिवार्चन की प्रशंसा करके चले गये, पर गङ्गाजी एवं भगवान् शिव दोनों वहाँ अत्रि के आश्रम में ठहर गये । गङ्गाजी ने कहा कि मैं अनुसुइया पर उपकार करके जाऊँगी और शिवजी अत्रिमुनि के तप से प्रसन्न होकर वहीं रुक गये । इस तरह से चौवन-वर्ष तप करते बीत गये तब अत्रि मुनि ध्यान से जगे एवं अनुसुइया से कहा कि जल ले आओ पर जल तो कहीं था ही नहीं । पतिव्रता अनुसुइया जी घबराई कि मैं जल कहाँ से लाऊँ ? तब माँ गङ्गा ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि मैं तुम्हारे पति सेवा से प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगों । तब अनुसुइया जी ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे जल दें । गङ्गाजी के आदेश पर परमसाध्वी अनुसुइया जी ने वहाँ एक गड्ढा खोदा और गङ्गाजी उसमें जल बनकर प्रविष्ट हुईं । अब अनुसुइया जी ने गङ्गाजी से प्रार्थना की कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो तब तक ऐसे ही स्थिर रहें, जब तक मेरे पति न आवें ।

'अनुसुइया जी ने अपने स्वामी को गङ्गाजल दिया और अत्रि ऋषि को यह जल सामान्य जल से कुछ अलग ही प्रतीत हुआ । अनुसूया से सब वृत्तान्त सुनकर वे अनुसुइया जी के साथ श्री गङ्गाजी का दर्शन करने के लिए आए और गङ्गाजी की स्तुति की तथा उस निर्मल गङ्गाजल में स्नान किया । ऋषि और उनकी पत्नी दोनों ने ही गङ्गाजी से प्रार्थना किया कि वे सबके लिए चित्रकूट में वास करें । इस पर गङ्गाजी ने अनुसुइया से कहा कि तुम अपने पति सेवा एवं शिवदर्शन के एक वर्ष का फल मुझे दे दो तो मैं सदा के लिए यहीं रह जाऊँगी । मेरी संतुष्टि दान, तीर्थ, यज्ञ और योग से नहीं होती है, मेरी संतुष्टि तो केवल पातिव्रत धर्म से होती है । एक पतिव्रता को देखकर मैं जितना प्रसन्न होती हूँ, उतना अन्य किसी उपाय से नहीं होती हूँ । पतिव्रता स्त्री को देखकर मेरा पाप नष्ट होता है । पातिव्रता स्त्री पार्वती के समान है ।

तथा दानेर्न मे तुष्टिस्तीर्थस्नानैस्तथा च वै ।
यज्ञेस्तथाथवा योगेर्यथा पातिव्रतेन च ।
पतिव्रतां यथा दृष्ट्वा मनसं प्रीणनं भवेत् ।
तथा नान्यैरुपायैश्च सत्यं मे व्याहृतं सति ।
पतिव्रतां स्त्रियं दृष्ट्वा पापनाशो भवेन्मम ।
शुद्धजातां विशेषेण गौरीतुल्या पतिव्रता ।।[59]

- शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता 4/43-46

'गङ्गाजी की याचना पर सती अनुसुइया ने अपने वर्ष भर के पातिव्रत का फल गङ्गाजी को दे दिया और गङ्गाजी सर्वदा के लिए मंदाकिनी के रूप में वहीं बहने लगीं ।'

कोटिरुद्रसंहिता के ही 24वें, 25वें, 26वें एवं 28वें अध्याय में त्र्यम्बकेश्वर महादेव एवं गौतम के व्रत के माहात्म्य का वर्णन है । इसमें गङ्गाजी के महत्त्व एवं माहात्म्य का उल्लेख है — 'सूतजी ऋषियों से

कहते हैं कि वे पाप को नाश करने वाली एक कथा कह रहे हैं । पहले गौतम नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि रहते थे । उनकी बड़ी ही धार्मिक अहिल्या नाम की पत्नी थीं । दक्षिण दिशा में ब्रह्म नामक पर्वत पर गौतम ऋषि ने दस सहस्त्र वर्ष तक तप किया । वहाँ एक सौ वर्ष का घोर अकाल पड़ा । चारो तरफ का जल सूख गया । आश्रम मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों से शून्य हो गया । गौतम ऋषि ने छः माह का घोर तपकर वरुण देव को प्रसन्न किया तथा उनके कहने पर एक गड्ढा खोदा जिसमें वरुण देव ने जल भर दिया । उसी जल से गौतम ने अपने आश्रम में अन्न उपजाना शुरु किया और शीघ्र ही उनका आश्रम अन्न, फल, फूल से भर गया तथा पशु पक्षियों से गुंजार हो गया । जो ऋषि लोग आश्रम छोड़कर गये थे वे भी एक-एक कर लौट आए । बाद में वहाँ निवास कर रहे ऋषि-पत्नियों एवं गौतम के शिष्यों में जल भरने पर विवाद हो गया । जिस पर चिढ़कर वहाँ रहने वाले ऋषि-मुनियों ने गौतम से द्वेष रखना प्रारम्भ कर दिया । उन ऋषियों ने गणेश जी को प्रसन्न किया और उनके आग्रह पर भक्त वत्सल गणेश जी एक दुर्बल गाय बनकर गौतम के द्वारा उपजाए जौ आदि अन्न के खेतों में चरने लगे । गौतम ऋषि ने मात्र तृण से ही उस गौ का निवारण करना चाहा पर उतने से ही वह गौ मृत हो गई ।

तब सभी ऋषियों ने मिलकर गौतम को धिक्कारना शुरु किया । गौतम ने जब उन ऋषियों से अपने पाप का प्रायश्चित्त पूछा तो उन सबों ने उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी की तीन बार तथा ब्रह्मपर्वत की एक सौ बार परिक्रमा करने के लिए कहा । यदि वे ऐसा न करना चाहें तो ऋषियों ने विकल्प सुझाया कि वे गङ्गाजी यहाँ लाकर स्नान करें एवं कोटि संख्या के पार्थिव शिवलिङ्गों को बनाकर उनका शिवार्चन करें । गौतम ने दूसरा विकल्प स्वीकार किया । उन्होंने पार्थिव शिवलिङ्गों का निर्माण कर उनकी विधिवत् पूजा की तथा भगवान् शिव ने पृथ्वी एवं स्वर्ग का

सार रूप तथा उनके विवाह में ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त गङ्गाजल को गौतम मुनि को प्रदान किया । उस समय गङ्गा (जल) वहाँ सुन्दर स्त्री के रूप में प्रकट हुईं ।'

उस स्त्री के रूप में प्रकट गङ्गाजल की गौतम ऋषि ने स्तुति की, 'हे गङ्गे ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो । तुमने सबको पवित्र किया है । नरक में गिरे हुए मुझको भी निश्चय ही पवित्र करो ।

धन्यासि कृतकृत्यासि पावितं भुवनं त्वया ।
मां च पावय गङ्गे त्वं पततं निरये ध्रुवम् ।।[60]

- शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता 26/24

शिवजी ने गङ्गाजी को गौतम ऋषि को पवित्र करने के लिए कहा। गङ्गाजी ने शिव आज्ञा शिरोधार्य करते हुए शिवजी से निवेदन किया कि वे गौतम ऋषि को कुटुम्ब सहित पवित्र कर अपने स्थान को चली जायेंगी । इस पर शिवजी ने गङ्गाजी से कहा कि जब तक कलियुग रहे और अट्ठाइसवाँ वैवस्वत् नामक मनु हो तब तक वहाँ निवास करें । इस पर गङ्गाजी ने कहा कि यदि उनका महत्त्व सबसे अधिक होगा तभी वे वहाँ निवास करेंगी तथा वे स्वयं पार्वती जी के साथ उनके तट पर निवास करें । शिवजी ने गङ्गा जी की प्रार्थना स्वीकार करते हुए स्वयं को उनसे अभिन्न बताया —

धन्यासि श्रुयतां गङ्गे ह्यहं भिन्नस्त्वया न हि ।
तथापि स्थयिते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि ।।[61]

- शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता 4/26/6

इसके बाद गङ्गा जी वहाँ शिवजी के साथ ब्रह्मा, विष्णु, अन्य सभी देवता तथा ऋषियों-मुनियों द्वारा पूजित हुईं । स्तुति करते हुये देवताओं से गङ्गाजी ने कहा कि यदि उनका वहाँ पर विशेष सम्मान होता रहेगा तो वह वहाँ निवास करती रहेंगी । इस पर सभी देवताओं ने गङ्गा जी के सामने प्रतिज्ञा की कि जब-जब बृहस्पति सिंह राशि में स्थित होंगे

तब-तब सभी देवता वहाँ आयेंगे तथा ग्यारह वर्षों तक संसार का पाप धोते-धोते जो उनके अन्दर मालिन्य आ गया होगा, उस मालिन्य को गङ्गा में धोकर वे पवित्र होंगे । वहाँ गङ्गा गौतमी नाम से प्रसिद्ध हुईं और वहाँ का शिवलिंग त्र्यम्बक नाम से विख्यात हुआ ।

शिवपुराण के अनुसार दक्षिण भारत में गौतमी नदी के रूप में बहने वाली यह गङ्गा ब्रह्मगिरि पर्वत से गूलर की शाखा से प्रवाहित हुयी और गोमुख की तरह ही दक्षिण की इस गङ्गा का नाम गङ्गाद्वार पड़ा जिसके दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है —

गङ्गाद्वारं च तन्नाम प्रसिद्धमभवत्तदा ।
सर्वपाप हरं रम्यं दर्शनान्मुनिसत्तमः ॥[62]

- शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता 4/26/6

4- स्कन्द महापुराण में गङ्गा -

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड पूर्वार्ध में श्रीमहादेव जी भगवान् श्री विष्णु से कहते हैं, 'हरे ! ब्राह्मण की शापाग्नि से दग्ध होकर बड़ी भारी दुर्गति में पड़े हुये जीवों को गङ्गा के सिवा दूसरा कौन स्वर्गलोक में पहुँचा सकता है, क्योंकि वह शुद्ध विद्यास्वरूपा, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्तियों वाली दयामयी, आनन्दामृतरूपा तथा शुद्ध धर्मस्वरूपणी हैं । जगद्धात्री परब्रह्मस्वरूपिणी गङ्गा को मैं अखिल विश्व की रक्षा करने के लिये लीलापूर्वक अपने मस्तक पर धारण करता हूँ । विष्णो ! जिसने गङ्गाजी का सेवन कर लिया उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया, सब यज्ञों की दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण व्रतों का अनुष्ठान पूरा कर लिया । कलियुग में कलुषित चित्त वाले, पराये धन का लोभ रखने वाले तथा विधिहीन कर्म करने वाले मनुष्यों के लिये गङ्गाजी के बिना दूसरी कोई गति नहीं है । ...... गङ्गा के गर्भ में मेरा तेज स्वरूप अग्नि है, वह मेरे वीर्य से सुरक्षित है । अतएव गङ्गा सब दोषों को जलाने वाली तथा सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली है । ...... जो चलते, खड़े

होते, जप और ध्यान करते, खाते-पीते, जागते-सोते तथा बात करते समय भी सदा गङ्गाजी का स्मरण करता रहता है, वह संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है —

गच्छन्तिष्ठन् जपन् ध्यायन् भुंजन् जाग्रन् स्वपन् वदन् ।
यः स्मरेत्सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात् ॥[63]

- स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध 27/37

जैसे बिना इच्छा के भी स्पर्श करने पर आग जला देती है, उसी प्रकार अनिच्छा से भी अपने जल में स्नान करने पर गङ्गा मनुष्य के पापों को भस्म कर देती हैं —

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहन्त्येव हि पावकः ।
अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत् ॥[64]

- स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध 27/37

जैसे मन्त्रों में ओंकार, धर्मों में अहिंसा और कमनीय वस्तुओं में लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं तथा जिस प्रकार विद्याओं में आत्मविद्या और स्त्रियों में गौरीदेवी उत्तम हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में गङ्गा तीर्थ विशेष माना गया है ।

गङ्गा-मन्त्र –

'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा'

यह बीस अक्षर का मन्त्र है । गङ्गाजी के लिये पूजा, दान, जप, होम सब इसी मन्त्र से करने योग्य है । इस मन्त्र के द्वारा विधि-विधान से पूजा करने वाला व्यक्ति निम्न दस पापों से मुक्त हो जाता है —

दैहिक पाप -

(1) बिना दी हुयी वस्तु को लेना (2) निषिद्ध हिंसा (3) परस्त्री संगम ।

वाचिक पाप -

(1) कठोर वचन बोलना (2) झूठ बोलना (3) चुगली करना (4) व्यर्थ का प्रलाप करना ।

मानसिक पाप -

(1) दूसरे के धन लेने का विचार करना । (2) दूसरों का बुरा सोचना । (3) असत्य वस्तुओं में आग्रह रखना ।

गङ्गा की विधि-विधान से पूजा करने वाला पुरुष दस जन्मों में उपार्जित इन दस प्रकार के पापों से निसंदेह छूट जाता है ।

स्कन्दपुराण के इसी अध्याय में गङ्गा को आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक, इन तीनों प्रकार के क्लेशों का संहार करने वाली कहा है । भूतल पर बहने वाली गङ्गा के अतिरिक्त पाताललोक में बहने वाली एवं आकाश में प्रवहमान मन्दाकिनी के माहात्म्य का वर्णन है । भोगावती को समस्त भोग प्रदान करने वाली तथा मन्दाकिनी को स्वर्गप्रदायिनी बतलाया गया है । साथ ही गङ्गा को गार्हपत्य, आह्वनीय एवं दाक्षिण्य अग्नि का तेज रूप कहा गया है । इसी पुराण में गङ्गा को सुधाधारा भी कहा गया है । गङ्गा केवल स्वर्ग ही नहीं प्रदान करती हैं वरन् वह ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देने वाली तथा समस्त पापों का नाश करने वाली हैं । गङ्गा जगन्माता हैं । गङ्गा ही मूलप्रकृति हैं, वही परम पुरुष हैं, वही परमात्मा शिव हैं -

त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि ।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे ॥[65]

- स्कन्दुपुराण काशीखण्ड 27/157-174

तारणहारिणी गङ्गा -

स्कन्दपुराणानुसार जो तीनों लोकों में प्रवाहित होने वाली गङ्गाजी के तट पर जाकर एक बार भी पिण्डदान करता है वह तिलमिश्रित जल के द्वारा अपने पितरों का उद्धार कर देता है । सम्पूर्ण देवता और पितर गङ्गाजी में सदा वर्तमान रहते हैं, इसीलिये वहाँ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता है । तीनों लोकों में जो कोई भी मनोवांछित फल देने वाले हैं, वे सब काशी में उत्तरवाहिनी गङ्गा का सेवन करते हैं । जो

गङ्गाजी के तट पर टूटे-फूटे घाटों का संस्कार करते हैं अथवा गिर पड़े मन्दिरों का जीर्णोद्धार करते हैं वे मेरे लोक में (शिवलोक में) चिरकाल तक अत्यन्त सुख भोगते हैं । मनुष्य की हड्डी जब तक गङ्गाजल में स्थित रहती हैं, उतने हजार वर्षों तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहता है । स्कन्दपुराणानुसार गङ्गा मुक्ति-भुक्तिप्रदायिनी है ।

स्कन्दजी मुनिवर अगस्त्य से कहते हैं कि गङ्गाजी द्रवरूप में भगवान् सदाशिव की कोई पराशक्ति हैं । करुणारूपी अमृतरस से भरे हुये देवाधिदेव भगवान् शंकर ने समस्त संसार का उद्धार करने के लिये ही गङ्गाजी को प्रवृत्त किया है । गङ्गाधर शिव ने दयावश श्रुतियों के अक्षरों को निचोड़ कर उस ब्रह्मद्रव से ही गङ्गा का निर्माण किया है ।

जो गङ्गाजी की मिट्टी को अपने मस्तक पर लगाता है उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है । गङ्गा अपने नाम का कीर्तन करने से ही पुण्य की वृद्धि और पाप का नाश करती है । दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा उसमे स्नान करने से क्रमशः दस गुना फल होता है ।

ऋषियों द्वारा सेवित, भगवान् विष्णु के चरणों से उत्पन्न अति प्राचीन तथा परमपुण्यमयी धारा से युक्त भगवती गङ्गा की जो लोग मन से शरण लेते हैं, वे ब्रह्म धाम को प्राप्त होते हैं ।

गङ्गा सहस्त्रनाम स्तोत्र -

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड पूर्वार्ध के अध्याय उन्तीस में 'गङ्गा नाम सहस्त्र स्तोत्र' है, जिसका गङ्गा भक्तों के लिये बहुत ही अधिक महत्त्व है । यह स्तोत्र इस अध्याय के 17वें से लेकर 68वें श्लोक तक कुल 52 श्लोकों में है । स्कन्दपुराणानुसार गङ्गा में स्नान किये बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है, स्यात् यही सोचकर भगवान् शिव ने अपने मस्तक पर गङ्गाजी को धारण कर रखा है । जब स्कन्दजी ने गङ्गा में स्नान की यह अनिवार्यता अगस्त्य जी के सामने रखी तो अगस्त्य जी ने पूछ लिया - 'भगवन् ! यदि कोई किसी कारणवश गङ्गाजी तक

पहुँचकर उनमें स्नान न कर सके तो भी उसका कल्याण हो सकेगा क्या? इसका कोई दूसरा उपाय भी है ?' इस पर स्कन्द जी कहते हैं - 'एक उपाय तो है, पर वह परमगोपनीय है तथा जो भगवान् शिव और विष्णु का भक्त न हो उसे यह उपाय बताना नहीं चाहिये । वह उपाय है- भगवती गङ्गा का सहस्रनाम स्तोत्र । यह जपने योग्य मन्त्रों में सर्वोत्तम और वेदों के उपनिषद् भाग के समान मनन करने योग्य है । साधक को मौन होकर प्रयत्नपूर्वक इसका जप करना चाहिये ।'

इसके बाद भगवान् स्कन्दजी अगस्त्य मुनि को गङ्गासहस्रनामस्तोत्र सुनाते हैं जिसमें वर्णक्रमानुसार गङ्गा के ओंकाररुपिणी से लेकर क्षमा तक एक हजार नामों का उल्लेख है। यह स्तोत्र निम्नलिखित है —

ॐकाररूपिण्यजरातुलानन्तामृतस्रवा ।
अत्युदाराभयाशोकालकनन्दामृतामला ॥
अनाथवत्सलामोघापांयोनिरमृतप्रदा ।
अव्यक्तलक्षणाक्षोभ्यानवच्छिन्नापराजिता ॥
अनाथनाथाभीष्टार्थसिद्धिदानङ्गवर्द्धिनी ।
अणिमादिगुणाऽऽधाराग्रगण्यालीकहारिणी ॥
अचिन्त्यशक्तिरनघाद्भुतरूपाघहारिणी ।
अद्रिराजसुताष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाच्युता ॥
अक्षुण्णशक्तिरसुदानन्ततीर्थामृतोदका ।
अनन्तमहिमापारानन्तसौख्यप्रदान्नदा ॥
अशेषदेवतामूर्तिरघोरामृतरूपिणी ।
अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥
अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता ।
अज्ञानतिमिरज्योतिरनुग्रहपरायणा ॥
अभिरामानवद्याङ्ग्यनन्तसाराकलङ्किनी ।

आरोग्यदाऽऽनन्दवल्ली त्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥
आश्चर्यमूर्तिरायुष्या ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता ।
आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥
आलस्यघ्न्यापदां हन्त्री ह्यानन्दामृतवर्षिणी ।
इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्तफलप्रदा ॥
इतिहासश्रुतीड्यार्था त्विहामुत्रशुभप्रदा ।
इज्याशीलसमिज्येष्ठा त्विन्द्रादिपरिवन्दिता ॥
इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्दिरा रम्यमन्दिरा ।
इदिन्दिरादिसंसेव्या त्वीश्वरीश्वरवल्लभा ॥
ईतिभीतिहरेड्या च त्वीडनीयचरित्रभृत् ।
उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी ॥
उदिताम्बरमार्गोस्त्रोरगलोकविहारिणी ।
उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा उपेन्द्रचरणाद्रवा ॥
उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्द्धिनी ।
उद्वेगघ्न्युष्णशमनी ह्युष्णरश्मिसुताप्रिया ॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी ।
ऊर्जंवहन्त्यूर्जधरोर्जावती चोर्मिमालिनी ॥
ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वा ह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा ।
ऋषिवृन्दस्तुतिर्द्धिश्च ऋणत्रयविनाशिनी ॥
ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया ।
ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ॥
एधिताखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी ।
एधनीयस्वभावैज्या त्वेजिताशेषपातका ॥
ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यं ह्यैन्दवीद्युतिः ।
ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौदनदायिनी ॥
ओष्ठामृतौन्नत्यदात्री त्वौषधं भवरोगिणाम् ।

औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौग्री ह्यौमेयरूपिणी ॥
अम्बराध्ववहाम्बष्ठाम्बरमालाम्बुजेक्षणा ।
अम्बिकाम्बुमहायोनिरन्धोदान्धकहारिणी ॥
अंशुमाला ह्यंशुमती त्वङ्गीकृतषडानना ।
अन्धतामिस्रहन्त्र्यन्धुरञ्जना ह्यञ्जनावती ॥
कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी ।
कुमुद्वती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी ॥
काञ्चनाक्षी कामधेनुः कीर्तिकृत्क्लेशनाशिनी ।
क्रतुश्रेष्ठा क्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी ॥
कमलाक्षी क्लमहरा कृशानुतपनद्युतिः ।
करुणार्द्रा च कल्याणी कलिकल्मषनाशिनी ॥
कामरूपा क्रियाशक्तिः कमलोत्पलमालिनी ।
कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना कलावती ॥
कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी ।
कमनीयजला कम्रा कपर्दिसुकपर्दगा ॥
कालकूटप्रशमनी कदम्बकुसुमप्रिया ।
कालिन्दि केलिललिता कलकल्लोलमालिका ॥
क्रान्तलोकत्रया कण्डूः कण्डूतनयवत्सला ।
खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी ॥
खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया ।
खेचरी खेचरीवन्द्या ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी ॥
खण्डितप्रणताघौघा खलुबुद्धिविनाशिनी ।
खातैनःकन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥
खरसन्तापशमनी खनिः पीयूषपाथसाम् ।
गङ्गा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया ॥
गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का गतिप्रिया ।

गणनाथाम्बिका गीता गद्यपद्यपरिष्टुता ॥
गान्धारी गर्भशमनी गतिभ्रष्टगतिप्रदा ।
गोमती गुह्यविद्या गौर्गोप्त्री गगनगामिनी ॥
गोत्रप्रवर्द्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणीः ।
गुहाम्बिका गिरिसुता गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा ॥
गुणनीयचरित्रा च गायत्री गिरिशप्रिया ।
गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्द्धिनी ॥
ग्रहपीडाहरा गुन्द्रा गरघ्नी गानवत्सला ।
घर्महन्त्री घृतवती घृततुष्टिप्रदायिनी ॥
घण्टारवप्रिया घोराघौघविध्वंसकारिणी ।
घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दा घनप्रिया ॥
घातुका घूर्णितजला घृष्टपातकसन्ततिः ।
घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला ॥
घृणावती घृणनिधिर्घस्मरा घूकनादिनी ।
घुसृणापिञ्जरतनुर्घर्घरा घर्घरस्वना ॥
चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बुश्चञ्चदापा चलद्युतिः ।
चिन्मयी चितिरूपा च चन्द्रायुतशतानना ॥
चाम्पेयलोचना चारुश्चचार्वङ्गी चारुगामिनी ।
चार्या चारित्रनिलया चित्रकृच्चित्ररूपिणी ॥
चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुश्चर्चनीया चिरस्थिरा ।
चारुचम्पकमालाढ्या चमिताशेषदुष्कृता ॥
चिदाकाशवहा चिन्त्या चञ्चच्चामरवीजिता ।
चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमण्डला ॥
छेदिताखिलपापौधा छद्मघ्नी छलहारिणी ।
छन्नत्रिविष्टपतला छोटिताशेषबन्धुना ॥
छुरितामृतधारौघा छिन्नैनाश्छन्दगामिनी ।

छत्रीकृतमरालौघा छटीकृतनिजामृता ॥
जाह्नवी ज्या जगन्माता जप्या जङ्घालवीचिका ।
जया जनार्दनप्रीता जुष्णीया जगद्धिता ॥
जीवनं जीवनप्राणा जगज्ज्येष्ठा जगन्मयी ।
जीवजीवातुलतिका जन्मिजन्मनिबर्हिणी ॥
जाड्यविध्वंसनकरी जगद्योनिर्जलाविला ।
जगदानन्दजननी जलजा जलजेक्षणा ॥
जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी ।
जयन्ती जञ्जपूकघ्नी जनितज्ञानविग्रहा ॥
झल्लरीवाद्यकुशला झलज्झालजलावृता ।
झिण्टीशवन्द्या झाङ्कारकारिणी झर्झरावती ॥
टीकिताशेषपाताला टङ्किकैनोऽद्रिपाटने ।
टङ्कारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥
डम्बरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला ।
डमड्डमरुहस्ता च डामरोक्तमहाण्डका ॥
ढौकिताशेषनिर्वाणा ढक्कानादचलज्जला ।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढणड्डुणितपातका ॥
तर्पणी तीर्थतीर्था च त्रिपथा त्रिदशेश्वरी ।
त्रिलोकगोप्त्री तोयेशी त्रैलोक्यपरिवन्दिता ॥
तापत्रितयसंहर्त्री तेजोबलविवर्धिनी ।
त्रिलक्ष्या तारणी तारा तारापतिकरार्चिता ॥
त्रैलोक्यपावनी पुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी ।
तृष्णाच्छेत्री तीर्थमाता त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥
तपोमयी तपोरूपा तपःस्तोमफलप्रदा ।
त्रैलोक्यव्यापिनी तृप्तिस्तृप्तिकृत्तत्त्वरूपिणी ॥
त्रैलोक्यसुन्दरी तुर्या तुर्यातीतफलप्रदा ।

त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदी तथ्या तिमिरचन्द्रिका ॥
तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोगृहा ।
त्रयीस्वरूपिणी तन्वी तपनाङ्गजभीतिनुत् ॥
तरिस्तरणिजामित्रं तर्पिताशेषपूर्वजा ।
तुलाविरहिता तीव्रपापतूलतनूनपात् ॥
दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमण्डना ।
दीक्षावती दुरावाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत् ॥
दर्शितानेककुतुका दुष्टदुर्जयदुःखहृत् ।
दैन्यहृद् दुरितघ्नी च दानवारिपदाब्जजा ॥
दन्दशूकविषघ्नी च दारिताघौघसन्ततिः ।
द्रुता देवद्रुमच्छन्ना दुर्वाराघविघातिनी ॥
दमग्राह्या देवमाता देवलोकप्रदर्शिनी ।
देवदेवप्रिया देवी दिक्पालपददायिनी ॥
दीर्घायुःकारिणी दीर्घा दोग्ध्री दूषणवर्जिता ।
दुग्धाम्बुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा ॥
द्युनदी दीनशरणं देहिदेहनिवारिणी ।
द्राघीयसी दाघहन्त्री दितपातकसन्ततिः ॥
दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देववल्लभा ।
दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती ॥
दुरासदा दानशीला द्राविणी द्रुहिणस्तुता ।
दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुर्बुद्धिहारिणी ॥
दानसारा दयासारा द्यावाभूमिविगाहिनी ।
दृष्टादृष्टफलप्राप्तिर्देवतावृन्दवन्दिता ॥
दीर्घव्रता दीर्घदृष्टिर्दीप्ततोया दुरालभा ।
दण्डयित्री दण्डनीतिर्दुष्टदण्डधरार्चिता ॥
दुरोदरघ्नी दावार्चिर्द्रवद्द्रव्यैकशेवधिः ।

दीनसन्तापशमनी दात्री दवथुवैरिणी ॥
दरीविदारणपरा दान्ता दान्तजनप्रिया ।
दारिताद्रितटा दुर्गा दुर्गारण्यप्रचारिणी ॥
धर्मद्रवा धर्मधुरा धेनुर्धीरा धृतिर्ध्रुवा ।
धेनुदानफलस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा ॥
धर्मोर्मिवाहिनी धुर्या धात्री धात्रीविभूषणम् ।
धर्मिणी धर्मशीला च धन्विकोटिकृतावना ॥
ध्यातृपापहरा ध्येया धावनी धूतकल्मषा ।
धर्मधारा धर्मसारा धनदा धनवर्द्धिनी ॥
धर्माधर्मगुणच्छेत्री धत्तूरकुसुमप्रिया ।
धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥
धर्मलभ्या धर्मजला धर्मप्रसवधर्मिणी ।
ध्यानगम्यस्वरूपा च धरणी धातृपूजिता ॥
धूर्धूर्जटिजटासंस्था धन्या धीर्धारणावती ।
नन्दा निर्वाणजननी नन्दिनी नुन्नपातका ॥
निषिद्धविघ्ननिचया निजानन्दप्रकाशिनी ।
नभोऽङ्गणचरी नूतिर्नम्या नारायणी नुता ॥
निर्मला निर्मलाख्याना नाशिनी तापसम्पदाम् ।
नियता नित्यसुखदा नानाश्चर्यमहानिधिः ॥
नदी नदसरोमाता नायिका नाकदीर्घिका ।
नष्टोद्धरणधीरा च नन्दना नन्ददायिनी ॥
निर्णिक्ताशेषभुवना निःसङ्गा निरुपद्रवा ।
निरालम्बा निष्प्रपञ्चा निर्णाशितमहामला ॥
निर्मलज्ञानजननी निःशेषप्राणितापहृत् ।
नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्या निरञ्जना ॥
निष्ठावती निरातङ्का निर्लेपा निश्चलात्मिका ।

निरवद्या निरीहा च नीललोहितमूर्द्धगा ॥
नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या नागा नन्दा नगात्मजा ।
निष्प्रत्यूहा नाकनदी निरयार्णवदीर्घनौः ॥
पुण्यप्रदा पुण्यगर्भा पुण्या पुण्यतरङ्गिणी ।
पृथुः पृथुफला पूर्णा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी ॥
प्राणदा प्राणिजननी प्राणेशी प्राणरूपिणी ।
पद्मालया पराशक्तिः पुरजित्परमप्रिया ॥
परा परफलप्राप्तिः पावनी च पयस्विनी ।
परानन्दा प्रकृष्टार्था प्रतिष्ठा पालिनी परा ॥
पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी ।
पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशविमोचनी ॥
परमात्मस्वरूपा च परब्रह्मप्रकाशिनी ।
परमानन्दनिष्पन्दा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी ॥
पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा ।
पापेन्धनदवज्वाला पापारिः पापनामनुत् ॥
परमैश्वर्यजननी प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा ।
प्रत्यक्षलक्ष्मीः पद्माक्षी परव्योमामृतस्रवा ॥
प्रसन्नरूपा प्रणिधिः पूता प्रत्यक्षदेवता ।
पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमण्डलुः ॥
पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता पद्ममालिनी ।
परर्द्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्तिः प्रभावती ॥
पुनाना पीतगर्भघ्नी पापपर्वतनाशिनी ।
फलिनी फलहस्ता च फुल्लाम्बुजविलोचना ॥
फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषणम् ।
फेनच्छलप्रणुन्नैनाः फुल्लकैरवगन्धिनी ॥
फेनिलाच्छाम्बुधाराभा फुडुच्चाटितपातका ।

फणितस्वादुसलिला फाण्टपथ्यजलविला ॥
विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्वेश्वरप्रिया ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मकृद्ब्राह्मी ब्रह्मिष्ठा विमलोदका ॥
विभावरी च विरजा विक्रान्तानेकविष्टपा ।
विश्वमित्रं विष्णुपदी वैष्णवी वैष्णप्रिया ॥
विरूपाक्षप्रियकरी विभूतिर्विश्वतोमुखी ।
विपाशा वैबुधी वेद्या वेदाक्षररसस्त्रवा ॥
विद्या वेगवती वन्द्या बृंहणी ब्रह्मवादिनी ।
वरदा विप्रकृष्टा च वरिष्ठा च विशोधनी ॥
विद्याधरी विशोका च वयोवृन्दनिषेविता ।
बहूदका बलवती व्योमस्था विबुधप्रिया ॥
वाणी वेदवती वित्ता ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी ।
ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुर्ब्रह्महत्यापहारिणी ॥
ब्रह्मेशविष्णुरूपा च बुद्धिर्विभववर्द्धिनी ।
विलासिसुखदा वश्या व्यापिनी च वृषारणिः ॥
वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जनी ।
विनीता विनता ब्रध्नतनया विनयान्विता ॥
विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा ।
वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा ॥
विपाप्मा विगतातङ्का विकल्पपरिवर्जिता ।
वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना ॥
व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् ।
वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी विभावसुः ॥
विजया विश्वबीजं च वामदेवी वरप्रदा ।
वृषाश्रिता विषघ्नी च विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी ॥
भव्या भोगवती भद्रा भवानी भूतभाविनी ।

भूतधात्री भयहरा भक्तदारिद्र्यघातिनी ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा ।
भागीरथी भानुमती भाग्यं भोगवती भृतिः ॥
भवप्रिया भवद्वेष्ट्री भूतिदा भूतिभूषणा ।
भाललोचनभावज्ञा भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥
भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा ।
भूरिदा भक्तसुलभा भाग्यवद्दृष्टिगोचरी ॥
भञ्जितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा ।
भिक्षणीया भिक्षुमाता भावी भावस्वरूपिणी ॥
मन्दाकिनी महानन्दा माता मुक्तितरङ्गिणी ।
महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी ॥
मुनिस्तुता मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा ।
माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा ॥
मोक्षदा मतिदा मुख्या महाभाग्यजनाश्रिता ।
महावेगवती मेध्या महा महिमभूषणा ॥
महाप्रभावा महती मीनचञ्चललोचना ।
महाकारुण्यसम्पूर्णा महर्द्धिश्च महोत्पला ॥
मूर्तिमन्मुक्तिरमणी मणिमाणिक्यभूषणा ।
मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी ॥
महापातकराशिघ्नी महादेवार्धहारिणी ।
महोर्मिमालिनी मुक्ता महादेवी मनोन्मनी ॥
महापुण्योदयप्राप्या मायातिमिरचन्द्रिका ।
महाविद्या महामाया महामेधा महौषधम् ॥
मालाधरी महोपाया महोरगविभूषणा ।
महामोहप्रशमनी महामङ्गलमङ्गलम् ॥
मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मीर्मदोज्झिता ।

यशस्विनी यशोदा च योग्या युक्तात्मसेविता ॥
योगसिद्धप्रदा याच्या यज्ञेशपरिपूरिता ।
यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी ॥
यमिसेव्या योगयोनिर्योगिनी युक्तबुद्धिदा ।
योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक् ॥
यन्त्रिताघौघसंचारा यमलोकनिवारिणी ।
यातायातप्रशमनी यातनानामकृन्तनी ॥
यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविवर्जिता ।
रेवती रतिकृद् रम्या रत्नगर्भा रमा रतिः ॥
रत्नाकरप्रेमपात्रं रसज्ञा रसरूपिणी ।
रत्नप्रासादगर्भा च रमणीयतरङ्गिणी ॥
रत्नार्ची रुद्ररमणी रागद्वेषविनाशिनी ।
रमा रामा रम्यरूपा रोगिजीवानुरूपिणी ॥
रुचिकृद् रोचनी रम्या रुचिरा रोगहारिणी ।
राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोलराजिका ॥
रामणीयकरेखा च रुजारी रोगरोषिणी ।
राका रङ्कार्तिशमनी रम्या रोलम्बराविणी ॥
रागिणी रञ्जितशिवा रूपलावण्यशेवधिः ।
लोकप्रसूर्लोकवन्द्या लोलत्कल्लोलमालिनी ॥
लीलावती लोकभूमिर्लोकलोचनचन्द्रिका ।
लेखस्रवन्ती लटभा लघुवेगा लघुत्वहृत् ॥
लास्यतरङ्गहस्ता च ललिता लयभङ्गिगा ।
लोकबन्धुर्लोकधात्री लोकोत्तरगुणोर्जिता ॥
लोकत्रयहिता लोका लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता ।
लीला लक्षितनिर्वाणा लावण्यामृतवर्षिणी ॥
वैश्वानरी वासवेड्या वन्ध्यत्वपरिहारिणी ।

वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी वज्रिवज्रनिवारिणी ॥
शुभावती शुभफला शान्तिः शान्तनुवल्लभा ।
शूलिनी शैशववया शीतलामृतवाहिनी ॥
शोभावती शीलवती शोषिताशेषकिल्बिषा ।
शरण्या शिवदा शिष्टा शरजन्मप्रसूः शिवा ॥
शक्तिः शशाङ्कविमला शमनस्वसृसम्मता ।
शमा शमनमार्गघ्नी शितिकण्ठमहाप्रिया ॥
शुचिः शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा ।
श्रीनिवासश्रुतिः श्रद्धा श्रीमती श्रीः शुभव्रता ॥
शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुतानन्दा श्रुतिस्तुतिः ।
शिवेतरघ्नी शबरी शाम्बरीरूपधारिणी ॥
श्मशानशोधनी शान्ता शश्वच्छतधृतिस्तुता ।
शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभृत् ॥
शंसनीयचरित्रा च शातिताशेषपातका ।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गश्रुतिरूपिणी ॥
षण्ढताहारिसलिला स्त्यायन्नदनदीशता ।
सरिद्वरा च सुरसा सुप्रभा सुरदीर्घिका ॥
स्वःसिन्धुः सर्वदुःखघ्नी सर्वव्याधिमहौषधम् ।
सेव्या सिद्धिः सती सूक्तिः स्कन्दसूश्च सरस्वती ॥
सम्पत्तरङ्गिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया ।
स्थैर्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी ॥
स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधाजला ।
समुद्ररूपिणी स्वर्ग्या सर्वपातकवैरिणी ॥
स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरण्डिका ।
सौभाग्यसुन्दरी सन्ध्या सर्वसारसमन्विता ॥
हरप्रिया हृषीकेशी हंसरूपा हिरण्मयी ।

हृताघसंघा हितकृद्धेला हेलाघगर्वहृत् ॥

- स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध 29/17-68

स्कन्दजी ने अगस्त्य मुनि को गङ्गाजी के जो एक हजार नाम बताये वो निम्नवत् हैं —

1. ॐकाररूपिणी, 2. अजरा, 3. अतुला, 4. अनन्ता, 5. अमृतस्रवा, 6. अत्युदारा, 7. अभया, 8. अशोका, 9. अलकनन्दा, 10. अमृता, 11. अमला, 12. अनाथवत्सला, 13. अमोघा, 14. अपांयोनिः, 15. अमृतप्रदा, 16. अव्यक्तलक्षणा, 17. अक्षोभ्या, 18. अनवच्छिन्ना, 19. अपरा, 20. अजिता, 21. अनाथनाथा, 22. अभीष्टार्थसिद्धिदा, 23. अनङ्गवर्द्धिनी, 24. अणिमादि-गुणा, 25. आधारा, 26. अग्रगण्या, 27. अलकहारिणी, 28. अचिन्त्यशक्तिः, 29. अनघा, 30. अद्भुतरूपा, 31. अघहारिणी, 32. अद्रिराजसुता, 33. अष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदा, 34. अच्युता, 35. अक्षुण्णशक्तिः, 36. असुदा, 37. अनन्ततीर्था, 38. अमृतोदका, 39. अनन्तमहिमा, 40. अपारा, 41. अनन्तसौख्यप्रदा, 42. अन्नदा, 43. अशेषदेवतामूर्तिः, 44. अघोरा, 45. अमृतरूपिणी, 46. अविद्याजालशमनी, 47. अप्रतर्क्यगतिप्रदा, 48. अशेषविघ्नसंहर्त्री, 49. अशेषगुणगुम्फिता, 50. अज्ञानतिमिरज्योतिः, 51. अनुग्रहपरायणा, 52. अभिरामा, 53. अनवद्याङ्गी, 54. अनन्तसारा, 55. अकलङ्किनी, 56. आरोग्यदा, 57. आनन्दवल्ली, 58. आपन्नार्तिविनाशिनी, 59. आश्चर्यमूर्तिः, 60. आयुष्या, 61. आढ्या, 62. आद्या, 63. आप्रा, 64. आर्यसेविता, 65. आप्यायिनी, 66. आप्तविद्या, 67. आख्या, 68. आनन्दा, 69. आश्वासदायिनी, 70. आलस्यघ्नी, 71. आपदां हन्त्री, 72. आनन्दामृतवर्षिणी, 73. इरावती, 74. इष्टदात्री, 75. इष्टा, 76. इष्टापूर्तफलप्रदा, 77. इतिहासश्रुतीढ्यार्था, 78. इहामुत्र शुभप्रदा, 79. इज्याशीलसमिज्येष्ठा, 80. इन्द्रादिपरिवन्दिता, 81. इलालङ्कारमाला,

82. इद्धा, 83. इन्दिरा, 84. रम्यमन्दिरा, 85. इदिन्दिरादिसंसेव्या 86. ईश्वरी, 87. ईश्वरवल्लभा, 88. ईतिभीतिहरा, 89. ईड्या, 90. ईडनीयचरित्रभृत्, 91. उत्कृष्टशक्तिः, 92. उत्कृष्टा, 93. उडुपमण्डलचारिणी 94. उदिताम्बरमार्गा, 95. उस्रा, 96. उरगलोकविहारिणी, 97. उक्षा, 98. उर्वरा, 99. उत्पला, 100. उत्कुम्भा, 101. उपेन्द्रचरणद्रवा, 102. उदन्वत्पूर्तिहेतुः, 103. उदारा, 104. उत्साहप्रवर्द्धिनी, 105. उद्वेगघ्नी, 106. उष्णशमनी, 107. उष्णरश्मिसुताप्रिया, 108. उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी, 109. उपरिचारिणी, 110. ऊर्जंवहन्ती, 111.ऊर्जधरा, 112. ऊर्जावती, 113. ऊर्मिमालिनी, 114. ऊर्ध्वरेतःप्रिया, 115.ऊर्ध्वाध्वा, 116.ऊर्मिला, 117.ऊर्ध्वगतिप्रदा, 118.ऋषिवृन्दस्तुता, 119.ऋद्धिः, 120.ऋणत्रयविनाशिनी, 121.ऋतम्भरा, 122.ऋद्धिदात्री, 123.ऋक्स्वरूपा, 124.ऋजुप्रिया, 125.ऋक्षमार्गवहा, 126.ऋक्षार्चिः, 127.ऋजुमार्गप्रदर्शिनी, 128.एधिताखिलधर्मार्था, 129.एका, 130.एकामृदायिनी, 131.एधनीयस्वभावा, 132.एज्या, 133. एजिताशेषपातका, 134.ऐश्वर्यदा, 135.ऐश्वर्यरूपा, 136.ऐतिह्यम्, 137.ऐन्दवीद्युतिः, 138.ओजस्विनी, 139.ओषधीक्षेत्रम्, 140.ओजोदा, 141.ओदनदायिनी, 142.ओष्ठामृता, 143.औन्नत्यदात्री, 144.भवरोगिणाम् औषधम्, 145.औदार्यचञ्चुरा, 146.औपेन्द्री, 147.औग्री, 148.औमेयरूपिणी, 149.अम्बराध्ववहा, 150.अम्बष्ठा, 151.अम्बरमाला, 152.अम्बुजेक्षणा, 153.अम्बिका, 154.अम्बुमहायोनिः, 155.अन्धोदा, 156.अन्धकहारिणी, 157.अंशुमाला, 158.अंशुमती, 159.अङ्गीकृतषडानना, 160.अन्धतामिस्रहन्त्री, 161.अन्धुः, 162.अञ्जना, 163.अञ्जनावती, 164.कल्याणकारिणी, 165.काम्या, 166.कमलोत्पलगन्धिनी, 167.कुमुद्वती, 168.कमलिनी, 169.कान्तिः, 170.कल्पितदायिनी,

171.काञ्चनाक्षी, 172. कामधेनुः, 173. कीर्तिकृत्, 174.क्लेशनाशिनी, 175. क्रतश्रेष्ठा, 176. क्रतफला, 177. कर्मबन्धविभेदिनी, 178. कमलाक्षी, 179. क्लमहरा, 180. कृशानुतपनद्युतिः, 181. करुणार्द्रा, 182. कल्याणी, 183. कलिकल्मषनाशिनी, 184. कामरूपा, 185. क्रियाशक्तिः, 186. कमलोत्पलमालिना, 187. कूटस्था, 188. करुणा, 189. कान्ता, 190. कूर्मयाना, 191. कलावती, 192. कमला, 193. कल्पलतिका, 194. काली, 195. कलुषवैरिणी, 196. कमनीयजला, 197. कम्रा, 198. कपर्दिसुकपर्दगा, 199. कालकूटप्रशमनी, 200. कदम्बकुसुमप्रिया, 201. कालिन्दी, 202. केलिललिता, 203. कलकल्लोलमालिका 204. क्रान्तलोकत्रया, 205. कण्डूः, 206. कण्डूतनयवत्सला, 207. खड्गिनी, 208. खड्गधाराभा, 209. खगा, 210. खण्डेन्दुधारिणी, 211. खेखेलगामिनी, 212. खस्था, 213. खण्डेन्दुतिलकप्रिया, 214. खेचरी, 215. खेचरीवन्द्या, 216. ख्यातिः, 217. ख्यातिप्रदायिनी, 218. खण्डितप्रणताघौघा, 219. खलबुद्धिविनाशिनी, 220. खातैनःकन्दसन्दोहा, 221. खड्गखट्वाङ्गखेटिनी, 222. खरसन्तापशमनी, 223. पीयूषपाथसां खनिः, 224. गङ्गा-'स्वर्गाद् गां गतवतीति गङ्गा, 225. गन्धवती, 226. गौरी, 227. गन्धर्वनगरप्रिया, 228. गम्भीराङ्गी, 229. गुणमयी, 230. गतातङ्का, 231. गतिप्रिया, 232.गणनाथाम्बिका, 233. गीता, 234. गद्यपद्यपरिष्टुता, 235. गान्धारी, 236. गर्भशमनी, 237. गतिभ्रष्टगतिप्रदा, 238.गोमती, 239.गुह्यविद्या, 240. गौः, 241. गोप्त्री, 242. गगनगामिनी, 243.गोत्रप्रवर्द्धिनी, 244. गुण्या, 245.गुणातीता, 246. गुणाग्रणीः, 247.गुहाम्बिका, 248. गिरिसुता, 249.गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा, 250.गुणनीयचरित्रा, 251. गायत्री, 252.गिरिशप्रिया, 253.गूढरूपा, 254.गुणवती, 255. गुर्वी, 256. गौरववर्द्धिनी, 257. ग्रहपीडाहरा, 258. गुन्द्रा, 259. गरघ्नी, 260.

गानवत्सला, 261. घर्महन्त्री, 262. घृतवती, 263. घृततुष्टिप्रदायिनी 264. घण्टारवप्रिया, 265. घोराघौघविध्वंसकारिणी 266. घ्राणतुष्टकरा, 267. घोषा, 268. घनानन्दा, 269. घनप्रिया, 270. घातुका, 271. घूर्णितजला, 272. घृष्टपातक सन्ततिः, 273. घटकोटिप्रपीतापा, 274. घटिताशेषमङ्गला, 275. घृणावती, 276. घृणनिधिः, 277. घस्मरा, 278. घूकनादिनी, 279. घुसृणापिञ्जरतनुः, 280. घर्घरा, 281. घर्घरस्वना, 282. चन्द्रिका, 283. चन्द्रकान्ताम्बुः, 284. चञ्चदापा, 285. चलद्युतिः, 286. चिन्मयी, 287. चितिरूपा, 288. चन्द्रायुतशतानना, 289. चाम्पेयलोचना, 290. चारुः, 291. चार्वङ्गी, 292. चारुगामिनी, 293. चार्या, 294. चारित्रनिलया, 295. चित्रकृत्, 296. चित्ररूपिणी, 297. चम्पूः, 298. चन्दनशुच्यम्बुः, 299. चर्चनीया, 300. चिरस्थिरा, 301. चारुचम्पकमालाढ्या, 302. चमिताशेषदुष्कृता, 303. चिदाकाशवहा, 304. चिन्त्या, 305. चञ्चत्, 306. चामरवीजिता, 307. चोरिताशेषवृजिना, 308. चरिताशेषमण्डला, 309.छेदिताखिलपापौघा, 310. छद्मघ्नी, 311. छलहारिणी, 312. छन्नत्रिविष्टपतला, 313. छोटिताशेषबन्धना 314. छुरितामृतधारौघा, 315. छिन्नैनाः, 316. छन्दगामिनी, 317. छत्रीकृतमरालौघा, 318. छटीकृतनिजामृता, 319. जाह्नवी, 320. ज्या, 321. जगन्माता, 322. जप्या, 323. जङ्घालवीचिका, 324. जया, 325. जनार्दनप्रीता, 326. जुष्णीया, 327. जगद्धिता, 328. जीवनम्, 329. जीवनप्राणा, 330. जगत्, 331. ज्येष्ठा, 332. जगन्मयी, 333. जीवजीवातुलतिका 334. जन्मिजन्मनिबर्हिणी,335. जाड्यविध्वंसनकरी, 336. जगद्योनिः, 337. जलाविला, 338. जगदानन्दजननी, 339. जलजा, 340. जलजेक्षणा, 341. जनलोचनपीयूषा,134. जटातटविहारिणी,343. जयन्ती, 344. जञ्जपूकघ्नी, 345. जनितज्ञानविग्रहा, 346. झल्लरीवाद्यकुशला, 347. झलज्झालजलावृता, 348. झिण्टीशवन्द्या,

349. झाङ्कारकारिणी, 350. झर्झरावती, 351. टीकिताशेषपाताला, 352. टङ्किकैनोऽद्रिपाटने, 353. टङ्कारनृत्यत्कल्लोला, 354. टीकनीयमहातटा, 355. डम्बरप्रवहा, 356. डीनराजहंसकुलाकुला, 357. डमड्डमरुहस्ता, 358. डामरोक्तमहाण्डका, 359. ढौकिताशेषनिर्वाणा, 360. ढक्कानादचलज्जला, 361. ढुण्ढिविघ्नेशजननी 362. ढणड्डुणितपातका, 363. तर्पणी, 364. तीर्थतीर्था, 365. त्रिपथा, 366. त्रिदशेश्वरी, 367. त्रिलोकगोप्त्री, 368. तोयेशी, 369. त्रैलोक्यपरिवन्दिता, 370. तापत्रितयसंहर्त्री, 371. तेजोबलविवर्धिनी 372. त्रिलक्ष्या, 373. तारणी, 374. तारा, 375. तारापतिकरार्चिता 376. त्रैलोक्यपावनी पुण्या, 377. तुष्टिदा, 378. तुष्टिरूपिणी, 379. तृष्णाच्छेत्री, 380. तीर्थमाता, 381. त्रिविक्रमपदोद्भवा, 382. तपोमयी, 383. तपोरूपा, 384. तपःस्तोमफलप्रदा, 385. त्रैलोक्यव्यापिनी 386. तृप्तिः, 387. तृप्तिकृत्, 388. तत्त्वरूपिणी, 389. त्रैलोक्यसुन्दरी, 390. तुर्या, 391. तुर्यातीतफलप्रदा, 392. त्रैलोक्यलक्ष्मीः, 393. त्रिपदी, 394. तथ्या, 395. तिमिरचन्द्रिका 396. तेजोगर्भा, 397. तपःसारा, 398. त्रिपुरारिशिरोगृहा, 399. त्रयीस्वरूपिणी, 400. तन्वी, 401. तपनाङ्गजभीतिनुत्, 402. तरिः, 403. तरणिजामित्रम्, 404. तर्पिताशेषपूर्वजा, 405. तुलाविरहिता, 406. तीव्रपापतूलतनूनपात्, 407. दारिद्र्यदमनी , 408. दक्षा, 409. दुष्प्रेक्षा, 410. दिव्यमण्डना, 411. दीक्षावती, 412. दुरावाप्या, 413. द्राक्षामधुरवारिभृत्, 414. दर्शितानेककुतुका, 415. दुष्टदुर्जयदुःखहृत्, 416. दैन्यहृत्, 417. दुरितघ्नी, 418. दानवारिपदाब्जजा, 419. दन्दशूकविषघ्नी 420. दारिताघौघसन्ततिः, 421. द्रुता, 422. देवद्रुमच्छन्ना, 423. दुर्वाराघविघातिनी, 425. देवमाता, 426. देवलोकप्रदर्शिनी, 427. देवदेवप्रिया, 428. देवी, 429. दिक्पालपददायिनी 430. दीघायुःकारिणी, 431. दीर्घा, 432.

दोग्ध्री, 433. दूषणवर्जिता, 434. दुग्धाम्बुवाहिनी, 435. दोह्या, 436. दिव्या, 437. दिव्यगतिप्रदा, 438. द्युनदी, 439. दीनशरणम्, 440. देहिदेहनिवारिणी, 441. द्राघीयसी, 442. दाघहन्त्री, 443. दितपातकसन्ततिः, 444. दूरदेशान्तरचरी, 445. दुर्गमा, 446. देववल्लभा, 447. दुर्वृत्तघ्नी, 448. दुर्विगाह्या, 449. दयाधारा, 450. दयावती, 451. दुरासदा, 452. दानशीला, 453. द्राविणी 454. द्रुहिणस्तुता, 455. दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री, 456.दुर्बुद्धिहारिणी, 457. दानसारा, 458. दयासारा, 459. द्यावाभूमिविगाहिनी, 460. दृष्टादृष्टफलप्राप्तिः, 461. देवतावृन्दवन्दिता 462. दीर्घव्रता, 463. दीर्घदृष्टि, 464. दीप्ततोया, 465. दुरालभा, 466. दण्डयित्री, 467. दण्डनीतिः, 468. दुष्टदण्डधरार्चिता, 469. दुरोदरघ्नी, 470. दावार्चिः, 471. द्रवत्, 472. द्रव्यैकशेवधिः, 473. दीनसन्तापशमनी, 474. दात्री, 475. दवथुवैरिणी, 476. दरीविदारणपरा, 477. दान्ता, 478. दान्तजनप्रिया, 479. दारिताद्रितटा, 480. दुर्गा, 481. दुर्गारण्यप्रचारिणी 482. धर्मद्रवा, 483. धर्मधूरा, 484. धेनुः, 485. धीरा, 486. धृतिः, 487. ध्रुवा, 488. धेनुदानफलस्पर्शा, 489. धर्मकामार्थ मोक्षदा, 490. धर्मोर्मिवाहिनी, 491. धुर्या, 492. धात्री, 493. धात्रीविभूषणम्, 494. धर्मिणी, 495. धर्मशीला, 496. धन्विकोटिकृतावना, 497. ध्यातृपापहरा, 498. ध्येया, 499. धावनी, 500. धूतकल्मषा, 501. धर्मधारा, 502. धर्मसारा, 503. धनदा, 504. धनवर्द्धिनी, 505. धर्माधर्मगुणच्छेत्री, 506. धत्तूरकुसुमप्रिया, 507. धर्मेशी, 508. धर्मशास्त्रज्ञा, 509. धनधान्यसमृद्धिकृत्, 510. धर्मलभ्या, 511. धर्मजला, 512. धर्मप्रसवधर्मिणी, 513. ध्यानगम्यस्वरूपा 514. धरणी, 515. धातृपूजिता, 516. धूः, 517. धूर्जटिजटासंस्था, 518. धन्या, 519. धीः, 520. धारणावती, 521. नन्दा, 522. निर्वाणजननी,

523. नन्दिनी, 524. नुन्नपातका, 525. निषिद्धविघ्ननिचया, 526. निजानन्दप्रकाशिनी, 527. नभोऽङ्गणचरी 528. नूतिः, 529. नम्या, 530. नारायणी, 531. नुता, 532. निर्मला, 533. निर्मलाख्याना, 534. नाशिनी ताप सम्पदाम्, 535. नियता, 536. नित्यसुखदा, 537. नानाश्चर्यमानिधिः, 538. नदी, 539. नदसरोमाता, 540. नायिका, 541. नाकदीर्घिका, 542. नष्टोद्धरणधीरा, 543. नन्दना, 544. नन्ददायिनी, 545. निर्णिक्ताशेषभुवना, 546. निःसङ्गा, 547. निरुपद्रवा, 548. निरालम्बा, 549. निष्प्रपञ्चा, 550. निर्णाशितमहामला, 551. निर्मलज्ञानजननी 552. निःशेषप्राणितापहृत्, 553. नित्योत्सवा, 554. नित्यतृप्ता, 555. नमस्कार्या, 556. निरञ्जना, 557. निष्ठावती, 558. निरातङ्का, 559. निर्लेपा, 560. निश्चलात्मिका, 561. निरवद्या, 562. निरीहा, 563. नीललोहितमूर्द्धगा, 564. नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या, 565. नागा, 566. नन्दा, 567. नगात्मजा, 568. निष्प्रत्यूहा, 569. नाकनदी, 570. निरयार्णवदीर्घनौः, 571. पुण्यप्रदा, 572. पुण्यगर्भा, 573. पुण्या, 574. पुण्यतरङ्गिणी, 575. पृथुः, 576. पृथुफला, 577. पूर्णा, 578. प्रणतार्तिप्रभञ्जनी, 579. प्राणदा, 580. प्राणिजननी, 581. प्राणेशी, 582. प्राणरूपिणी, 583. पद्मालया, 584. पराशक्तिः, 585. पुरजित्परमप्रिया, 586. परा, 587. परफलप्राप्तिः 588. पावनी, 589. पयस्विनी, 590. परानन्दा, 591. प्रकृष्टार्था, 592. प्रतिष्ठा, 593. पालिनी, 594. परा, 595. पुराणपठिता, 596. प्रीता,597. प्रणवाक्षररूपिणी, 598. पार्वती, 599. प्रेमसम्पन्ना, 600. पशुपाशविमोचनी, 601. परमात्मस्वरूपा 602. परब्रह्मप्रकाशिनी, 603.परमानन्दनिष्पन्दा, 604. प्रायश्चित्तस्वरूपिणी, 605. पानीयरूपनिर्वाणा, 606. परित्राणपरायणा, 607. पापेन्धनदवज्वाला , 608. पापारिः, 609. पापनामनुत्, 610. परमैश्वर्यजननी, 611. प्रज्ञा, 612. प्राज्ञा, 613. परापरा, 614.

प्रत्यक्षलक्ष्मी, 615. पद्माक्षी, 616. परव्योमामृतस्रवा, 617. प्रसन्नरूपा, 618. प्रणिधिः, 619. पूता, 620. प्रत्यक्षदेवता, 621. पिनाकिपरमप्रीता, 622. परमेष्ठिकमण्डलुः, 623. पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता, 624. पद्ममालिनी, 625. परर्द्धिदा, 626. पुष्टिकरी, 627. पथ्या, 628. पूर्तिः, 629. प्रभावती, 630. पुनाना, 631. पीतगर्भघ्नी, 632. पापपर्वतनाशिनी, 633. फलिनी, 634. फलहस्ता, 635. फुल्लाम्बुजविलोचना, 636. फालितैनोमहाक्षेत्रा, 637. फणिलोकविभूषणम्, 638. फेनच्छलप्रणुन्नैनाः, 639. फुल्लकैरवगन्धिनी, 640. फेनिलाच्छाम्बुधाराभा, 641. फुडुच्चाटितपातका, 642. फाणितस्वादुसलिला, 643. फाण्टपथ्यजलाविला, 644. विश्वमाता, 645. विश्वेशी, 646. विश्वा, 647. विश्वेश्वरप्रिया, 648. ब्रह्मण्या, 649. ब्रह्मकृत, 650. ब्राह्मी, 651. ब्रह्मिष्ठा, 652. विमलोदका, 653. विभावरी, 654. विरजा, 655. विक्रान्तानेकविष्टपा, 656. विश्वमित्रम्, 657. विष्णुपदी, 658. वैष्णवी, 659. वैष्णवप्रिया, 660. विरूपाक्षप्रियकरी, 661. विभूतिः, 662. विश्वतोमुखी, 663. विपाशा, 664. वैबुधी, 665. वेद्या, 666. वेदाक्षररसस्रवा, 667. विद्या, 668. वेगवती, 669. वन्द्या, 670. बृहंणी, 671. ब्रह्मवादिनी, 672. वरदा, 673. विप्रकृष्टा, 674. वरिष्ठा, 675. विशोधनी, 676. विद्याधरी, 677. विशोका, 678. वयोवृन्दनिषेविता, 679. बहूदका, 680. बलवती, 681. व्योमस्था, 682. विबुधप्रिया, 683. वाणी, 684. वेदवती, 685. वित्ता, 686. ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी, 687. ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुः, 688. ब्रह्महत्यापहारिणी, 689. ब्रह्मेशविष्णुरूपा, 690. बुद्धिः, 691. विभववर्द्धिनी, 692. विलासिसुखदा, 693. वश्या, 694. व्यापिनी, 695. वृषारणिः, 696. वृषाङ्कमौलिनिलया, 697. विपन्नार्तिप्रभञ्जनी 698. विनीता, 699. विनता, 700. ब्रध्नतनया, 701. विनयान्विता, 702. विपञ्चा,

703. वाद्यकुशला, 704. वेणुश्रुतिविचक्षणा, 705. वर्चस्करी, 706. बलकरी, 707. बलोन्मुलितकल्मषा, 708. विपाप्मा, 709. विगतातङ्का, 710. विकल्पपरिवर्जिता, 711. वृष्टिकर्त्री, 712. वृष्टिजला, 713. विधिः, 714. विच्छिन्नबन्धना, 715. व्रतरूपा, 716. वित्तरूपा, 717. बहुविघ्नविनाशकृत, 718. वसुधारा, 719. वसुमती, 720. विचित्राङ्गी, 721. विभावसुः, 722. विजया, 723. विश्वबीजम्, 724. वामदेवी, 725. वरप्रदा, 726. वृषाश्रिता, 727. विषघ्नी, 728. विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी, 729. भव्या, 730. भोगवती, 731. भद्रा, 732. भवानी , 733. भूतभाविनी, 734. भूतधात्री, 735. भयहरा, 736. भक्तदारिद्र्यघातिनी, 737. भुक्तिमुक्तिप्रदा, 738. भेशी, 739. भक्तस्वर्गापवर्गदा, 740. भागीरथी, 741. भानुमती, 742. भाग्यम् , 743. भोगवती, 744. भृतिः, 745. भवप्रिया, 746. भवदेष्ट्री, 747. भूतिदा, 748. भूतिभूषणा, 749. भाललोचनभावज्ञा, 750. भूतभव्यभवत्प्रभुः, 751. भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी, 752. भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा, 753. भूरिदा, 754. भक्तसुलभा, 755. भाग्यवद्दृष्टिगोचरी, 756. भञ्जितोपप्लवकुला, 757. भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा, 758. भिक्षणीया, 759. भिक्षुमाता, 760. भावी, 761. भावस्वरूपिणा, 762. मन्दाकिनी, 763. महानन्दा, 764. माता, 765. मुक्तितरङ्गिणी, 766. महोदया, 767. मधुमती, 768. महापुण्या, 769. मुदाकरी, 770. मुनिस्तुता, 771. मोहहन्त्री, 772. महातीर्था, 773. मधुस्त्रवा, 774. माधवी, 775. मानिनी, 776. मान्या, 777. मनोरथपथातिगा, 778. मोक्षदा, 779. मतिदा, 780. मुख्या, 781. महाभाग्यजनाश्रिता, 782. महावेगवती, 783. मेध्या, 784. महा, 785. महिमीभूषणा, 786. महाप्रभावा, 787. महती, 788. मीनचञ्चललोचना, 789. महाकारुण्यसम्पूर्णा, 790. महर्द्धिः, 791. महोत्पला, 792. मूर्तिमत्, 793. मुक्तिरमणी, 794. मणिमाणिक्यभूषणा, 795. मुक्ताकलापनेपथ्या,

796. मनोनयननन्दिनी, 797. महापातकराशिघ्नी, 798. महादेवार्धहारिणी, 799. महोर्मिमालिनी, 800. मुक्ता, 801. महादेवी, 802. मनोन्मनी, 803. महापुण्योदयप्राप्या, 804. मायातिमिरचन्द्रिका, 805. महाविद्या, 806. महामाया, 807. महामेधा, 808. महौषधम्, 809. मालाधारी, 810. महोपाया, 811. महोरगविभूषणा, 812. महामोहप्रशमनी, 813. महामङ्गलमङ्गलम्, 814. मार्तण्डमण्डलचरी, 815. महालक्ष्मीः, 816. मदोज्झिता, 817. यशस्विनी, 818. यशोदा, 819. योग्या, 820. युक्तात्मसेविता, 821. योगसिद्धिप्रदा, 822. याच्या, 823. यज्ञेशपरिपूरिता, 824. यज्ञेशी, 825. यज्ञफलदा, 826. यजनीया, 827. यशस्करी, 828. यमिसेव्या, 829. योगयोनिः, 830. योगिनी, 831. युक्तबुद्धिदा, 832. योगज्ञानप्रदा, 833. युक्ता, 834. यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक्, 835. यन्त्रिताघौघसंचारा 8 3 6 . यमलोकनिवारिणी, 837. यातायातप्रशमनी, 838. यातनानामकृन्तनी, 839. यामिनीशहिमाच्छोद, 840. युगधर्मविवर्जिता, 841. रेवती, 842. रतिकृत्, 843. रम्या, 844. रत्नगर्भा, 845. रमा, 846. रतिः, 847. रत्नाकरप्रेमपात्रम्, 848. रसज्ञा, 849. रसरूपिणी, 850. रत्नप्रासादगर्भा, 851. रमणीयतरङ्गिणी, 852. रत्नार्चि, 853. रुद्ररमणी, 854. रागद्वेषविनाशिनी, 855. रमा, 856. रामा, 857. रम्यरूपा, 858. रोगिजीवानुरूपिणी, 859. रुचिकृत, 860. रोचनी 861. रम्या, 862. रुचिरा, 863. रोगहारिणी, 864. राजहंसा, 865. रत्नवती, 866. राजत्कल्लोलराजिका, 867. रामणीयकरेखा, 868. रुजारिः, 869. रोगरोषिणी, 870. राका, 871. रङ्कार्तिशमना, 872. रम्या, 873. रोलम्बराविणी, 874. रागिणी, 875. रञ्जितशिवा, 876. रूपलावण्यशेवधिः, 877. लोकप्रसूः, 878. लोकवन्द्या, 879. लोलत्कल्लोलमालिनी, 880. लीलावती, 881. लोकभूमिः, 882. लोकलोचनचन्द्रिका, 883. लेखस्रवन्ती, 884. लटभा, 885.

लघुवेगा, 886. लघुत्वहृत्, 887. लास्यतरङ्गहस्ता 888. ललिता, 889. लयभङ्गिमा, 890. लोकबन्धुः, 891. लोकधात्री, 892. लोकोत्तरगुणोर्जिता, 893. लोकत्रयहिता, 894. लोका, 895. लक्ष्मीः, 896. लक्षणलक्षिता, 897. लीला, 898. लक्षितनिर्वाणा, 899. लावण्यामृतवर्षिणी, 900. वैश्वानरी, 901. वासवेड्या, 902. वन्ध्यत्वपरिहारिणी, 903. वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी, 904. वज्रिवज्रनिवारिणी, 905. शुभावती, 906. शुभफला, 907. शान्तिः, 908. शान्तनुवल्लभा, 909. शूलिनी, 910. शैशववया, 911. शीतलामृतवाहिनी, 912. शोभावती, 913. शीलवती, 914. शोषिताशेषकिल्बिषा, 915. शरण्या, 916. शिवदा, 917. शिष्टा, 918. शरजन्मप्रसूः, 919. शिवा, 920. शक्तिः, 921. शशाङ्कविमला, 922. शमनस्वसृसम्मता, 923. शमा, 924. शमनमार्गघ्नी, 925. शितिकण्ठमहाप्रिया, 926. शुचिः, 927. शुचिकरी, 928. शेषा, 929. शेषशायिपदोद्भवा, 930. श्रीनिवासश्रुतिः, 931. श्रद्धा, 932. श्रीमती, 933. श्रीः, 934. शुभव्रता, 935. शुद्धविद्या, 936. शुभावर्ता, 937. श्रुतानन्दा, 938. श्रुतिस्तुतिः, 939. शिवेतरघ्नी, 940. शबरी, 941. शाम्बरीरूपधारिणी, 942. श्मशानशोधनी, 943. शान्ता, 944. शश्वत्, 945. शतधृतिस्तुता, 946. शालिनी, 947. शालिशोभाढ्या, 948. शिखिवाहनगर्भभृत्, 949. शंसनीयचरित्रा, 950. शातिताशेषपातका, 951. षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना, 952. षडङ्गश्रुतिरूपिणी, 953. षण्ढताहारिसलिला, 954. स्त्यायन्नदनदीशता, 955. सरिद्वरा, 956. सुरसा, 957. सुप्रभा, 958. सुरदीर्घिका, 959. स्वःसिन्धुः, 960. सर्वदुःखघ्नी, 961. सर्वव्याधिमहौषधम्, 962. सेव्या, 963. सिद्धिः, 964. सती, 965. सूक्तिः, 966. स्कन्दसूः, 967. सरस्वती, 968. सम्पत्तरङ्गिणी, 969. स्तुत्या, 970. स्थाणुमौलिकृतालया, 971. स्थैर्यदा, 972. सुभगा, 973. सौख्या,

974. स्त्रीषुसौभाग्यदायिनी, 975. स्वर्गनिःश्रेणिका, 976. सूक्ष्मा, 977. स्वधा, 978. स्वाहा, 979. सुधाजला, 980. समुद्ररूपिणी, 981. स्वर्ग्या, 982. सर्वपातकवैरिणी, 983. स्मृताघहारिणी, 984. सीता, 985. संसाराब्धितरण्डिका, 986. सौभाग्यसुन्दरी, 987. सन्ध्या, 988. सर्वसारसमन्विता, 989. हरप्रिया, 990. हृषीकेशी, 991. हंसरूपा, 992. हिरण्मयी, 993. हृताघसंघा, 994. हितकृत्, 995. हेला, 996. हेलाघगर्वहृत्, 997. क्षेमदा, 998. क्षालिताघौघा, 999. क्षुद्रविद्राविणी, 1000. क्षमा ।

ये सहस्रनाम गङ्गा की महिमा को भगवान् विष्णु एवं भगवान् शिव के समकक्ष सहज ही ला देते हैं । गङ्गा मात्र नदी नहीं, मात्र देवी नहीं, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा हैं । यह गङ्गासहस्रनाम, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति कराने वाला है । इसका एक बार पाठ करने से एक यज्ञ का फल प्राप्त होता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्कन्दपुराण में गङ्गा की महिमा का विस्तार से वर्णन है पर इस पुराण में गङ्गा की उत्पत्ति की कथा नहीं दी गई है ।

5- वायु पुराण में गङ्गा -

वायु पुराण के बयालीसवें अध्याय में अन्य नदियों के साथ गङ्गा का भी वर्णन है जिसके अनुसार यह एक योजन चौड़ी, रम्य और शैल कुक्षि से घिरी हुयी हैं । महात्मा देवाधिदेव शंकर ने इस नदी को अपने सिर पर धारण किया है । यह घोर पापियों को भी पवित्र करने वाली एवं श्रीमान् शंकर के अंग स्पर्श से द्विगुण पवित्र, पवित्र सलिला महानदी गङ्गा हैं —

रम्या योजनविस्तीर्णा शैलकुक्षिषु संवृता ।
या धृता देवदेवेन शंकरेण महात्मना ॥
पावनी द्विजशार्दूल घोराणमपि पाप्मनाम् ।
द्विगुणं पवित्र सलिला सर्वलोके महानदी ॥[66]

- वायुपुराण 42/36-37

'यह गङ्गा हिमालय पर्वत के चारों ओर से निकलकर अनेक शाखाओं में विभक्त हो गयी हैं जो विभिन्न नामों से सहस्र नदी के रूप में विख्यात हैं । यह महानदी गङ्गा नाम से प्रसिद्ध हैं जो सिद्धों से सेवित हैं । जिन देशों के बीच से होकर रुद्र, साध्य, वायु और आदित्य से सेवित यह यशस्विनी गङ्गा प्रवाहित होती हैं, वह देश धन्य है और श्रेष्ठ है-

धन्यास्ते सत्तमा देशा यत्र गङ्गा महानदी ।
रुद्रसाध्यानिलापित्येर्जुष्टतोया यशोवती ॥[67]

- वायुपुराण 42/40

6- मत्स्य पुराण में गङ्गा -

मत्स्यपुराण में प्रयाग महात्म्य का वर्णन अध्याय 103 से लेकर 112 तक कुल दस अध्यायों में किया गया है । इनमें से 104वें, 106वें तथा 107वें अध्यायों में गङ्गा के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है । प्रयाग के महत्व एवं माहात्म्य का वर्णन करते हुये मार्कण्डेय जी धर्मराज युधिष्ठिर से कहते हैं, 'यहाँ साठ हजार धनुर्धर वीर गङ्गाजी की रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ों से जुते हुये रथ पर चलने वाले सूर्य सदा यमुना की देख-भाल करते हैं ।[68] प्रयाग क्षेत्र में पाँच कुण्ड हैं, उन्हीं के मध्य में गङ्गा बहती हैं । इसलिये प्रयाग में प्रवेश करते ही उसी क्षण पाप नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो यदि वह हजारों योजन दूर से भी गङ्गा का स्मरण करता है तो उसे परमगति की प्राप्ति होती है ।

गङ्गा का नाम लेने से मनुष्य पाप से छूट जाता है, दर्शन करने से उसके जीवन में मांगलिक अवसर मिलते हैं तथा स्नान एवं जलपान करके तो वह अपनी सात पीढ़ियों को पावन बना देता है । देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गङ्गाजल का स्पर्श करके स्वर्गलोक

में विराजमान होते हैं —

योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः ।
अपि दुष्कृतकर्मो तु लभते परमां गतिम् ॥
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्टवा भद्राणिपश्यति ।
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥[69]

- मत्स्यपुराण 104/13-14

आगे गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये इसी पुराण के एक सौ छठवें अध्याय में पुराणकार कहते हैं - 'गङ्गा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाये वहाँ कुरुक्षेत्र के समान फल प्राप्ति होती है ऐसा माना गया है, परन्तु जहाँ वह विन्ध्य पर्वत से युक्त हुयी हैं वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्र से दस गुना अधिक फलदायिनी हो जाती हैं । जहाँ से बहुत से तीर्थों से युक्त महाभाग्यशालिनी एवं तपस्विनी गङ्गा बहती हैं, उस स्थान को सिद्ध क्षेत्र मानना चाहिये । इसमें अन्यथा विचार करना अनुचित है । गङ्गा भूतल पर मनुष्यों को, पाताल में नागों को तथा स्वर्गलोक में देवताओं को तारती है, इसी कारण इसे त्रिपथगा कहा जाता है —

क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागास्तारयतेऽप्यधः ।
दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥[70]

- मत्स्यपुराण 106/51

मत्स्यपुराणानुसार मृत प्राणी की हड्डियाँ जितने समय तक गङ्गा में वर्तमान रहती हैं उतने वर्षों तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । स्वर्ग से च्युत होने पर वह जम्बूद्वीप का स्वामी होता है । गङ्गा सभी तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ, नदियों में महानदी और बड़े से बड़ा पाप करने वाले सभी प्राणियों के लिये मोक्षदायिनी है । गङ्गा सर्वत्र तो सुलभ है, परन्तु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर संगम में दुर्लभ मानी गयी है । इन स्थानों पर स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक को चले जाते हैं । जिनका चित्त पाप से आच्छादित है और अपना उद्धार पाने के लिये

छटपटाते रहते हैं, उन सभी प्राणियों के लिये गङ्गा के समान दूसरी गति नहीं है । महेश्वर के जटाजूट से च्युत हुयी मंगलमयी गङ्गा समस्त पापों का हरण करने वाली हैं । ये पवित्रों में परम पवित्र और मंगलों में मंगलस्वरूपा हैं —

पवित्राणां पवित्रं च मंगलानां च मंगलम् ।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥[71]

- मत्स्यपुराण 106/56

मत्स्यपुराण में गङ्गा में डूबकर मरने की सद्गति का भी वर्णन है । तद्नुसार जो मनुष्य निष्काम भाव से अथवा किसी कामना को लेकर गङ्गा की धारा में डूबकर मर जाता है, वह स्वर्ग में चला जाता है । वह हजारों वर्षों तक स्वर्ग सुख का उपभोग करता है । पुनः पाप कर्म के क्षीण हो जाने पर जब उसका स्वर्ग से पतन होता है, तब वह सुवर्ण, मणि और मोतियों से सम्पन्न विशाल कुल में जन्म लेता है ।[72]

गङ्गा की उत्पत्ति -

मत्स्यपुराण के एक सौ इक्कीसवें अध्याय में गङ्गा की उत्पत्ति का अति संक्षेप में वर्णन है - 'कैलाश के उत्तर दिशा में हिरण्यशृंग नाम का अत्यन्त विशाल पर्वत है । इसके पाद प्रान्त में विन्दुसर नाम का अत्यन्त दिव्य सरोवर है । यहीं पर राजर्षि भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये गङ्गा को भूतल पर लाने के उद्देश्य से बहुत वर्षों तक निवास किया था । इसलिये त्रिपथगा गङ्गा देवी सर्वप्रथम वहीं प्रतिष्ठित हुयी थीं। वहाँ से वह सोमपर्वत के पाद से निकलकर सात भागों में विभक्त हो गयीं । गङ्गा देवी स्वर्गलोक और अंतरिक्ष लोक को पवित्र कर भूतल पर आयीं और वे शिवजी के मस्तक पर गिरीं । तब शिवजी ने अपनी योगमाया के बल पर उन्हें वहीं रोक दिया । इस पर गङ्गाजी क्रुद्ध हो गयीं तथा उस समय उन कुपित हुयी गङ्गा देवी जी की जो कुछ बूँदे पृथ्वी पर गिरी उनसे विन्दुसर नामक एक सरोवर बन गया, वही आगे चलकर विन्दुसर

नामक प्रसिद्ध तीर्थ हुआ ।

शिवजी के द्वारा सहसा रोक लिये जाने पर गङ्गाजी क्रुद्ध होकर ऐसा विचार करने लगीं कि वे शंकर जी को बहाती हुयी पाताल में प्रवेश कर जायेंगी । शिवजी गङ्गाजी के इस अभिमान पर क्रुद्ध हो गये और उन्हें अपने अंगो में ही विलीन कर लेने का विचार करने लगे, परन्तु उसी समय राजा भगीरथ की प्रार्थना पर अपने तेज से रोकी हुयी गङ्गा को छोड़ दिया । इसके बाद गङ्गा सात धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित हुईं।

त्रिपथगा गङ्गा की तीन धारायें पूर्वाभिमुखी तथा तीन पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित हुई । इस प्रकार वे सात धाराओं में विभक्त हो गईं । सातवीं धारा स्वयं गङ्गा जी हैं । पूर्व दिशा में बहने वाली धाराओं के नाम हैं— नलिनी, ह्लादिनी और पावनी तथा पश्चिम दिशा में प्रवाहित होने वाली धाराओं के नाम हैं — सीता, चक्षु और सिन्धु । गङ्गाजी की सातवीं धारा भगीरथ के पीछे-पीछे दक्षिण दिशा की ओर चली और दक्षिण-सागर में प्रविष्ट हो गई । इसी कारण वह धारा भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हुयी । इस प्रकार ये सातों नदियाँ विन्दुसर से निकली हुयी हैं ।[73]

7- अग्निपुराण में गङ्गा -

अग्निपुराण के अनुसार भोग और मोक्ष देने वाली गङ्गाजी सेवनीय हैं । जिन-जिन देशों से होकर गङ्गा बहती हैं, वे देश पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं । गति चाहने वाले प्राणियों को गङ्गाजी सद्‌गति प्रदान किया करती हैं । नित्य सेवन करने से गङ्गाजी दोनों कुलों को तार देती हैं । गङ्गा जल पीना सहस्रों चान्द्रायण व्रतों से उत्तम है । एक मास तक गङ्गाजी की सेवा करने से सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है । गङ्गाजी समस्त पापों का नाश करने वाली तथा स्वर्गलोक को प्रदान करने वाली हैं । जब तक मनुष्य की अस्थि गङ्गा में रहती है, तब तक वह स्वर्ग में निवास करता है -

सर्वपापहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायनी ।
यावदस्थीनि गङ्गायां तावत्स्वर्गे स तिष्ठति ॥[74]

- अग्निपुराण 110/6

गङ्गा के दर्शन, स्पर्श, पान तथा नाम के संकीर्तन से मनुष्य सैकड़ों-हजारों पूर्वजों को पवित्र कर देता है —

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।
पुनाति पुण्यपुरुषांशतशोऽथ सहस्त्रशः ॥[75]

- अग्निपुराण 110/6

8- पद्मपुराण में गङ्गा -

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में पच्चीसवें अध्याय में बलि की कथा को थोड़ा रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया गया है । यहाँ बलि का नाम वाष्कलि है । यह कथा किसी दूसरे कल्प की है जिसमें दैत्यराज बलि का नाम वाष्कलि था । आगे चलकर इसी खण्ड के साठवें अध्याय में महाराज बलि के यज्ञ का संक्षिप्त रुप से उल्लेख है। सृष्टि खण्ड के पच्चीसवें अध्याय की कथा में गङ्गा की उत्पत्ति बलि के यज्ञ की प्रचलित कथाओं से थोड़ी इतर है । यहाँ वामन बलि की यज्ञशाला में अकेले नहीं वरन् इन्द्र के साथ जाते हैं । इसीलिये उनका उपेन्द्र नाम भी सार्थक हो जाता है । सामान्य पाठक की तरह ही यहाँ भीष्म जी इस कथा पर संदेह प्रकट करते हुये कहते हैं - 'मैंने तो ब्राह्मणों के मुख से जो कथा सुन रखी है, उसमें तो वामनावतार वाष्कलि को नहीं वरन् बलि को बाँधने के लिये होता है ।' इस पर उनके संदेह का समाधान करते हुये पुलस्त्य जी कहते हैं - 'नृपश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें सब बातें बताता हूँ सुनों । .... दूसरी बार वर्तमान मन्वन्तर में भी भगवान् श्रीविष्णु ने त्रिलोकी को अपने चरणों से नापा था । उस समय उन देवाधिदेव ने अकेले ही यज्ञ में जाकर राजा बलि को बाँधा और भूमि को नापा था । उस अवसर पर पुनः भगवान् का वामन अवतार हुआ तथा पुनः उन्होंने त्रिविक्रमरूप धारण किया था । वे पहले वामन होकर फिर अवामन

(विराट्) हो गये।'

वाष्कलि दैत्य के बन्धन की कथा संक्षेप में इस प्रकार है — पुलस्त्य जी कहते हैं - 'वत्स भीष्म ! प्रचीन सतयुग की बात है । बलिष्ठ दानवों ने समूचे स्वर्ग पर अधिकार जमा लिया था । उनमें वाष्कल नामक दानव सबसे बलवान था । उसने समस्त दानवों को यज्ञ का भोक्ता बना दिया था । इससे इन्द्र को बड़ा दुख हुआ । वे समस्त देवताओं को लेकर ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे इस समस्या का समाधान करने के लिये प्रार्थना की । इस पर ब्रह्मा जी ने सभी देवताओं को भगवान् विष्णु से प्रार्थना करने की सलाह दी । फिर ब्रह्मा जी भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे । थोड़े ही समय में भगवान् विष्णु प्रकट हो गये । ब्रह्मा जी ने उनसे देवताओं की सहायता करने की प्रार्थना की । भगवान् विष्णु कश्यप मुनि की पत्नी अदिति के गर्भ से वामनरूप में प्रकट हुए । जन्म के साथ ही नारायण भगवान् ने अपना कार्य भी प्रारम्भ कर दिया । वे इन्द्र को साथ लेकर वाष्कलि दैत्य के घर पधारे । वाष्कलि ने इन दोनों का बहुत स्वागत किया । तदुपरान्त इन्द्र ने वाष्कलि से कहा - दैत्यराज ! ये ब्राह्मण देवता वामन कश्यप जी के उत्तम कुल में उत्पन्न हुये हैं । इन्होंने मुझसे तीन पग भूमि की याचना की है, किन्तु मेरा सम्पूर्ण राज्य तो आपने ही ले लिया है । अब मैं निर्धन और निराधार हूँ । यदि तुम्हें अभीष्ट हो तो इन वामन भगवान् जी को तीन पग भूमि दे दो । इस पर वाष्कलि ने वामन भगवान् को तीन पग भूमि देने की प्रतिज्ञा कर ली ।

वाष्कलि के पुरोहित शुक्राचार्य जी ने वाष्कलि को बहुत चेताया कि जिसे वह वामन समझ रहा है वे भगवान् विष्णु हैं पर वाष्कलि ने एक न सुनी । दानवराज के भूमि का दान करते ही वामन भगवान् ने अपना वामन रूप त्यागा और विराट् बन गये। वे यज्ञ पर्वत पर पहुँच कर उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हो गये । फिर उन्होंने अपना पहला

पग सूर्यलोक में रखा और दूसरा ध्रुवलोक में । फिर अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् ने तीसरे पग से ब्रह्माण्ड पर आघात किया । उनके अँगूठे के अग्रभाग से लगकर ब्रह्माण्ड कटाह फूट गया, जिससे बहुत सा जल बाहर निकला । उसे भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकट होने वाली वैष्णवी नदी गङ्गा कहते हैं ।

पद्मपुराण में गङ्गा माहात्म्य -

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अन्तर्गत साठवें अध्याय में गङ्गाजी की महिमा का बड़ा ही भक्ति-भाव से परिपूर्ण सुन्दर वर्णन है । तद्नुसार गङ्गाजी के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । गङ्गाजी में स्नान करने से पातक, कीर्तन से अतिपातक और दर्शन से भारी पाप, महापातक तक नष्ट हो जाते हैं । गङ्गाजी में स्नान जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है । जैसे अग्नि का संसर्ग होने से रुई और सूखे तिनके क्षण भर में भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जल का स्पर्श होने पर मनुष्य के सारे पाप एक ही क्षण में दग्ध कर देती हैं —

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम् ॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितृणां तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने-दिने ॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा ।
तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात् ॥[77]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/57

आगे गङ्गाजी के माहात्म्य का वर्णन करते हुये व्यास जी कहते हैं - 'मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा अन्यान्य श्रेष्ठ देवता गङ्गाजी के तीर पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में स्थिर भाव से विराजमान हुये हैं । आज तक वे वहाँ से इस संसार में नहीं लौटे । तपस्या, बहुत से यज्ञ, नाना प्रकार

के व्रत तथा पुष्कल दान करने से जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजी का सेवन करने से मनुष्य उसी गति को पा लेता है —

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गा संसेव्यतां लभते ॥

गङ्गा की ममता एवं वात्सल्य का वर्णन करते हुये व्यास जी कहते हैं - पिता पुत्र को, पत्नी प्रियतम को, सम्बन्धी अपने सम्बन्धी को तथा अन्य सभी भाई-बन्धु भी अपने प्रिय बन्धु को छोड़ देते हैं, किन्तु गङ्गाजी उनका परित्याग नहीं करतीं —

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत् ॥[78]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/26

इस पुराण के अनुसार जिन श्रेष्ठ मनुष्यों ने एक बार भी भक्तिपूर्वक गङ्गा में स्नान किया, कल्याणमयी गङ्गा उनकी लाख पीढ़ियों का भवसागर से उद्धार कर देती हैं । वायुपुराण ने स्वर्ग, पृथ्वी और आकाश में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं, वे सब गङ्गाजल में विद्यमान हैं । गङ्गा श्रीविष्णु का चरणोदक होने के कारण परम पवित्र हैं। तीनों लोकों में गमन करने से वे त्रिपथगामिनी कहलाती हैं । उनका जल धर्ममय है, इसीलिये वे धर्मद्रवी नाम से विख्यात हैं । व्यासदेव जी गङ्गा माता से प्रार्थना करते हुये कहते हैं - 'जाह्नवी ! मेरे पाप हर लो । भगवान् विष्णु के चरणों से तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है । तुम विष्णु द्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो, मुझे जन्म से लेकर मृत्यु तक के पापों से बचाओ । महादेवी ! भागीरथी ! तुम श्रद्धा से शोभायमान रजः कणो से तथा अमृतमय जल से मुझे पवित्र करो —

विष्णु पादार्घसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ।

त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते ।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ॥[79]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/60-62

भगवान् व्यासदेव जी कहते हैं, उपरोक्त भाव के तीन श्लोक का उच्चारण करते हुये जो गङ्गाजी के जल में स्नान करता है, वह करोड़ों जन्मों के पापों से निसंदेह मुक्त हो जाता है । इसके बाद वे गङ्गाजी के मूल मन्त्र, जिसे साक्षात् श्रीहरि ने बतलाया है, बतलाते हैं । वह मन्त्र इस प्रकार है — **'ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः ।'** इस मन्त्र का एक बार भी जप करके मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा श्रीविष्णु के विग्रह में प्रतिष्ठित होता है ।

जो मनुष्य गङ्गातीर की मिट्टी को अपने मस्तक पर धारण करता है, वह गङ्गा में स्नान किये बिना ही सब पापों से मुक्त हो जाता है । गङ्गाजी की लहरों से सटकर बहने वाली वायु यदि किसी के शरीर का स्पर्श करती है तो वह घोर पाप से शुद्ध होकर अक्षय स्वर्ग का उपभोग करता है । मनुष्य की हड्डी जब तक गङ्गाजल में पड़ी रहती है, उतने ही हजार वर्षों तक वह स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है । माता-पिता, बन्धु-बान्धव, अनाथ तथा गुरुजनों की हड्डी गङ्गाजी में गिराने से मनुष्य कभी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता । जो मनुष्य अपने पितरों की हड्डियों के टुकड़े बटोरकर उन्हें गङ्गाजी में डालने के लिये ले जाता है, वह पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । गङ्गातीर पर बसे हुये गाँव-पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा चर-अचर सभी प्राणी धन्य हैं । ....जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूर से भी गङ्गा-गङ्गा कहता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णु लोक को प्राप्त होता है —

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।[80]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/78

पद्मपुराण के इसी अध्याय में जिसमें व्यास जी ब्राह्मणों को गङ्गा माहात्म्य सुना रहे हैं, ब्राह्मणों के यह पूछने पर कि गङ्गाजी कैसे इस रूप में प्रकट हुईं ? उनका स्वरूप क्या है तथा वे क्यों अत्यन्त पावन मानी जाती हैं ? इस पर व्यासजी कहते हैं - प्राचीन काल की बात है । मुनिश्रेष्ठ नारद जी ने ब्रह्मलोक में जाकर त्रिलोकपावन ब्रह्मा जी को नमस्कार किया और पूछा - 'तात् ! आपने ऐसी कौन सी वस्तु उत्पन्न की है, जो भगवान् शंकर और विष्णु को भी अत्यन्त प्रिय हो तथा जो भूतल पर सब लोगों का अभीष्ट हित करने के लिये अभीष्ट मानी गयी हो ?' इस पर ब्रह्मा जी ने कहा - 'बेटा ! पूर्वकाल में सृष्टि आरम्भ करते समय मैने मूर्तिमन्त प्रकृति देवी से कहा था कि हे देवि ! तुम सम्पूर्ण लोकों का आदि कारण बनो । मैं तुमसे ही संसार की सृष्टि रचना आरम्भ करुँगा । यह सुनकर परा प्रकृति सात रूपों में अभिव्यक्ति हुई — गायत्री, वाग्देवी, लक्ष्मी, उमादेवी, शक्तिबीजा, तपस्विनी और धर्मद्रवीं। ये ही सात प्रकृति स्वरूप हैं । ..... सातवीं प्रकृति धर्मद्रवी है, जो सबमें प्रतिष्ठित है । उसे सबसे श्रेष्ठ देखकर मैंने अपने कमण्डलु में डाल लिया। फिर परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णु ने इसे बलि के यज्ञ के समय प्रकट किया । उनके दोनों चरणों से सम्पूर्ण महीतल व्याप्त हो गया था । उनमें से एक चरण आकाश एवं ब्रह्माण्ड को भेदकर मेरे सामने स्थित हुआ । उस समय मैंने कमण्डलु के जल से उस चरण का पूजन किया । उस चरण को धोकर जब मैं पूजन कर चुका, तब उसका धोवन हेमकूट पर्वत पर गिरा । वहाँ से भगवान् शंकर के पास पहुँच कर वह जल गङ्गा के रूप में उनकी जटा में स्थित हुआ । गङ्गा बहुत काल तक उनकी जटा में ही भ्रमण करती रहीं । तत्पश्चात् महाराज भगीरथ ने भगवान् शंकर की आराधना करके गङ्गा को पृथ्वी पर उतारा।

वे तीन धाराओं में प्रकट होकर तीनों लोकों में गयीं । इसीलिये वे संसार में त्रिस्रोता के नाम से विख्यात हुईं । शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु - तीनों देवताओं के संयोग से पवित्र होकर वे त्रिभुवन को पावन करती हैं ।

भगवती भागीरथी का आश्रय लेकर मनुष्य सम्पूर्ण धर्मों का फल प्राप्त करता है । पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मों से भी जीव को वह गति नहीं मिलती जो श्रीगङ्गा जी के सेवन से प्राप्त होती है —

पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः ।
सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गंगासंसेवया च या ॥[81]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/116

इस अध्याय के अन्त में व्यासजी ब्राह्मणों से कहते हैं - 'गङ्गाजी सर्वत्र सुलभ होते हुये भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग और गङ्गासागर संगम — इन तीन स्थानों में दुर्लभ हैं । वहाँ इनकी प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है । वहाँ तीन रात्रि या एक रात्रि निवास करने से भी मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है । इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मणों ! सब प्रकार से प्रयत्न करके तुम लोग परम कल्याणमयी भगवती भागीरथी के तीर पर जाओ । विशेषतः इस कलिकाल में सत्त्वगुण रहित मनुष्यों को कष्ट से छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करने वाली गङ्गाजी ही हैं । गङ्गाजी के सेवन से अनन्त पुण्यों का उदय होता है —

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् ।
कृच्छ्राच्च क्षीणसत्वानामनन्तः पुण्यसंभवः ॥[82]

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/123

पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड के अध्याय उन्तालिस में प्रयाग माहात्म्य के प्रसंग में भी गङ्गाजी की महिमा का उल्लेख है । तदनुसार गङ्गा में कहीं भी स्नान करने पर कुरुक्षेत्र में स्नान करने के समान फल प्राप्त होता है । गङ्गाजी का जल सारे पापों को उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे

आग रुई के ढेर को जला डालती है । सतयुग में सभी तीर्थ, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गङ्गा ही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी हैं । पुष्कर में तपस्या करें, महालय में दान दें और भृगुतुंग पर उपवास करें तो विशेष पुण्य होता है । किन्तु पुष्कर कुरुक्षेत्र और गङ्गा के जल में स्नान करने मात्र से प्राणी अपनी सात पहले की तथा सात पीछे की पीढ़ियों को भी तत्काल ही तार देता हैं । गङ्गाजी नाम लेने मात्र से पापों को धो देती हैं, दर्शन करने पर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान करने और जल पीने पर सात पीढ़ियों तक को पवित्र कर देती हैं । जब तक मनुष्य की हड्डी का गङ्गा जल से स्पर्श बना रहता है, तब तक वह पुरुष स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहता है । ब्रह्मा जी का कथन है कि गङ्गा के समान तीर्थ, श्रीविष्णु से बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणों से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है । जहाँ गङ्गा बहती हैं वहाँ उनके किनारे पर जो-जो देश और लोग होते हैं, उन्हें सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिये —

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाहिता च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् ।
तावत्स पुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते ॥
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः ॥
यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ॥[83]

-पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 39/86-87

पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड के 41वें अध्याय में मार्कण्डेयजी और धर्मराज युधिष्ठिर को गङ्गाजी का महात्म्य समझाते हुये कहते हैं - 'जो मनुष्य सहस्त्रों योजन दूर से भी गङ्गाजी का स्मरण करता है वह पापाचारी होने पर भी परमगति को प्राप्त होता है । मनुष्य गङ्गा का नाम

लेने से पापमुक्त होता है । दर्शन करने से कल्याण का दर्शन करता है तथा स्नान करने और जल पीने से अपने कुल की सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है । जो सत्यवादी क्रोधजयी, अहिंसा-धर्म में स्थित धर्मानुगामी, तत्वज्ञ तथा गौ और ब्राह्मणों के हित में तत्पर होकर गङ्गा-यमुना के बीच में स्नान करता है, वह सारे पापों से छूट जाता है तथा मनोवांछित भोगों को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेता है —

योजनानां सहस्त्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः ।
अपि दृष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम् ॥
कीर्तनात्मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥
सत्यवादी जितक्रोधो अहिंसा परमां स्थितः ।
धर्मानुसारी तत्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्विषात् ।
मनसा चिन्तितान् कामान् सम्यक् प्राप्नोति पुष्कलान् ॥[84]

- पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 41/14-17

इसी खण्ड के अध्याय 43 में युधिष्ठिर महाराज को प्रयाग की महिमा सुनाते हुये भगवान् मार्कण्डेय ऋषि जी कहते हैं — 'गङ्गा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाये वे कुरुक्षेत्र के समान फल देने वाली हैं, किन्तु जहाँ वे समुद्र से मिली हैं, वहाँ उनका माहात्म्य समुद्र से दस गुना है । महाभागा गङ्गा जहाँ कहीं भी बहती हैं वहाँ बहुत से तीर्थ और तपस्वी रहते हैं । उस स्थान को सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिये। इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है । गङ्गा पृथ्वी पर मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवताओं को तारती है । इसीलिये वे त्रिपथगा कहलाती हैं । किसी भी जीव की हड्डियाँ जितने समय तक गङ्गा में रहती हैं उतने हजार वर्षों तक वह स्वर्ग लोक में सम्मानित होता है । गङ्गा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, नदियों

में उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण भूतों-महापातकियों को भी मोक्ष देने वाली हैं । गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं । केवल तीन स्थानों में वे दुर्लभ मानी गयी हैं — गङ्गद्वार, प्रयाग तथा गङ्गासागर संगम में । वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है वे फिर कभी जन्म नहीं लेते । जिनका चित्त पापों से दूषित है ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्यों की गङ्गा के सिवा अन्य गति नहीं है । भगवान् शंकर के मस्तक से निकली हुयी गङ्गा सब पापों को हरने वाली और शुभकारिणी हैं । वे पवित्रों को भी पवित्र करने वाली और मंगलमय पदार्थों के लिये भी मंगलकारिणी हैं —

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी ।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
गतिरस्यत्र मर्त्यानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥
पवित्राणां पवित्रं या मंगलानां च मंगलम्
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥[85]

- पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 43/52-56

फिर इसी खण्ड के अध्याय सैतालिसवें में मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं - 'वायु देवता ने देवलोक, भू-लोक तथा अंतरिक्ष में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं । गङ्गा को उन सबका स्वरूप माना गया है ।' —

तिस्रकोट्यर्द्धकोटीश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ।।[86]

- पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 47/7

प्रयाग माहात्म्य के प्रकरण का उपसंहार करते हुये इसी खण्ड के उन्चासवें अध्याय में भगवान् वासुदेव स्वयं श्रीमुख से युधिष्ठिर से कहते हैं - 'ऋषियों और देवताओं ने भी क्रमशः यज्ञों का वर्णन किया है, किन्तु महाराज ! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते । यज्ञ में बहुत सामग्री की आवश्यकता होती है । नाना प्रकार की तैयारियाँ और समारोह करने पड़ते हैं । कहीं कोई धनवान् मनुष्य ही भाँति-भाँति के द्रव्यों का उपयोग करके यज्ञ कर सकता है । नरेश्वर ! जिसे विद्वान् पुरुष दरिद्र होने पर भी कर सके तथा जो पुण्य और फल में यज्ञ की समानता करता हो, वह उपाय बताता हूँ सुनिये । यह ऋषियों का गोपनीय रहस्य है, तीर्थ यात्रा का पुण्य यज्ञों से भी बढ़कर होता है । एक अरब, तीस करोड़ से भी अधिक तीर्थ माघमास में गङ्गाजी के भीतर आकर स्थित होते हैं —

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम ।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।।
दशकोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे ।
माघमासे तु गङ्गायां गमिष्यन्ति नरर्षभ ।।[87]

- पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 49/15-16

इसी पुराण के उत्तर खण्ड में गङ्गावतरण की संक्षिप्त कथा और हरिद्वार का माहात्म्य एक ही अध्याय में दिया गया है । तदनुसार महादेवजी नारद को परमपुण्यमय हरिद्वार माहात्म्य का श्रवण कराते हैं, हरिद्वार में भगवती गङ्गा बहती हैं । वह उत्तम तीर्थ है । वहाँ देवता ऋषि और मनुष्य निवास करते हैं । वहाँ साक्षात् भगवान् केशव नित्य विराजते रहते हैं । राजा भगीरथ उसी मार्ग से भगवती गङ्गा को लाये थे तथा उन माहात्मा ने गङ्गाजल का स्पर्श कराकर अपने पूर्वजों का उद्धार किया था। .... पूर्व काल में हरिश्चन्द्र नाम के राजा हो चुके हैं, जो त्रिभुवन

में सत्य के विख्यात पालक थे । उनके रोहित नाम का एक पुत्र हुआ। रोहित से वृक, वृक से सुबाहु और सुबाहु से गर नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । एक समय अनेक राजाओं ने गर के ऊपर चढ़ाई कर उनका राज्य छीन लिया । गर अपने कुटुम्ब के साथ भृगुनन्दन और्व के आश्रम पर चले गये । और्व ने कृपापूर्वक वहाँ उनकी रक्षा की । वहीं उनके सगर नामक पुत्र का जन्म हुआ । महात्मा भार्गव से रक्षित हो वह उसी आश्रम में बढ़ने लगा । वहाँ और्व ऋषि ने उस बालक को वेद विद्या एवं अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास कराया ।

राजा सगर ने अपने प्रताप से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया तथा धर्मसंचय के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया । उनके अश्वमेध यज्ञ का अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के तट पर हर लिया गया और पृथ्वी के भीतर पहुँचा दिया गया । तब राजा ने अपने पुत्रों को लगाकर उस स्थान को खुदवाया । महासागर खोदते समय वे अश्व तो नहीं पा सके किन्तु वहाँ तपस्या करने वाले आदिपुरुष महात्मा कपिल पर उनकी दृष्टि पड़ी । वे उतावले होकर उनके निकट गये और जगत्प्रभु कपिल को लक्ष्य करके कहने लगे - 'यह चोर है ।' कोलाहल सुनकर भगवान् कपिल समाधि से जाग उठे । उस समय उनके नेत्रों से अग्नि प्रकट हुयी। उस अग्नि में सगर के साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये । महायशस्वी राजा ने समुद्र से उस आश्वमेधिक अश्व को प्राप्त किया और उसके द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान पूर्ण किया ।

नारदजी के पूछने पर कि सगर के साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति कैसे हुई ? भगवान् महादेव जी कहते हैं - नारद ! राजा सगर की दो पत्नियाँ थीं । उनमें से एक ने महामुनि और्व से साठ हजार पुत्र माँगे और दूसरी ने एक ही ऐसे पुत्र की प्रार्थना की, जो वंश चलानेवाला हो । पहली रानी ने तूँबी में बहुत से शूर-वीर पुत्रों को जन्म दिया । घी से भरे हुये घड़े में रखकर उन कुमारों का पोषण किया । कपिला गाय का दूध

पीकर वे बड़े हुये । दूसरी रानी के गर्भ से पंचजन नाम का पुत्र हुआ, जो राजा बना । पंचजन के अंशुमान नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। अंशुमान के दिलीप और दिलीप के भगीरथ हुये जो उत्तम व्रत का अनुष्ठान करके नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी को पृथ्वी पर ले आये तथा जिन्होंने गङ्गा को समुद्र तक ले जाकर उन्हें अपनी कन्या के रूप में अंगीकार किया ।

नारद जी के पूछने पर कि भगीरथ गङ्गाजी को किस प्रकार लाये थे और उन्होंने कौन सी तपस्या की थी ? इस पर भगवान् महादेवजी बताते हैं - राजा भगीरथ अपने पूर्वजों का हित करने के लिये हिमालय पर्वत पर गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने दस हजार वर्षों तक भारी तपस्या की । इससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हुये । उन्हीं के आदेश से गङ्गाजी आकाश से चलीं और जहाँ विश्वेश्वर श्रीशिव नित्य विराजमान रहते हैं उस कैलाश पर्वत पर उपस्थित हुईं । मैने गङ्गाजी को आया देख उन्हें अपने जंटा-जूट में धारण कर लिया और दस हजार वर्षों तक उसी रूप में स्थित रहा । इधर राजा भगीरथ गङ्गाजी को न देखकर विचार करने लगे कि गङ्गा कहाँ चली गईं ? ध्यान करके जब उन्होंने यह निश्चित रूप से जान लिया कि उन्हें मैनें ग्रहण कर लिया है तब वे कैलाश पर्वत पर गये । वहाँ पहुँचकर वे तीव्र तपस्या करने लगे । उनके आराधना करने पर मैने अपने मस्तक से एक बाल उखाड़ा और उसी के साथ उन्हें त्रिपथगा गङ्गाजी को अर्पण कर दिया । गङ्गाजी को लेकर वे पाताल में, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुये थे उस स्थान पर गये । उस समय भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकट हुयी गङ्गा जब हरिद्वार में आईं, तब वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ श्रेष्ठ तीर्थ बन गया । जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नान तथा विशेष जप से श्रीहरि का दर्शन करके उनकी परिक्रमा करते हैं वे दुःख के भागी नहीं होते ।

इसके बाद इसी उत्तरखण्ड के 23वें अध्याय में भी गङ्गा की

महिमा का वर्णन है तथा श्रीविष्णु, यमुना, प्रयाग, काशी और गया की स्तुति भी है । महादेव जी नारदजी से कहते हैं - जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूर से गङ्गा-गङ्गा उच्चारण करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक चला जाता है —

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥[88]

- पद्मपुराण उत्तर खण्ड 23/2

जो मनीषी पृथ्वी सहित समुद्र का दान करते है, उनको मिलने वाला फल भी गङ्गा स्नान से प्राप्त हो जाता है । सहस्र गोदान, सौ अश्वमेध यज्ञ तथा सहस्र वृषभदान से जिस अक्षय फल की प्राप्ति होती है, वह गङ्गाजी के दर्शन से क्षण भर में प्राप्त हो जाती है । वह गङ्गा नदी महान् पुण्यदायिनी हैं । विशेषतः ब्रह्महत्यारों के लिये परमपावन है । वे नरक में पड़ने वाले हों तो भी गङ्गाजी उनके पाप हर लेती हैं। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार गङ्गा के प्रभाव से पातक नष्ट हो जाते हैं । ये माता गङ्गा संसार में सदा पवित्र मानी गयी हैं । इनका स्वरूप परमकल्याणमय है । माता जाह्नवी का स्वरूप दिव्य है । जैसे देवताओं में श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं वैसे ही नदियों में गङ्गा उत्तम हैं ।

इसके बाद इसी अध्याय में महादेव जी गङ्गा, यमुना एवं भगवान् विष्णु आदि के स्तवन की विधि बतलाते हैं, जिनमें से गङ्गा से सम्बन्धित श्लोक दिये जा रहे हैं —

यत्संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं
पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि ।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति
दिष्टया हि सा पथि दृशोर्भविताद्य गङ्गा ॥

जिनकी स्मृति पापराशि को तत्काल नाष्ट कर देती है, जो लाखों

योजन दूर से भी पापों के समूह को परास्त कर देती हैं, जिनका नाम उच्चारित किये जाने पर सम्पूर्ण जगत् पवित्र हो जाता है, वे गङ्गाजी आज सौभाग्यवश मेरे दृष्टिपथ में आयेगी ।

आलोकोत्कंठितेन प्रमुदितमनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं
सद् यस्मिन् कृत्यमेतामथ प्रथमकृती जज्ञिवान् स्वर्गसिन्धुम्।
स्नानं संध्यानिवापः सुरयजनमपि श्राद्धविप्राशनाद्यं
सर्वं सम्पूर्णमेतद् भवति भगवतः प्रीतिदं नात्र चित्रम् ॥

मनुष्य दर्शन के लिये उत्कण्ठित तथा प्रसन्नचित होकर जिसके पथ का अनुसरण करता है, जिसके तट पर समस्त शास्त्रविहित कर्म उत्तमतापूर्वक सम्पन्न होते हैं, उन गङ्गाजी को आदि सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी ने पहले स्वर्ग गङ्गा के रूप में उत्पन्न किया था । उनके तट पर किया हुआ स्नान, सन्ध्या, तर्पण, देवपूजा, श्राद्ध, ब्राह्मणभोजन आदि सब कुछ परिपूर्ण एवं भगवान् को प्रसन्नता प्रदान करने वाला होता है, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है —

द्रवीभूतं परं ब्रह्म परमानन्ददायिनि ।
अर्घ्यं गृहाण मे गङ्गे पापं हर नमोऽस्तु ते ॥

परमानन्द प्रदान करने वाली गङ्गाजी ! आप जलरूप अवतीर्ण साक्षात् परब्रह्म हैं । आपको नमस्कार है । आप मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये और मेरे पाप हर लीजिये ।

साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं
दुःखस्वाब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम् ।
सर्वांघोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती
तस्यै भागीरथिश्रीमतिमुदितमना देवि कुर्वे नमस्ते ॥

श्रीमती भागीरथी देवी ! जो जल रूप में परिणत साक्षात् धर्म की राशि हैं, भगवान् विष्णु के चरणारविन्दों से प्रकट हुई सुधा का सार हैं। दुःखरूपी समुद्र से पार होने के लिये जहाज हैं, स्वर्गलोक में जाने के

लिये सीढ़ी हैं, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापों का संहार करने वाली, उत्तम गुणसमूहों से युक्त और शोभासम्पन्न हैं, ऐसे जल को आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्नचित होकर आपको प्रणाम करता हूँ —

स्वःसिन्धो दुरिताब्धिमग्नजनतासंतारणि प्रोल्लसत्
कल्लोलामलकान्तिनाशिततमस्तोमे जगत्पावनि ।
गंगे देवि पुनीहि दुष्कृतभयक्रान्तं कृपाभाजनं
मातर्मां शरणागतं शरणदे रक्षाद्य भो भीषितम् ॥

स्वर्गलोक की नदी भगवती गङ्गे ! आप पाप के समुद्र में डुबी हुई जनता को तारने वाली हैं, अपनी उठती हुई शोभायुक्त लहरों की निर्मल कान्ति से पापरूपी अन्धकार राशि का नाश करती हैं तथा जगत् को पवित्र करने वाली हैं। मैं पाप के भय से ग्रस्त और आपका कृपाभाजन हूँ। शरणदायिनी माता ! आपकी शरण में आया हूँ। आज मुझ भयभीति की रक्षा कीजिये —

हं हो मानस कम्पसे किमु सखे त्रस्तो भयान्नारकात्
किं ते भीतिरिति श्रुतिर्दुरितकृत् संजायते नारकी ।
मा भैषीः श्रृणु मे गतिं यदि मया पापाचलस्पर्धिनी
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मो धनम् ॥

ऐ मेरे चित्त ! ओ मित्र ! तुम नरक के भय से त्रस्त होकर काँप क्यों रहे हो ? क्या तुम्हें यह सोचकर भय हो रहा है कि पापी मनुष्य नरक में पड़ता है ? ऐसा श्रुति का कथन है। सखे ! इसके लिये भय न करो, मेरी क्या गति होगी ? यह बताता हूँ। सुनो, पापों के पहाड़ से भी टक्कर लेने वाली भगवती गङ्गा प्राप्त हो गयी हैं, तो तुम्हे नरक की प्राप्ति कैसे हो सकती है अथवा कोई दूसरी दुर्गति भी कैसे होगी ? क्या मेरे पास धर्मरूपी धन नहीं है ?

स्वर्वासाधिप्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं

स्वर्नार्यो वीक्ष्य हृष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन ।
नीरेश्रीजह्नुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति ये तावकीने
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम् ॥

जिस गङ्गाजी के जल में किया हुआ स्नान स्वर्गलोक के निवास तथा प्रशंसा के आनन्द की अनुभूति का कारण बताया गया है, वहाँ किसी को स्नान करते देख स्वर्गलोक की देवियाँ एक नूतन देवता अथवा इन्द्र के मिलने की संभावना से बहुत प्रसन्न होती हैं । जह्नु पुत्री गङ्गे ! जो लोग यम-नियमों का पालन करते हुये आपके जल में स्नान करते हैं वे पहले के पापी होने पर भी निश्चय ही देवत्त्व प्राप्त कर लेते हैं — इस विषय में वेद प्रमाण हैं ।

बुद्धे सद्बुद्धिरेवं भवतु तव सखे मानस स्वस्ति तेऽस्तु
आस्तां पादौ पदस्थौ सततमिह युवां साधुदृष्टी च दृष्टी ।
वाणि प्राणप्रियेऽधिप्रकटगुणवपुः प्राप्नुहि प्राणपुष्टिं
यस्मात् सर्वैर्भवद्भिः सुखमतुलमहं प्राप्नुयां तीर्थपुण्यम् ॥

बुद्धे ! सदा इसी प्रकार तुम्हारी सद्बुद्धि बनी रहे । सखे मन ! तुम्हारा भी कल्याण हो । चरणो ! तुम भी इसी योग्य पद पर स्थित रहो। नेत्रो ! तुम दोनों भी उत्तम दृष्टि से सम्पन्न रहो । वाणी ! तुम प्राणों की प्रिया हो तथा प्रकट हुये उत्तम गुणों से युक्त शरीर ! तुम्हारी प्राण शक्ति का पोषण हो, क्योंकि मैं तुम सब लोगों के साथ आज अतुलित सुख प्रदान करने वाले तीर्थजनित पुण्य को प्राप्त करुँगा ।

श्री जाह्नवी रविसुता परमेष्ठिपुत्री -
सिन्धुत्रयाभरण तीर्थवर प्रयाग ।
सर्वेश मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्व -
मन्तस्तमोदशविधं दलय स्वधाम्ना ॥[89]

- पद्मपुराण उत्तर खण्ड 23/28/26

गङ्गा, यमुना और सरस्वती - इन तीनों नदियों को आभूषणरूप में

धारण करने वाले तीर्थराज प्रयाग ! सर्वेश्वर ! मुझपर अनुग्रह करो, मुझे ऊँचे उठाओ तथा मेरे अन्तःकरण के दस प्रकार के अविद्यान्ध कार को अपने तेज से नष्ट करो ।

इसके बाद पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के 82वें अध्याय में पार्वती जी शिव जी से निवेदन करती हैं, " महामते ! श्री गङ्गाजी के माहात्म्य का पुनः वर्णन कीजिये, जिसे सुन कर सभी मुनि संसार की ओर से विरक्त हो जाते हैं ।" इस पर शिवजी ने उन्हें भीष्म और युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत सिद्ध पुरुष और एक ब्राह्मण का संवाद सुनाते हैं । इस संवाद में गृहस्थब्राह्मण अपने घर आये एक सिद्धपुरुष से पूछते हैं, " द्विजश्रेष्ठ ! कौन-कौन से देश पर्वत और आश्रम पवित्र हैं ? मुझे प्रेम पूर्वक बताने की कृपा कीजिये । इस पर सिद्ध पुरुष उत्तर देते हैं, " ब्राह्मण ! जिनके बीच नदियों में श्रेष्ठ त्रिपथगा गङ्गाजी सदा बहती रहती हैं, वे ही देश, वे ही जनपद, वे ही पर्वत और वे ही आश्रम परम पवित्र हैं । जीव गङ्गाजी का सेवन करके जिस गति को प्राप्त करता है, उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्याग से भी नहीं पा सकता, -

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गंगा संसेव्य यां लभेत् ॥[10]

- प.पु.उ.ख.82/24

अपने मन को संयम में रखने वाले पुरुषों को गंगाजी के जल में स्नान करने से जो संतोष होता है, वह सौ यज्ञों के अनुष्ठान से भी नहीं हो सकता । जैसे- सूर्य उदयकाल में तीव्र अन्धकार का नाश करके तेज से उद्भासित हो उठता है, उसी प्रकार गङ्गाजी के जल में डुबकी लगाने वाला मनुष्य पापों का नाश करके पुण्य से प्रकाशमान होने लगता है । विप्र ! जैसे आग का संयोग पाकर रुई का ढेर जल जाता है, उसी प्रकार गङ्गा का स्नान मनुष्य के सारे पापों को दूर कर देता है -

अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।

तथापहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥
अग्निं प्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति ।
तथा गङ्गावगाह्यात्र सर्वपापं व्यपोहति ॥[91]

- पद्मपुराण 82/26-27

जो सौ योजन दूर से भी गङ्गा-गङ्गा इस नाम का उच्चारण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक चला जाता है —

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥[92]

- पद्मपुराण उत्तर खण्ड 82/34-35

ब्रह्महत्यारा, गोघाती, शराबी और बालहत्या करने वाला मनुष्य भी गङ्गाजी में स्नान करके सब पापों से छूट जाता है और तत्काल देवलोक में चला जाता है । जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गंगा में स्नान करने मात्र से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । गङ्गाद्वारद्ध कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता है —

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥[93]

- - पद्मपुराण उत्तर खण्ड 82/38-39

इस प्रकार पद्मपुराण में गङ्गा की उत्पत्ति तथा माहात्म्य का प्रकरण समाप्त होता है। हम देख सकते हैं कि पद्मपुराण में गङ्गा की महिमा सर्वोपरि है, यद्यपि माहात्म्य के कतिपय श्लोकों का अलग-अलग प्रकरणों में एवं अध्यायों में बार-बार पुनरावर्तन होता है ।

9- कूर्मपुराण में गङ्गा -

कूर्मपुराण के पूर्वखण्ड के 21वें, 36वें, 37वें और 104वें अध्यायों में गङ्गा की चर्चा है । इक्ष्वाकु वंश का वर्णन करते हुये गङ्गा का उल्लेख है । तद्नुसार दिलीप के पुत्र भागीरथ हुये । उन्होंने तप

करके गङ्गा को पृथ्वी पर उतारा, इसीलिये वह भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हैं । देवों के भी देव बुद्धिमान् महादेव की कृपा से ही यह संभव हुआ था । भगीरथ की तपस्या से भगवान् शिव प्रीतियुक्त मन वाले हो गये थे तथा चन्द्रमा को आभूषण के रूप में धारण करने वाले महादेव ने उस गङ्गा को अपने चन्द्र के नीचे ही सिर पर धारण कर लिया था ।

इसी पुराण में वाराणसी माहात्म्य के सन्दर्भ में गङ्गा की महिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि विशेष रूप से वाराणसी में प्रविष्ट हुईं गङ्गा मनुष्य के सौ जन्मों के किये हुये पापों को नष्ट कर देती है-

वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥[94]

- कूर्मपुराण पूर्वार्ध भाग 31/49-50

इसी पुराण के प्रयाग माहात्म्य के अन्तर्गत भी गङ्गा की महिमा का वर्णन है-

योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः ।
अपि दुष्कृतकर्मासो लभते परमां गतिम् ।
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।
तथोपस्पृश्य राजेन्द्र सुरलोके महीयते ॥[95]

- कूर्मपुराण पूर्व भाग 36/29-30

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥[96]

- कूर्मपुराण पूर्व भाग 37/34

उपरोक्त मन्त्र मत्स्यपुराण, पद्मपुराण के साथ-साथ और भी पुराणों में आये हैं जिनके अनुसार हजारों योजन दूर से भी जो गङ्गा का स्मरण करता है वह यदि दुष्कर्मी हो तो भी उसे परमगति की प्राप्ति होती है । कीर्तन करने से गङ्गा पापों को नष्ट कर देती हैं तथा उसके दर्शन करने से जीवन में मंगल एवं शुभ का दर्शन होता है तथा गङ्गा का स्पर्श होते

ही व्यक्ति देवलोक की प्राप्ति कर लेता है । वैसे तो गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं पर तीन स्थानों पर दुर्लभ हैं । वे तीन स्थान हैं — हरिद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागर संगम ।

इसी पुराण के 37वें अध्याय के 34 से लेकर 39 श्लोकों में गङ्गा की महिमा का गुणगान करते हुये पुराणकार का कथन है - पाप से उपहत् चित्त वाले और सद्गति को खोजने वाले सभी प्राणियों के लिये गङ्गा के समान कोई गति नहीं है।

यह पवित्र पदार्थों में अधिक पवित्र तथा मंगलमय वस्तुओं में मंगल स्वरूप हैं । शिव से निकली हुयी गङ्गा समस्त पापों को हरने वाली तथा शुभ हैं ।

सतयुग में नैमिषारण्य तीर्थ, त्रेता में पुष्कर और द्वापर में कुरुक्षेत्र श्रेष्ठ हैं किन्तु कलियुग में गङ्गा का महत्त्व सबसे अधिक है ।

लोग विशेष रूप से प्रयाग में ही गङ्गा का सेवन करते हैं । इस भयानक कलियुग में गङ्गाजी से बढ़कर अन्य कोई औषधि नहीं है । अनिच्छा से या इच्छापूर्वक गङ्गा में जो कोई शरीर त्याग करता है, वह मरने पर स्वर्ग जाता है । वह नरक को कभी नहीं देखता है —

सर्वेषामेव भूतानां पापोहतचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गा समा गतिः।
पवित्राणां पवित्रं यन्मंगलानां च मंगलम् ।
महेश्वरात्परिभ्रष्टा सर्वपाप हरा शुभा ।
कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्र कलौ गङ्गा विशिष्यते ।
गङ्गामेव निषेवन्ते प्रयागे तु विशेषतः ।
नान्यत्कलियुगे रौद्रे भेषजं नृप विद्यते ।
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते ।

स मृतो जायते स्वर्गे नरकं च न पश्यति ॥[97]

- कूर्म पुराण पूर्व भाग 37/34-39

10- ब्रह्माण्ड महापुराण में गङ्गा –

ब्रह्माण्ड महापुराण की गणना प्राचीनतम् पुराणों में होती है । यह पुराणों के राजस् कोटि के अन्तर्गत आता है । यह पुराणपुरुष की अस्थियों का निर्माण करता है । यह तीन भागों में विभाजित है - (1) पूर्व भाग (2) मध्य भाग (3) उत्तरभाग । इसमें कुल 165 अध्याय हैं। पूर्व भाग में 38, मध्यभाग में 74 और उत्तरभाग में 44 अध्याय हैं । ब्रह्माण्ड पुराण के मध्य भाग के 47वें से लेकर 56वें अध्याय तक राजा सगर एवं उनके वंशजो का वर्णन है तथा इसके मध्यभाग के अध्याय 56 में गङ्गावतरण की कथा निम्न प्रकार से है —

भगीरथ अपने पुरखों के उद्धार के लिये अपने श्रेष्ठ मंत्री को राज्य-भार सौंपकर गङ्गावतरण के लिए वन में तपस्या करने चले गये । सबसे पहले उन्होंने ब्रह्माजी की तपस्या करके अपेक्षित आयु प्राप्त किया फिर गङ्गाजी की प्रसन्नता के लिये तप करने लगे और गङ्गाजी को भी अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया । गङ्गा से पृथ्वी पर अवतरण का वरदान लेकर वे पुनः शिव की आराधना करने लगे ताकि शिव गङ्गा को अपनी जटाओं में धारण कर लें । शिवजी भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर गङ्गा को अपने शीश पर धारण करने का भगीरथ को आश्वासन दिया तथा मेरु पर्वत के शिखर से समापतन करती हुयी गङ्गाजी को अपने सिर पर धारण किया जिसमें बड़े-बड़े मत्स्य, नक्र और मकर आदि सभी तरह के जल-जन्तु विद्यमान थे । गङ्गा शिव के गहन जटा-जूट में विलीन हो गईं । तब गङ्गा को प्रमीक्षण के लिये भगीरथ ने पुनः भगवान् शंकर की आराधना की । शिव के प्रसादरूप गङ्गा को वे महीतल पर लाने में सफल हुये[98] ।

गङ्गाजी भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे उनका अनुगमन करती हुयी

चल रही थीं कि मार्ग में एक राजर्षि यजन कर रहे थे । गङ्गा देवी ने उनके यज्ञस्थल को चारों तरफ से प्लावित कर दिया । इस पर क्रुद्ध होकर उन राजर्षि ने गङ्गा का पान कर लिया । तब बहुत ही सावधान होकर भगीरथ ने सौ वर्षों तक उन राजर्षि की सुश्रूषा की । तब उन राजर्षि ने प्रसन्न होकर गङ्गा को मुक्त कर दिया । तभी जह्नु ऋषि के उदर से निकलने के कारण गङ्गा का एक नाम जाह्नवी हो गया । फिर गङ्गा भगीरथ के पीछे-पीछे अनुगमन करती हुयी सागर तक पहुँची और उनके पितरों का उद्धार किया । नरकों में जो घोर यातना प्राप्त कर रहे थे वे सभी सगर के पुत्र समस्त पापों के नष्ट होने से उसी क्षण में स्वर्गलोक में चले गये थे ।

मेरु पर्वत से गङ्गा चार दिशाओं में गमन कर गयी थीं और उनके सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु और भद्रावती चार भाग हुये । अगस्त्य मुनि के द्वारा पूरे समुद्र को सोख लिये जाने पर बहुत समय तक जल से शुष्क हो जाने वाले चारों समुद्र भी गङ्गा के जल से पुनः परिपूर्ण जल वाले हो गये । ब्रह्माण्ड पुराण के मध्य भाग के सैतालीस से लेकर पचास अध्याय तक सगर उपाख्यान है जिसमें अध्याय 47 के अन्त में सगर का जन्म और वशिष्ठ द्वारा उन्हें अश्वमेध यज्ञ के परामर्श दिये जाने की कथाएँ हैं । इस अध्याय से लेकर 56वें अध्याय तक में सगर, असमंजस, अंशुमान, दिलीप और भगीरथ की कथाएँ हैं । अध्याय 57 में गङ्गावतरण का वर्णन है ।

11- वामन पुराण में गङ्गा -

यह मुख्य रूप से वैष्णव पुराण है । इसमें भगवान् विष्णु के वामनावतार का विशेषरूप से वर्णन है । इस पुराण के अनुसार बलि का यज्ञ कुरुक्षेत्र में ही हुआ था । इस पुराण में गङ्गा की चर्चा प्रायः न के बराबर है । यहाँ तक कि वामन् प्रकरण में जो कि गङ्गा की उत्पत्ति का मूल प्रकरण है इसमें भी गङ्गा का उल्लेख नहीं है । इस पुराण के

अध्याय 23 से 31 तक वामन भगवान् के चरित्र का वर्णन है । इसमें अध्याय 31 में 91 श्लोकों में भगवान् वामन के विराट् स्वरूप का तथा उनके द्वारा ब्रह्माण्ड को दो पगों में मापने का वर्णन तो है पर इस प्रकरण में गङ्गा का नाम कहीं नहीं आया है । पुनः इसी पुराण के अध्याय 91 में भगवान् वामन का बलि के यज्ञ में जाकर उनसे तीन पग भूमि की याचना, उनका विराट् रूप धारण करना एवं त्रिविक्रमत्त्व और बलि को बाँधना, फिर बन्धन मुक्त कर पाताल में भेजने की कथा तो है पर यहाँ भी गङ्गा की उत्पत्ति का सीधे-सीधे वर्णन नहीं है । हाँ, संकेतात्मक वर्णन अवश्य है । वह भी निम्न प्रकार से —

जब बलि के दिये गये दान के परिणामस्वरूप भगवान् ने विराट् रूप धारण किया और ब्रह्माण्ड को मापने के लिये अपना पैर उठाया तो उनका वह पाद ब्रह्माण्ड के ऊपर के भाग को भेदकर निरालोक में चला गया । भगवान् विष्णु के बढ़ते चरण ने बलपूर्वक ब्रह्माण्ड कटाह का भेदन कर दिया । भगवान् विष्णु का वह बढ़ा हुआ चरण कुटिला नदी के निकट पहुँच गया । इससे कुटिला विष्णुपदी के नाम से प्रसिद्ध हुयी । तपस्या करने वाले लोग देवनदी के रूप में उसकी सेवा करने लगे—

विश्वांघ्रिणा प्रसरता कटाहो भेदितो बलात् ।
कुटिला विष्णुपादे तु समेत्य कुटिला ततः ॥
तस्या विष्णुपदीत्येनं नामाख्यातमभून्मुने ।
तथा सुरनदीत्येवं तामसेवन्त तापसाः ॥"

- वामन पुराण 91/33-34

इस पुराण में सीधे-सीधे गङ्गाजी का नाम इसके अध्याय 34 में आया है, जिसमें कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध सात वनों, नौ नदियों एवं तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है । लेकिन इसमें भी गङ्गाजी को बरसाती नदी बताया गया है —

वनान्येतानि वै सप्तनदीः श्रुणुत मे द्विजाः,
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ।
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी,
मधुस्त्रवा वासु नदी कौशिकी पापनाशिनी ।
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी,
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ।[100]

- वामनपुराण 34/6-8

अर्थात् ये ही सात वन हैं, हे द्विजो ! नदियों को मुझसे सुनो । पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्त्रवा, दृषद्वती तथा हिरण्यवती नदी । इसमें सरस्वती के अतिरिक्त सभी नदियाँ वर्षा-काल में ही बहने वाली हैं ।

इन सभी नदियों का समेकित माहात्म्य बतलाते हुये एक श्लोक में कहा गया है कि वर्षा काल में इन नदियों का जल अपवित्र नहीं होता। तीर्थ के प्रभाव से ये सभी नदियाँ पवित्र हैं —

रजस्वलत्वमेतास्तं विद्यते न कदाचन ।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः ।।[101]

- वामनपुराण 34/9

12- ब्रह्मवैवर्त पुराण में गङ्गा -

ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड के प्रथम अध्याय में पंचदेवीरूपा प्रकृति का तथा उनके अंश, कला एवं कलांश का विषद् वर्णन है । इसके अनुसार प्रकृति शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट, फिर 'प्र' शब्द सत्त्वगुण के अर्थ में, 'कृ' शब्द रजोगुण के अर्थ में, 'ति' तमोगुण के अर्थ में प्रयुक्त है अर्थात् प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म के दाहिने अंग पुरुष तथा बाँये अंग से प्रकृति पैदा हुयी । वहीं प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी माया है । प्रकृति की शक्ति जिन पाँच देवियों के रूप में प्रकट होती हैं वे हैं — दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती,

सावित्री और राधा । इन देवियों के प्रधान अंश भी हैं जिनमें सर्वोपरि हैं गङ्गा ।

भूमण्डल को पवित्र करने वाली गङ्गा इनका प्रधान अंश हैं । ये सनातनी गङ्गा जलमयी हैं । भगवान् विष्णु के विग्रह से इनका प्रादुर्भाव हुआ है । पापियों के पापमय ईंधन को भस्म करने के लिये ये प्रज्वलित अग्नि हैं । इनके स्पर्श करने इनमें नहाने अथवा इनका जलपान करने से पुरुष कैवल्य पद के अधिकारी हो जाते हैं । गोलोकधाम जाने के लिये ये सुखप्रद सीढ़ी के रूप में विराजमान हैं । इनका स्वरूप पवित्र है । ये समस्त तीर्थों एवं नदियों में श्रेष्ठ मानी जाती हैं । ये भगवान् शंकर के मस्तक पर उनकी जटा में ठहरीं थीं । ये वहाँ से निकलीं और पंक्तिबद्ध होकर भारतवर्ष में आ गईं । तपस्वी जन अपनी तपस्या में सफलता प्राप्त कर सकें इसीलिये शीघ्र ही इनका पधारना हो गया । .... ये परम साध्वी गङ्गा भगवान् नारायण को परम प्रिय हैं ।[102]

गङ्गा की उत्पत्ति -

ब्रह्मवैवर्त पुराण में गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन विशेष रूप से इसके प्रकृति खण्ड के दसवें अध्याय में दिया गया है । तदनुसार गङ्गा सुरेश्वरी विष्णुरूपा एवं विष्णुपदी नाम से विख्यात हैं तथा भारतवर्ष में सरस्वती के श्राप से इनका पदार्पण हुआ है । इस पुराण में गङ्गा की उत्पत्ति की कथा स्वयं भगवान् नारायण देवर्षि नारद को सुनाते हुये कहते हैं - सूर्यवंशी सम्राट् सगर की दो पत्नियाँ थीं - वैदर्भी और शैव्या । शैव्या को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था असमंजस । वैदर्भी को शिवजी के वरदान से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुये । ये साठों हजार पुत्र कालान्तर में कपिल मुनि के श्राप से जलकर भस्म हो गये । पुत्र शोक से दुखित होकर राजा सगर जंगल में चले गये । तब उनके पुत्र असमंजस ने गङ्गा को पृथ्वी पर लाने के लिये घोर तपस्या आरम्भ कर दी । वे तपस्या करते हुये ही कालकवलित हुये । तब उनके पुत्र

अंशुमान भी गङ्गा को लाने के लिये घोर तपस्या किये और अपने पिता के भाँति ही अकृतकार्य रहते हुये कालकवलित हुये । अंशुमान के पुत्र का नाम भगीरथ था । गङ्गा को लाने के लिये उन्होंने भी बहुत काल तक तपस्या की । इनके तप से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें दर्शन दिया । भगीरथ की तपस्या एवं उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने गङ्गा को आदेश दिया कि तुम सरस्वती के शाप से अभी भारतवर्ष में जाओ और मेरी आज्ञा के अनुसार सगर के सभी पुत्रों को पवित्र करो ।

इस अवसर पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये कहते हैं - भारतवर्ष में मनुष्यों द्वारा उपार्जित करोड़ों जन्म के पाप गङ्गा की वायु के स्पर्श मात्र से नष्ट हो जाते हैं । स्पर्श और दर्शन की अपेक्षा गङ्गादेवी में मौसल स्नान करने से दस गुना पुण्य होता है ।

गङ्गाजी के यह पूछने पर कि उन्हें पृथ्वी लोक में कब तक रहना होगा तथा उनमें सभी पापी अपने पाप धोएँगे तो फिर सबके पापों को धोते-धोते जो उनके ऊपर पाप का बोझ लद जायेगा वह कैसे दूर होगा? भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि उन्हें कलियुग के पाँच हजार वर्षों तक सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में रहना है । आगे भगवान् श्रीकृष्ण गङ्गा से कहते हैं कि जो तुम्हारी स्तुति एवं तुम्हें प्रणाम करेगा उसको अश्वमेध यज्ञ का फल सुलभता से प्राप्त होगा चाहे वह सैकड़ों योजन की दूरी पर ही क्यों न हो । किन्तु जो गङ्गा-गङ्गा इस नाम का उच्चारण करके स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर विष्णुलोक में चला जाता है । हजारों पापी व्यक्तियों के स्नान से जो तुम पर पाप आ जायेंगे, वे मेरे भक्तों के स्पर्श मात्र से ही नष्ट हो जायेंगे ।

गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये भगवान् नारायण नारदजी से कहते हैं कि गङ्गा का वर्ण श्वेतचम्पा के समान स्वच्छ हैं । परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह से इनका प्राकट्य हुआ है ।

भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर गङ्गा उनके साथ-साथ वहाँ गईं जहाँ सगर के साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे । गङ्गा का स्पर्श करके बहने वाली वायु का स्पर्श होते ही वे राजकुमार तुरंत वैकुण्ठ चले गये ।

भगवान् नारायण के श्रीमुख से इतनी कथा सुनने के बाद देवर्षि नारदजी उनसे पूछते हैं जब शिवजी के संगीत से मुग्ध हो श्रीकृष्ण और राधा द्रवभाव को प्राप्त हो गये तब क्या हुआ ? भगवान् नारायण नारदजी को उक्त वृत्तान्त सुनाते हुये कहते हैं - कार्तिक पूर्णिमा को राधा महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जा रहा था । भगवान् श्रीकृष्ण सम्यक् प्रकार से राधा की पूजा करके रासमण्डल में विराजमान थे । तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता तथा शौनकादि ऋषि आदि ने युगल मूर्ति राधाकृष्ण की पूजा की । तत्पश्चात् सरस्वती हाथ में वीणा ले सुन्दर गीत गाने लगीं । इतने में ब्रह्मा से प्रेरित हो भगवान् शंकर भी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति गाने लगे । उस गीत को सुनकर सम्पूर्ण देवता मूर्छित हो गये । सावधान होने पर सभी लोगों ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा के साथ जलमय हो गये हैं । तब वे सभी देवता परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे । इस पर भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधा के साथ प्रकट हो गये ।

भगवान् नारायण देवर्षि नारदजी से कहते हैं - नारद ! वे ही पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण जलरूप होकर गङ्गा बन गये थे । गोलोक से प्रकट होने वाली गङ्गा का यही रहस्य है । श्रीराधा एवं भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से प्रकट होने वाली यह गङ्गा मुक्ति और भुक्ति दोनों प्रदान करने वाली हैं । श्रीकृष्णस्वरूपा इन आदरणीया गङ्गा देवी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लोग पूजते हैं ।[103]

इसी पुराण के अगले दो अध्यायों 11वें एवं 12वें में गङ्गाजी का विष्णु पत्नी होने के सन्दर्भ का विषद् वर्णन है । नारदजी भगवान्

नारायण से पूछते हैं कि कलियुग में पाँच हजार वर्ष बीतने पर गङ्गा का कहाँ जाना होगा ? इस पर श्री नारायण जी उन्हें बताते हैं - नारद ! सरस्वती के शाप से गङ्गाजी भारतवर्ष में आईं । शाप की अवधि पूरी होने पर वह पुनः भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में चली जायेंगी । गङ्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और तुलसी भगवान् श्रीहरि की प्रेयसी पत्नियाँ हैं । आरम्भ में गङ्गा गोलोक में ही रहती थीं । एक बार राधा के कोप से डर कर वह जलमय हो गयीं थीं । तब श्रीराधाजी ने गङ्गाजल अँजुलि में उठाकर पीना आरम्भ कर दिया था । तब उनके कोप से बचने के लिये गङ्गा माता भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाकर उनके चरणों में लीन हो गयी थीं । गङ्गाजी के भगवान् के श्रीचरणों में लीन होते ही सर्वत्र जल का अभाव हो गया । जलचर जन्तुओं के मृत शरीर से ब्रह्माण्ड का कोई भी भाग खाली न रहा । फिर तो ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनि-समाज, देवता, सिद्ध और तपस्वी सभी गोलोक आये । उस समय उनके कण्ठ, होंठ, तालू सब सूख गये थे । सभी ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की । भगवान् श्रीकृष्ण ने देवताओं का अभिप्रेत समझते हुये कहा कि आप सभी लोग गङ्गा को लेने के लिये यहाँ पधारे हैं । इस समय वो राधा के कोप से डर कर मेरी शरण में हैं । आप सभी देवता उसे निर्भय बनाने का प्रयत्न करें तो मैं उसे आप लोगों को सहर्ष दे दूँगा । तब ब्रह्मा जी ने भगवती राधा की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया तथा गङ्गा को पुनः प्राप्त किया । भगवान् श्रीहरि के चरणों से गङ्गा प्रकट हुईं इसीलिये लोग उन्हें विष्णुपदी कहने लगे । ब्रह्माजी ने गङ्गा को गोलोक से ले जाकर वैकुण्ठ लोक में भगवान् श्रीहरि को सौप दिया और चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि ने गङ्गा को पत्नी के रूप में स्वीकार किया ।[104]

इसी पुराण में गङ्गा और सरस्वती के बीच वैमनस्य की भी कथा है । यथा सरस्वती के मन में गङ्गा के प्रति डाह था पर गङ्गाजी सरस्वती

जी से द्वेष नहीं रखती थीं । अंत में खीझ कर माँ गङ्गा ने सरस्वती जी को भारतवर्ष में जाने का शाप दे दिया था ।

वास्तव में गङ्गा भक्ति का प्रतीक हैं और सरस्वती ज्ञान का । गङ्गा भगवान् श्रीहरि के चरणों से उत्पन्न है अतः वे विनम्रता की पराकाष्ठा हैं जबकि सरस्वती समस्त ब्रह्माण्ड की बुद्धि के प्रतीक ब्रह्मा से उत्पन्न हैं, अतः वहाँ अहं की पराकाष्ठा है । संभवतः गङ्गा और सरस्वती के बीच वैमनस्य की कथा का यही प्रतीकात्मक अर्थ है। यह हृदय और बुद्धि का संघर्ष है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड के अध्याय 6 में लक्ष्मी, सरस्वती एवं गङ्गा के परस्पर श्राप का प्रकरण आता है । नारायण भगवान् ने जब नारद को बताया कि वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के पास रहने वाली सरस्वती देवी, जिन्हें गङ्गाजी ने शाप दे दिया था, भारत में कल्याणरूपी नदी होकर प्रकट हुईं तब नारदजी ने सहज ही प्रश्न कर दिया कि 'प्रभो! ऐसा क्यों हुआ ? गङ्गाजी ने पूज्य सरस्वती जी को कैसे शाप दिया?' इस पर नारायणजी बताते हैं कि भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती ये तीन पत्नियाँ थीं । गङ्गा के प्रति भगवान् विष्णु का अत्यधिक प्रेम देखकर सरस्वती को सहन नहीं हुआ और वे गङ्गा से झगड़ पड़ीं। लक्ष्मी जी के बीच-बचाव करने पर सरस्वती जी ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मी जी को शाप दे दिया कि वह वृक्ष और नदी का रूप धारण करेंगी । इससे गङ्गाजी ने भी कुपित होकर सरस्वती को भी नदी बनने का शाप दे दिया। सरस्वती जी ने भी प्रत्युत्तर में गङ्गाजी को नदी होने का शाप दे दिया । भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को आदेश देते हुये कहा कि तुम अपने कलांश से पृथ्वी पर पद्मावती नदी एवं तुलसी वृक्ष बनो । फिर उन्होंने गङ्गाजी को आदेश देते हुये कहा - गङ्गा ! तुम भी भारती के शापवश भारत में पापियों के पाप का विनाश करने के लिये अपने अंश से विश्वपावनी नदी बनकर रहो । भगीरथ के दुष्कर तपस्या के कारण तुम्हें

वहाँ जाना पड़ेगा । भूतल पर सब लोग तुम्हें भागीरथी कहेंगे । हे सुरेश्वरी ! मेरे अंश से उत्पन्न समुद्र और मेरे ही अंश से उत्पन्न होने वाले राजा शान्तनु की तुम पत्नी बनना । इसके बाद भगवान् विष्णु गङ्गा और सरस्वती दोनों को आदेश देते हुये कहते हैं - 'हे गङ्गे ! यहाँ केवल सुशील लक्ष्मी ही मेरे घर में रहें क्योंकि जिसकी पत्नी सरल स्वभाव वाली और पतिव्रता होती है उसे स्वर्ग सुख यहीं प्राप्त होता है । परलोक में तो उसे केवल धर्म और मोक्ष प्राप्त होते हैं —

सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता ।
इह स्वर्गसुखं तस्य धर्ममोक्षौ परत्र च ॥[106]

- ब्रह्मवैवर्त पुराण प्र. 6/66

भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर गङ्गाजी ने उनसे कहा - 'हे जगत्पते ! किस अपराध के चलते आपने मेरा यह त्याग किया है ? मैं भी शरीर छोड़ दूँगी जिससे आपको मुझ निर्दोष का वध करने का फल मिले क्योंकि संसार में जो पुरुष अपनी निर्दोष स्त्री का त्याग करता है उसे एक कल्प तक नरकवास करना पड़ता है चाहे वह सर्वेश्वर आप ही क्यों न हों —

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते ।
देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषायावधं लभे ।
निर्दोषकामिनीत्यागं कुरुते यो जनो भवे ।
स याति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा ॥[107]

- ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड 6/72-73

जब सरस्वती ने भी गङ्गा की तरह ही अपना विरोध प्रकट किया एवं लक्ष्मी जी ने जब भगवान् विष्णु से अपनी इन दोनों सहपत्नियों को क्षमा कर देने की प्रार्थना की तब भगवान् विष्णु ने सरस्वती और गङ्गा दोनों से कहा - 'सरस्वती अपने कलांश से नदी बनकर भारत चली जायें अर्धांश से ब्रह्मा के घर जायें तथा पूर्णांश से स्वयं मेरे पास रहें । ऐसे

ही गङ्गा भगीरथ के सतत् प्रयत्न से अपने कलांश से त्रिलोकी को पवित्र करने के लिये भारत में जाएँ और स्वयं पूर्णांश से मेरे भवन में रहें । वहाँ भारत में उन्हें चन्द्रमौलि का वह दुर्लभ मस्तक भी प्राप्त हो जायेगा। इससे स्वभावतः पवित्र होती हुयी भी गङ्गा और पवित्र हो जायेंगी ।' इसी प्रकार उन्होंने लक्ष्मीजी को भी कलांश से भारत में पद्मावती नामक नदी और तुलसी नामक वृक्ष होकर रहने की आज्ञा दी । उन्होंने यह भी कहा कि कलियुग में पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर तुम लोग नदी भाव से मुक्त हो जाओगी । फिर मेरे यहाँ लौट आओगी ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणपति खण्ड के तीसरे अध्याय में महादेव जी द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिये पार्वती जी को पुण्यक व्रत करने का उपदेश है। इस प्रकरण में महादेव जी पुण्यक व्रत के माहात्म्य का वर्णन करते हुये पार्वती जी से कहते हैं कि जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, देवों में विष्णु, वैष्णव में मैं हूँ इसी भाँति व्रतों में पुण्यक व्रत है ।[109]

इसी पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड के पूर्वार्ध में 34वें अध्याय में गङ्गा के जन्म का वर्णन है । गोलोक में पधारे हुये भगवान् शिव के गायन से वहाँ उपस्थित सभी मुनिवृन्द, ब्रह्मा, विष्णु, पार्षदगण, लक्ष्मी और गायक स्वयं भगवान् शिव भी रुद्र रूप हो गये । वैकुण्ठ में जल भर गया । भगवान् श्रीकृष्ण ने उस जलराशि के लिये वैकुण्ठ में चारों ओर स्थान बनाया । फिर उसकी अधिष्ठात्री देवी गङ्गा स्वयं अपने वास स्थान में आयीं । देवों के शरीर से उत्पन्न होने के कारण वह दिव्य जलराशि देवनदी गङ्गा हुईं । स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण राधाजी से गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये कहते हैं - वह मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष और भगवान् के भक्तों को उनकी भक्ति प्रदान करती हैं । हे प्राणेश्वरी ! उनके स्पर्श करने और दर्शन करने का फल क्या होगा यह मैं नहीं जानता । फिर उसमें स्नान करने से प्राप्त होने वाले फल के विषय में क्या कहूँ ? पृथ्वी पर समस्त तीर्थों से बढ़कर पुष्कर तीर्थ माना गया है।

वेदों में प्रतिपादित वही तीर्थ इसकी सोलहवीं कला के भी समान नहीं है। इसे यहाँ भगीरथ लाये थे इसीलिये इसका नाम भागीरथी पड़ा । अपने स्रोत के अंश से यह पृथ्वी पर आयीं इसीलिये गङ्गा कहलाईं । पूर्वकाल में कुद्ध होकर जह्नु ने इन्हें पी लिया था और फिर जानु द्वारा इन्हें निकाल दिया था । अतः उनकी कन्या स्वरूप होने से ये जाह्नवी कहलायीं —

मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ।
कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो ॥
यस्याश्च स्पर्शवायोश्च संपर्केण विनश्यति ।
किंवा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोः फलम् ॥
किमुत स्नानजन्यं च कथयामि निरूपणम् ।
सर्वतीर्थपरं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्तितम् ॥
वेदोक्तं च तदेवास्याः कलां नार्हति षोडशीम् ।
भागीरथेन चाऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता ॥
गामागता स्रोतसोंऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्तिता ।
जानुद्वारा पुरादत्ता जह्नु नाऽऽपीय कोपत ॥[110]

- ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्म खण्ड 34/30-33

वसु के अंश से भीष्म स्वयं उनके गर्भ से उत्पन्न हुये इस कारण ये भीष्मजननी कही जाती हैं । गङ्गा मेरी आज्ञा से तीन धारा बनकर स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में गयी हैं इससे त्रिपथगामिनी कही जाती हैं।

इसी अध्याय में बताया गया है कि आकाश में बहने वाली गङ्गा को मन्दाकिनी, पृथ्वी पर बहने वाली गङ्गा को अलकनन्दा तथा पाताल में बहने वाली गङ्गा को भोगावती कहा जाता है ।

इसी अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण गङ्गा माहात्म्य का वर्णन करते हुये कहते हैं - गङ्गारूपी सीढ़ियाँ चढ़कर संत लोग निरामय (वैकुण्ठ) धाम को प्राप्त होते हैं । वे ब्रह्मलोक तक को लाँघ कर विमान पर बैठे हुये निर्बाध गति से जाते हैं । यदि दैववश पूर्वकर्म के प्रभाव से पापी

पुरुष गङ्गा में डूब जाये तो वे भगवान् के लोक में जाकर लोमप्रमाण वर्षों तक सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । उसके पश्चात् उन्हें पाप-पुण्य का भोग प्राप्त होता है और वे अत्यन्त स्वल्पकाल में ही कालसमूह को पूरा कर लेते हैं । तदनन्तर वे भारत में पुण्यवानों के गृह में जन्म लेकर भगवान् की निःश्चल भक्ति पाकर भगवत्स्वरूप हो जाते हैं ।[111]

इसके अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्णजन्म खण्ड के 35वें अध्याय में मात्र एक बार गङ्गा का नाम आया है लेकिन वह इसलिये महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें कहा गया है कि गङ्गा में स्नान कर ब्रह्मा के सभी पाप धुल गये और वे निष्पाप और निर्मल हो गये ।[112]

13- देवीभागवत पुराण में गङ्गा -

जैसा कि हम पुराणों वाले अध्याय में देख चुके हैं श्रीमद्देवीभागवत की गणना उपपुराणों में की जाती है । इसमें श्रीमद्भागवत की तरह ही कुल बारह स्कन्ध तथा अठ्ठारह हजार श्लोक हैं । इसमें गङ्गा की कथा दूसरे स्कन्ध में तथा 9वें स्कन्ध में आती है ।

दूसरे स्कन्ध में राजा महाभिष और गङ्गा को ब्रह्मा जी के शाप की कथा आती है जो इस प्रकार है — ऋषिगण सूत जी से प्रश्न करते हैं- राजा शान्तनु की पहली स्त्री कौन थी जिससे बुद्धिमान् भीष्म जी का जन्म हुआ था तथा भीष्म जी वसु के अंश क्यों कहे जाते हैं ? इस पर सूतजी कहते हैं - इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न महाभिष नामक राजा विख्यात हो चुके हैं । वे बड़े सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती नरेश थे । एक समय की बात है राजा महाभिष ब्रह्माजी के भवन पर गये थे । प्रजापति ब्रह्माजी की सेवा में सभी देवता वहाँ पधारे थे । लोकपितामह की सेवा में महानदी गङ्गा भी वहाँ उपस्थित थीं । अचानक बड़े वेग से हवा चली और गङ्गाजी का वस्त्र उनके अंगों से खिसक गया । सभी उपस्थित देवताओं ने अपनी दृष्टि नीचे कर ली किन्तु महाराज महाभिष निर्भीकतापूर्वक उधर ताकते रहे । बुद्धिमती गङ्गाजी भी उन नरेश की ओर देखती रहीं।

दोनों प्रेमपाश में बँध चुके थे । उन्हें देखकर ब्रह्माजी को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया - राजन ! तुम मर्त्यलोक में जाकर जन्म लो । ब्रह्माजी ने गङ्गाजी को भी शाप दिया । अब वे दोनों उदास होकर ब्रह्माजी के पास से चल पड़े । महाराज महाभिष ने पृथ्वी पर पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र के रूप में जन्म लेने का निश्चय किया ।

इसी समय आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वसिष्ठ जी के आश्रम पर आये थे । उन वंसुओं में द्यौ नामक एक प्रधान वसु था । उसने अपनी स्त्री के उकसाने पर वसिष्ठ की गौ नन्दिनी को चुरा लिया था । उस कार्य में पृथु आदि अन्य वसुओं ने भी सहायता की थी । गौ के अपहृत हो जाने पर जब वसिष्ठ मुनि ने ध्यान करके देखा तो वे जान गये कि नन्दिनी की चोरी वसुओं ने की है । तब उन्होंने वसुओं को शाप दिया कि उन्हें मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ेगा । अपने को शापित जानकर सभी वसु वसिष्ठ ऋषि के पास गये तथा उन्हें प्रसन्न करनें के लिये उनकी शरण ग्रहण की । तब वसिष्ठ जी ने उन वसुओं पर कृपा करते हुये कहा कि तुम सब एक वर्ष बाद शाप से छूट जाओगे पर जिसने मेरी प्यारी नन्दिनी का अपहरण किया है उसे लम्बे समय तक मानव योनि में रहना पड़ेगा ।

शापित हो जाने के बाद वसुओं ने देखा कि नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी रास्ते में जा रही थीं । शाप के कारण गङ्गाजी का मन भी अत्यन्त उदास था । वसुओं ने उनसे नम्रता पूर्वक कहा - 'देवी ! हम सभी अमृतभोजी देवता मर्त्यलोक में कैसे उत्पन्न होंगे ? हमें मनुष्यों के उदर में जन्म लेना पड़े यह तो बड़ी चिन्ता की बात है । अतएव सरिताओं में सुप्रसिद्ध गङ्गाजी ! आप ही मनुष्य होकर हमारी जननी बनने की कृपा करें । कल्याणी ! शान्तनु नाम से प्रसिद्ध जो राजर्षि हैं, उन्हें आप पतिदेव बना लें फिर हमें उत्पन्न होते ही आप जल में फेंक दीजियेगा । गङ्गाजी ने स्वीकृति दे दी ।

उसी समय राजा महाभिष प्रतीप के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुये । उनका नाम शान्तनु रखा गया । उन्हें राजर्षि की उपाधि मिली । एक बार राजा प्रतीप जब नदी के किनारे सूर्य स्तवन करते हुये बैठे थे तब एक सुन्दर कन्या नदी से निकलकर उनकी दाहिनी जँघा पर बैठ गयी। तब राजा प्रतीप ने उस कन्या से जो स्वयं गङ्गा ही थी कहा कि दाहिनी जँघा पुत्री एवं वधू का स्थान होता है । अतः मैं तुम्हें अपनी पुत्रवधू स्वीकार करता हूँ । राजा ने यह सब वृतान्त अपने पुत्र शान्तनु को बता दिया तथा कहा कि यदि उन्हें कोई स्त्री मिले और इस वृतान्त को सुनाये तो तुम उससे विवाह कर लेना । मेरी आज्ञा मानकर उससे उसका परिचय मत पूछना ।

इस प्रकार राजा प्रतीप पुत्र को आज्ञा देकर प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य शान्तनु को सौंप कर वन में चले गये । राजा शान्तनु एक बार शिकार खेलने गये । वे गङ्गा के तट पर घने जंगल में घूम रहे थे । वहीं सुन्दर आभूषणों से लदी एक सुन्दर युवती दिखाई दी जो स्वयं गङ्गाजी ही थीं । गङ्गा उन्हें देखते ही जान गयीं कि यही राजा महाभिष हैं। शान्तनु ने गङ्गा के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रख दिया । गङ्गा ने कुछ शर्तों पर उनके विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुये कहा - 'राजन ! आप यदि वचनबद्ध हो जायँ तो मैं आपको पति बना सकती हूँ । राजन ! मैं जो कुछ भी कार्य करुँ वह अच्छा हो अथवा बुरा उसे रोकने के आप अनधिकारी होंगे । मुझसे अप्रियवचन कभी नहीं कहेंगे । राजेन्द्र आप श्रेष्ठ हैं फिर भी जिस समय आप मेरी बात ठुकरा देंगे उसी समय मैं आपको छोड़कर चाहे जहाँ चली जाऊँगी ।' राजा शान्तनु ने गङ्गाजी की शर्तों को स्वीकार कर लिया और गङ्गाजी शान्तनु की पत्नी बन गयीं ।

समय पाकर उनके प्रथम पुत्र के रूप में वसु की उत्पत्ति हुयी । पैदा होते ही गङ्गाजी ने उस पुत्र को गङ्गाजल में फेंक दिया । इसी तरह

दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें पुत्रों को भी पैदा होते ही गङ्गाजी उन्हें गङ्गाजल में फेंकती रहीं । तदनन्तर गङ्गा के गर्भ से आठवाँ द्यौ नामक वसु उत्पन्न हुआ । तब प्रारब्ध बस राजा ने उस पुत्र को गङ्गा को देने से अस्वीकार कर दिया । इस पर गङ्गाजी ने कहा - 'राजन् ! इस बालक को तो जिंदा रखने की मेरी भी इच्छा है पर आपने अपना दिया वचन तोड़ दिया । अतः मैं यहाँ नहीं रह सकूगीं ।' इसके बाद गङ्गा ने अपने सात पुत्रों को जन्म लेते ही मार देने का कारण बताते हुये वशिष्ठ द्वारा वसुओं को दिये गये शाप तथा अपने ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर आने का सभी वृत्तान्त बता दिया । उसके बाद गङ्गाजी ने कहा - 'महाराज ! यह वसु कुछ समय तक आपका पुत्र बनकर रहेगा । गाङ्गेय नाम से विख्यात यह बालक सबसे बलवान होगा । आज तो मैं इसे वहीं ले जाती हूँ जहाँ आपको अपना पति बनाया था । पालन-पोषण करने पर जब यह बड़ा हो जायेगा तब लौटा दूँगी । क्योंकि राजन् ! माता के न रहने पर बच्चे का जीना और सुखी रहना बहुत कठिन है ।

इस प्रकार कहकर तथा बच्चे को साथ लेकर गङ्गाजी अन्तर्धान हो गयीं । कुछ समय व्यतीत होने के बाद एक बार राजा शान्तनु शिकार खेलने गये । गङ्गा के तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि गङ्गा में बहुत कम जल रह गया है । यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । वहीं उन्हें एक कुमार दिखायी पड़ा जो गङ्गा के तट पर खेलने में लगा था । वह अपने विशाल धनुष पर बाण चढ़ाकर गङ्गा की धारा में छोड़ता जाता था जिससे गङ्गा का जल अवरुद्ध हो गया था । शान्तनु के देखते ही वह बालक अन्तर्धान हो गया । शान्तनु यह सोचकर घबरा उठे कि कहीं यह बालक मेरा पुत्र तो नहीं था । उसी समय सर्वांगसुन्दरी गङ्गाजी प्रकट हुयीं और उन्हें वह बालक जिसका नाम गाङ्गेय था राजा शान्तनु को सौंपती हुयीं बोलीं - 'राजेन्द्र यह तुम्हारा पुत्र है । मैंने इसकी रक्षा अब तक की । यह आठवाँ वसु है । मैं इसे अब आपको सौंप रही हूँ । यह

महान् तपस्वी बालक गाङ्गेय नाम से विख्यात होगा ।'

इस प्रकार कहकर गङ्गा ने वह बालक राजा को सौंप दिया और वे स्वयं अन्तर्धान हो गयीं । सूतजी कहते हैं - 'मुनियों भीष्म जी के जन्म और गङ्गा की उत्पत्ति में जो कुछ कारण थे वे मैंने तुम्हें सभी बता दिये । वसुओं के शापित होने से ही यह घटना घटी । गङ्गा के अवतरण तथा वसुओं की उत्पत्ति के इस पावन प्रसंग को जो मनुष्य सुनता है, वह अखिल पापों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है ।[113]

उक्त प्रसंग के अतिरिक्त देवीभागवत के 9वें स्कन्ध के 11वें अध्याय में गङ्गा की उत्पत्ति का विस्तृत प्रसंग दिया गया है । तदनुसार नारदजी भगवान् नारायण से कहते हैं - प्रभो ! सुरेश्वरी विष्णुस्वरूपा एवं स्वयं विष्णुपदी नाम से विख्यात गङ्गा सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में किस प्रकार और किस युग में पधारीं ? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणा से उन्हें वहाँ जाना पड़ा ? पाप का उच्छेद करने वाला यह पुण्य एवं पवित्र प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ । भगवान् नारायण कहते हैं - नारद ! श्रीमान् सगर एक सूर्यवंशी सम्राट् हो चुके हैं । उनकी दो पत्नियाँ थी - वैदर्भी और शैव्या । उनकी पत्नी शैव्या से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम असमंजस पड़ा । दूसरी पत्नी वैदर्भी ने पुत्र की कामना से भगवान् शंकर की आराधना की । शंकर के वरदान से उसे भी गर्भ रह गया । पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसके गर्भ से एक मांसपिण्ड की उत्पत्ति हुयी। तब उसने भगवान् शिव का ध्यान किया । भगवान् शंकर ब्राह्मण के वेश में उसके पास पधारे और उस मांसपिण्ड को साठ हजार भागों में बाँट दिया। वे सभी टुकड़े पुत्ररूप में परिणत हो गये । उनके बल पराक्रम की सीमा न रही, परन्तु वे सभी कुमार कपिलमुनि के शाप से भस्म हो गये । इस घटना से दुःखी होकर महाराज सगर जंगल में चले गये तब उनके पुत्र असमंजस ने तपस्या आरम्भ कर दी । वे बहुत काल तक तपस्या करते रहे पर असफल रहते हुये कालकवलित हुये।

असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान था । गङ्गा को लाने के लिये लम्बे काल तक तपस्या करते हुये वे भी असफल होकर मृत्यु को प्राप्त हुये।''

अंशुमान के पुत्र थे भगीरथ । गङ्गा को ले आने का निश्चय कर उन्होंने बहुत काल तक तपस्या की । अंत में भगवान् श्रीकृष्ण के उन्हें साक्षात् दर्शन हुये । भगीरथ ने भगवान् को प्रणाम कर उनकी स्तुति की तथा उनसे अभीष्ट वर प्राप्त किया ।

भगवान् श्रीहरि ने गङ्गाजी से कहा - सुरेश्वरी ! तुम सरस्वती के शाप से अभी भारतवर्ष में जाओ और मेरी आज्ञा के अनुसार सगर के सभी पुत्रों को पवित्र करो । तुमसे स्थापित वायु का संयोग पाकर ही वे सभी राजकुमार मेरे धाम को चले जायेंगे । श्रुति में कहा गया है कि भारतवर्ष में मनुष्यों द्वारा उपर्जित करोड़ों जन्मों के पाप गङ्गाजी की वायु के स्पर्श मात्र से नष्ट हो जाते हैं । स्पर्श और दर्शन की अपेक्षा गङ्गाजी में मौसल स्नान करने से दस गुना पुण्य होता है । सामान्य दिनों में भी स्नान करने से मनुष्यों के अनेकों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । पर्वों तथा विशेष पुण्य तिथियों पर स्नान करने का विशेष फल कहा गया है। सामान्यतः गङ्गा में स्नान करने की अपेक्षा चन्द्रग्रहण के अवसर पर स्नान करने से करोड़ों गुना अधिक पुण्य कहा गया है । सूर्य ग्रहण में इससे दस गुना समझना चाहिये । इससे सौ गुना पुण्य अर्घोदय के समय स्नान करने से मिलता है ।

भगवान् के आदेश पर गङ्गा ने अत्यन्त नम्र होकर उनसे कहा - नाथ ! सरस्वती का शाप पहले से ही मेरे सिर पर है, आप आज्ञा दे ही रहे हैं, भगीरथ की एतदर्थ तपस्या भी हो रही है । अतः मैं अभी भारतवर्ष में जा रही हूँ । परन्तु प्रभो ! वहाँ जाने पर अनेकों पापीजन अपने पाप मुझ पर लाद देंगे । ऐसी स्थिति में मेरे ऊपर आये हुये वे पाप कैसे नष्ट होंगे ? देवेश ! मुझे भारतवर्ष में कितने वर्षों तक रहना पड़ेगा ? इस पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा - गङ्गे ! तुम नदी रूप में

भारतवर्ष में पधारोगी और मेरे ही अंशस्वरूप समुद्र तुम्हारे पति होंगे। भारतवर्ष में सरस्वती आदि जितनी नदियाँ हैं उन सबमें समुद्र के लिये तुम ही सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी। देवेशी ! कलियुग में पाँच हजार वर्षों तक तुम्हें सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में रहना है। जो तुम्हारी स्तुति और तुम्हें प्रणाम करेगा उसको अश्वमेध यज्ञ का फल सुलभता से प्राप्त होगा। चाहे सैकड़ों योजन की दूरी पर क्यों न हो, किन्तु जो गङ्गा-गङ्गा इस नाम का उच्चारण करके स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर विष्णुलोक चला जाता है। हजारों पापी व्यक्तियों के स्नान करने पर जो तुम पर पाप आ जायेंगे भगवती जगदम्बा के भक्तों के स्पर्श मात्र से ही उनकी सत्ता नष्ट हो जायेगी। मृत व्यक्ति का शव बड़े-बड़े पुण्य के प्रभाव से ही तुम्हारे अन्दर आ सकता है। जितने दिनों तक उसकी एक-एक हड्डी तुम्हारे अन्दर रहती है उतने समय तक वह वैकुण्ठ में वास करता है। यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे जल का स्पर्श करके प्राण त्याग करता है तो वह मेरी कृपा से सालोक्य पद का अधिकारी होता है अथवा कोई कहीं भी मरे यदि मरते समय जिस किसी प्रकार से भी तुम्हारे नाम का स्मरण हो जाता है तो उसे मैं सालोक्य पद प्रदान करता हूँ। ब्रह्मा की आयुपर्यन्त वह वहाँ रह सकता है। कोई तीर्थ में मरे या अतीर्थ में तुम्हारे स्मरण के प्रभाव से सालोक्यपद का अधिकारी वह पुरुष ऐसा शक्तिशाली बन जाता है कि वह त्रिलोकी को भी पवित्र कर सकता है।

भगवान् के इस सम्बोधन के बाद गङ्गा और भगीरथ की अभीष्ट स्थान की ओर यात्रा आरम्भ हो गयी तथा भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

इसके बाद नारद जी पूछते हैं वेदज्ञों में प्रमुख प्रभो ! किस ध्यान स्तोत्र से तथा किस पूजाक्रम से राजा भगीरथ ने गङ्गा की पूजा की ? यह मुझे स्पष्ट बताने कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं - नारद ! राजा भगीरथ शुद्ध होकर प्रथम छः देवताओं गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा की पूजा की । अब वे गङ्गा का पूजन करने के अधिकारी बन गये। इसके बाद इन देवताओं की पूजा का क्या फल होता है इसको बताते हुये पुराणकार बताते हैं कि विघ्न दूर करने के लिये गणेश की, आरोग्यता के लिये सूर्य की, पवित्रता के लिये अग्नि की, लक्ष्मी प्राप्ति के लिये विष्णु की, ज्ञान के लिये ज्ञानेश्वर शिव की तथा मुक्ति पाने के लिये भगवती शिवा की पूजा करना आवश्यक है । विद्वान् पुरुष को इन देवताओं की पूजा सम्पन्न कर लेने पर ही अन्य किसी पूजा में सफलता प्राप्त होती है ।[114]

देवीभागवत के 9वें स्कन्ध के बारहवें अध्याय में गङ्गा के ध्यान और स्तवन का वर्णन है तथा राधा और श्रीकृष्ण के विग्रह से ही गङ्गा का प्रार्दुभाव दिखाया गया है । गङ्गा के ध्यान की विधि बताते हुये भगवान् नारायण कहते हैं - नारद ! यह ध्यान सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देता है । गङ्गा का वर्ण श्वेतकमल के समान स्वच्छ है । ये समस्त पापों का उच्छेद कर देती हैं । परब्रह्म पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह से इनका प्राकट्य हुआ है । चिन्मय वस्त्र गङ्गा की शोभा बढ़ाते रहते हैं । इन्होंने सैकड़ों चन्द्रमाओं की स्वच्छ प्रतिभा को अपने में स्थान दे रखा है । इनके तारुण्य में कभी शिथिलता नहीं आती है । मालती पुष्पों की माला इनकी शोभा बढ़ाती हैं । गङ्गाजी के ललाट पर अर्धचन्द्राकार चन्दन लगा रहता है और उस पर सिंदूर की बिन्दी होती है । इनका पावन चरण मुमुक्षु जनों को मुक्ति देने में तथा कामी पुरुषों की कामना पूर्ण करने में अत्यन्त कुशल है । नारायणजी कहते हैं कि इन परम साध्वी गङ्गादेवी की इसी ध्यान से उपासना करते हैं । इसके बाद नारदजी की प्रार्थना पर भगवान् नारायण उन्हें गङ्गाजी का पापहारी एवं अत्यन्त पुण्यप्रद स्रोत सुनाते हैं जो निम्नवत है —

नारद उवाच -

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ।
विष्णोर्विष्णुपदीस्त्रोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥

नारदजी कहते हैं- देवेश ! लक्ष्मीकान्त ! जगत्पते ! अब मैं भगवान् विष्णु की चिरसंगिनी भगवती गङ्गा का पापहारी एवं पुण्यप्रद स्तोत्र सुनना चाहता हूँ ।

श्रीनारायण उवाच -

शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥
शिवसंगीतसम्मुग्धश्रीकृष्णांगसमुद्भवाम् ।
राधांगद्रवसंयुक्तां तां गङ्गा प्रणमाम्यहम् ॥
यज्जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले ।
संनिधाने शंकरस्य तां गङ्गा प्रणमाम्यहम् ॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे ।
कीर्तिकीपूर्णिमायां च तां गंगा प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थ - जो गङ्गाजी भगवान् शंकर का संगीत सुनकर परम मुग्ध हुये श्रीकृष्ण के अंग से प्रकट हुयी हैं तथा जो श्रीराधा के अंगद्रव से सम्पन्न हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । सृष्टि के आरम्भ होने के अवसर पर गोलोक के रास मण्डल में जिनका आविर्भाव हुआ है, जो शंकर संन्निधान में विराजती हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । कार्तिकी पूर्णिमा के शुभ अवसर पर राधा महोत्सव मनाया जा रहा था । अनेक गोप और गोपियाँ विराजमान थीं । उस समाज में शोभा पाने वाली भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः ।
समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ।
समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥

त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः।
आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः ।
आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थ - जो करोड़ योजन विस्तृत और लाख योजन चौड़ी हैं तथा जिनसे गोलोक भली-भाँति आच्छादित हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । जो साठ लाख चौड़ी और इससे चौगुने वैकुण्ठ में विराजती हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । जो तीस लाख योजन चौड़ी और इससे पाँच गुने विस्तार से ब्रह्मलोक में फैली हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । तीस लाख योजन चौड़ी और इससे चौगुनी लम्बाई में होकर जो शिवलोक की शोभा बढ़ाती हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः ।
आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ।
आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
षष्टिसहस्त्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ।
आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
लक्ष्ययोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ।
आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।

अर्थ - जो लाख योजन लम्बी और सात गुनी चौड़ी होकर ध्रुवलोक में छायी है, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । चन्द्रलोक में लाख योजन विस्तृत और पंचगुने दैर्घ्य से फैले रहने वाली देवी गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । साठ हजार योजन की दूरी और उससे दसगुनी चौड़ी होकर जो सूर्यलोक में आवृत हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । जिनकी लम्बाई लाख योजन तथा चौड़ाई उससे

दसगुनी है । यों जो तपलोक में आवृत हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

सहस्त्रयोजानायामा दैर्घ्ये दशगुणाततः ।
आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ।
आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
सहस्त्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः।
आवृता या च कैलासे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दसगुणा ततः।
मन्दाकिनी ऐन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।

अर्थ - एक हजार योजन विस्तृत तथा दसगुना दीर्घरूप बनाकर जनलोक में फैली रहने वाली भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । दस-लाख योजन लम्बी और उससे पंचगुनी चौड़ी होकर महर्लोक में आवृत भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । कैलास में एक हजार योजन विस्तृत तथा सौ योजन चौड़ी होकर फैली हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । जो सौ योजन लम्बी और दस योजन चौड़ी होकर मंदाकिनी नाम से चन्द्रलोक में शोभा पाती हैं उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

पाताले भोगवती चैव विस्तीर्णा दशयोजना ।
ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् ।
क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसंनिभा ।
द्वापरे चन्द्रनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले ।
स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थ - जो दस योजन विस्तार तथा अपने कलेवर से दसगुनी चौड़ी होकर पाताल लोक में भोगावती के नाम से प्रसिद्ध है, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । एक कोस विस्तृत तथा कहीं-कहीं इससे भी कम होकर अलकनन्दा नाम से जो पृथ्वी पर विराजमान हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ । जो सतयुग में दूध के समान, त्रेतायुग में चन्द्रमा के समान, द्वापर में चन्दन के समान तथा कलियुग में जल के समान होकर पृथ्वी पर अन्यत्र जहाँ-कहीं भी विराजती हैं तथा स्वर्ग में जो निरंतर दूध की आभा वाली रहती हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।

यत्तोयकणिका स्पर्शे पापीनां ज्ञानसंभवः ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥
इत्येवं कथिता ब्रह्मन् गंगा पद्यैकविंशतिः ।
स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ॥
नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या सम्पूज्य च सुरेश्वरीम् ।
सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् ।
रोगात् प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

अर्थ - जिनके जल कण का स्पर्श होते ही पापियों के हृदय में ज्ञान प्रकट होकर अनेक जन्मों के उपार्जित ब्रह्महत्यादि पापों को भस्म कर देता है, उन भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ । बह्मन् ! इस प्रकार इक्कीस पदों में गङ्गा की स्तुति कही गयी है । इस स्तोत्र के पाठ करने से पाप नष्ट हो जाते हैं । यह पुण्य का उद्गम स्थान है । जो नित्यप्रति सुरेश्वरी गङ्गा की भक्तिभाव के साथ पूजा करके यह स्तोत्र पढ़ता है वह निसन्देह अश्वमेध यज्ञ के फल का नित्य अधिकारी हो जाता है । इस स्तोत्र के प्रभाव से संतानहीन पुत्रवान हो जाता है, स्त्रीहीन को स्त्री मिल जाती है, रोगी व्याधि से छूट जाता है, तथा बन्धन में पड़े हुये व्यक्ति

के समस्त बन्धन कट जाते हैं । यह बिल्कुल निश्चित है ।

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम् ॥
शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः ।
जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ।
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना ।

- पद्मपुराण 9/12/16-43

अर्थ - इतना ही नहीं किन्तु छिपी हुयी कीर्ति वालों का जगत् में उत्तम यश फैल जाता है तथा मूर्ख के हृदय में विचारने की श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है । जो प्रातःकाल उठकर इस पवित्र गङ्गा स्तोत्र का पाठ करता है, उस पर बुरे स्वप्न अपना अनिष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते । साथ ही वो गङ्गा में स्नान के फल का भागी हो जाता है ।[115]

इस स्तोत्र को सुनने के बाद ब्रह्मवैवर्त पुराण की तरह ही यहाँ भी नारद भगवान् नारायण से गङ्गा की उत्पत्ति का प्रसंग पूछते हैं तथा कलि के पाँच हजार वर्ष बीत जाने पर गङ्गा कहाँ जायेंगी ? यह जिज्ञासा प्रकट करते हैं । प्रत्युत्तर में श्रीनारायण जी ब्रह्मवैवर्त के उपाख्यान की कथा को एक बार फिर देवीभागवत में दुहराते हैं । कथा बिल्कुल एक जैसी ही है । इसे पाठकगण इसी प्रकरण को ब्रह्मवैवर्त में देख लें । वैसे देवीभागवत में यह प्रकरण नवें सर्ग के अध्याय 12, 13 और 14 में विस्तार से दिया गया है । इसमें भी ब्रह्मवैंवर्त की तरह ही गङ्गा के प्रति सरस्वती का डाह एवं शाप आदि की कथा है तथा तुलसी, लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती, श्रीविष्णु भगवान् की इन चारों पत्नियों का विवरण है । श्रीगङ्गाजी का श्रीराधाजी और श्रीकृष्णजी के अंगो से प्रादुर्भाव, श्रीराधाजी का गङ्गाजी पर रोष, श्रीकृष्ण के प्रति राधाजी का उपालंभ, श्रीराधा के भय से गङ्गाजी का श्रीकृष्ण के चरणों में छिप जाना, जलाभाव से पीड़ित

देवताओं का गोलोक में जाना, ब्रह्माजी की स्तुति से श्रीराधा जी का प्रसन्न होना तथा गङ्गा का प्रकट होना, देवताओं के प्रति श्रीकृष्णजी का आदेश तथा गङ्गाजी का लक्ष्मी, सरस्वती और श्रीतुलसीजी के साथ श्रीविष्णुजी की पत्नी होने का प्रसंग है ।[116]

14- ब्रह्मपुराण में गङ्गा -

अट्ठारह पुराणों में प्रथम ब्रह्मपुराण ही माना जाता है । विष्णुपुराण में यह बात पराशरजी स्वयं मैत्रेय से कहते हैं —

चतुष्टयेनाव्ययेन संहितानामिदं मुने ।
आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ॥

ब्रह्मपुराण के दो भाग हैं - पूर्वभाग और उत्तरभाग । दोनों भागों को मिलाकर इसमें कुल 246 अध्याय हैं । इसमे 8वें, 71वें, 73वें, 74वें, 75वें, 76वें, 77वें, 78वें, 105वें, 107वें, 119वें, 172वें, 174वें, और 175वें अध्यायों में किसी न किसी रूप में कमोबेश गङ्गा का प्रकरण आया है या उनके नाम का उल्लेख है । सर्वप्रथम आठवें अध्याय में सूर्यवंश वर्णन में गङ्गा की उत्पत्ति का उल्लेख मात्र होता है जो इसके सातवें अध्याय को मिलाकर निम्नवत हैं-

लोमहर्षण जी इला से सूर्यवंश का वर्णन करते हुये कहते हैं कि महाराज मनु के अपने ही समान - इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्राशु, रिष्ट, करुष और वृषघ्न ये नौ पुत्र हुये । उनके मित्रावरुण के यज्ञ से इला नाम की पुत्री भी हुयी । चन्द्रमा के पुत्र बुद्ध और इला से पुरुरवा की उत्पत्ति हुयी । इसके बाद इला सुद्युम्न बन गयी। सुद्युम्न के तीन पुत्र हुये - उत्कल, गय, विनताश्व । मनु ने पृथ्वी को दस भागों में बाटकर अपने पुत्रों को दे दिया । इक्ष्वाकु को मध्य भाग मिला । नाभाग के अम्बरीष नामक पुत्र हुआ । इसी इक्ष्वाकु वंश में आगे चलकर युवनाश्व के मान्धाता हुये । मान्धाता के दो पुत्र हुये पुरुकुत्स और मुचुकुन्द । पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु नामक राजा था । उसे संभूत

नामक पुत्र हुआ । संभूत के त्रिधन्वा, त्रिधन्वा के त्रयारुण और त्रयारुण के सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ । यहाँ तक ब्रह्मपुराण का सातवाँ अध्याय पूरा हुआ । अब आठवें अध्याय में आगे की वंशावली चलती है, जिसके अनुसार यही सत्यव्रत आगे चलकर त्रिशंकु कहलाया । इसने कुल तीन शंकु अर्थात् निषिद्ध कर्म किये थे जिसके कारण इसे वशिष्ठ जी ने त्रिशंकु नाम से अभिशप्त किया था । इन तीन पापों में एक पाप यह भी था कि इसने वसिष्ठ की गाय चुराकर उसकी हत्या कर दी थी तथा उसका मांस विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिला दिया और स्वयं भी खा लिया था । त्रिशंकु के पुत्र हुये हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र के रोहित, रोहित के हरित और हरित के पुत्र हुये चंचु । चंचु के विजय और विजय के पुत्र हुये रूरुक । रूरुक के वृक्क और वृक्क से बाहु की उत्पत्ति हुयी । बाहु के राज्य पर आक्रमण करके हैहयों और तालजंघ नामक गणों ने उनका राज्य छीन लिया । तब उनकी गर्भवंती पत्नी अपने पति के साथ और्व ऋषि के आश्रम पर आकर शरण ली । वहीं उनके सगर नामक विष के साथ एक पुत्र उत्पन्न हुआ । और्व के आश्रम में भृगुवंशी ने उसका पालन-पोषण किया । सगर को भृगुवंशी से आग्नेय अस्त्र प्राप्त हुआ । सगर ने तालजंघ और हैहयों को मारकर पृथ्वी को जीतकर शक, पहलव, पारद आदि क्षत्रियों को धर्मच्युत कर दिया ।

लोमहर्षण जी से इतनी कथा सुनकर मुनियों ने उनसे पूछा कि विष के साथ सगर की उत्पत्ति कैसे हुयी ? लोमहर्षण जी ने कहा कि और्व के आश्रम पर शरण लिये हुये सगर के पिता बाहु की मृत्यु हो गयी । उनकी पत्नी गर्भणी थीं उसे सौत ने विष दे दिया पर उस विष का और्व ऋषि की कृपा से न तो यादवी (बाहु की यदुवंशी पत्नी) पर और न उसके गर्भ पर ही असर हुआ और मुनि के आश्रम पर विष के साथ ही सगर की उत्पत्ति हुयी ।

राजा सगर ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा

ले अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया । वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहृत होकर पृथ्वी में प्रविष्ट हो गया । तब राजा सगर ने अपने पुत्रों के द्वारा उस प्रदेश को खुदवाया । महासमुद्र को खोदते हुये वे पुत्र वहाँ पहुँचे जहाँ आदिपुरुष, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति संज्ञक विष्णु भगवान्, कपिलमुनि के रूप में शयन कर रहे थे । भगवान् कपिल के जगने पर उनकी आँखो के तेज से सगर के सब पुत्र दग्ध हो गये । केवल बर्हिर्केतु, सुकेतु, धर्मरथ और वीरपंचनद - ये चार पुत्र वंश बढ़ाने के लिये बच गये । सगर के नाम पर ही समुद्र का नाम सागर पड़ा और वह सगर का पुत्र कहलाया । इतना कहने के बाद लोमहर्षण जी मुनियों से कहते हैं कि सगर के साठ हजार पुत्र थे ऐसा उन्होंने सुना है । इस पर मुनियों ने सहज जिज्ञासा से ही पूछ लिया कि सगर के वीर, महाबली साठ हजार पुत्र कैसे उत्पन्न हुये ।

लोमहर्षण जी मुनियों को आगे की कथा सुनाते हुये कहते हैं, सगर की दो भार्यायें थीं - विदर्भ राजकुमारी उनमें ज्येष्ठ थीं । उनकी छोटी पत्नी अरिष्टनेमि की कन्या थी । और्व मुनि ने उन्हें वरदान दिया कि उनमें से एक को साठ हजार पुत्र होंगे तथा दूसरी को वंश चलाने वाला मात्र एक पुत्र उत्पन्न होगा । जिसे जो पसन्द हो वह माँग लो । तब उनमें से एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रों को और दूसरी ने वंश चलाने वाले एक ही पुत्र की याचना की । वंश को चलाने वाला वंशधरपुत्र पंचजन महातेजस्वी राजा हुआ । दूसरी स्त्री ने बीजों से भरी हुयी एक तुम्बी का प्रसव किया । उसमें से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ उत्पन्न हुये। यही सगर के वीर साठ हजार पुत्र थे ।

पंचजन का पुत्र अंशुमान अत्यन्त वीर था । उसके पुत्र का नाम था दिलीप जिसे षट्वांग भी कहते हैं । ब्रह्मपुराण के अनुसार षट्वांग स्वर्ग से मात्र दो घड़ी के लिये धरती पर आकर बुद्धि और सत्य से तीनों लोकों को जोड़ दिया । दिलीप के पुत्र हुये महाराज भगीरथ जिन्होंने

नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी को इस लोक में अवतरित किया और उसे पुत्री भाव से मानते हुये समुद्र में मिला दिया । इसीलिये इस वंश को समझने वाले लोग गङ्गा को भागीरथी कहते हैं ।[117]

ब्रह्मपुराण के अध्याय 71 में गङ्गा की उत्पत्ति की कथा आती है। इसमें ब्रह्मा-नारद संवाद के रूप में गङ्गा उत्पत्ति की कथा दी गयी है । नारदजी ब्रह्माजी से त्रिदैवत्य तीर्थ के विषय में प्रश्न करते हुये उनसे पूछते हैं कि उन्होंने त्रिदैवत्य तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ क्यों कहा है । वे त्रिदैवत्य तीर्थ के बारे में विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं । उनके प्रश्न का उत्तर देते हुये ब्रह्माजी कहते हैं - तब तक ही अन्य तीर्थों पुण्यक्षेत्रों और अन्य यज्ञों का महत्त्व है । जब तक कि त्रिदैवत्य का दर्शन नही होता है, मुनिश्रेष्ठ यह गङ्गानदी ही है जो सब नदियों में श्रेष्ठ है तथा सम्पूर्ण फल को देने वाली है त्रिदैवत्य है । फिर ब्रह्माजी गङ्गा की उत्पत्ति की कथा सुनाते हुये कहते हैं । आज से दस हजार वर्ष पूर्व एक देवकार्य उपस्थित हुआ । उस समय तारक नाम का एक असुर था जो मुझसे वर पाकर मदोन्मत्त हो गया था । फिर इसके बाद ब्रह्माजी नारदजी से शिव विवाह के लिये उपस्थित सम्पूर्ण प्रसंग सुनाते हैं, यथा - तारक असुर के अत्याचार से त्राण पाने के लिये देवताओं का ब्रह्माजी के परामर्श पर विष्णु भगवान् के पास जाना, भगवान् विष्णु का तारकासुर को मारने में अपनी असमर्थता जताते हुये शिव के शुक्र से उत्पन्न पुत्र के द्वारा ही उसे मारे जाने की बात बताना, देवताओं द्वारा भगवान् शिव की तपस्या भंग करने के लिये कामदेव को प्रायोजित करना, ऐसा करने के प्रयास में कामदेव का भस्म होना, पार्वतीजी का शिव की प्राप्ति के लिये तपस्या करना, फिर शिवजी के विवाह का वर्णन आदि । विवाह का वर्णन करते हुये ब्रह्माजी अपने पुत्र नारद से कहते हैं, विष्णु की प्रेरणा से शंभु ने पार्वती जी के दाहिने पैर के अंगूठे का पत्थर से स्पर्श करने के लिये हाथ से स्पर्श किया । पुत्र ! उस समय मैं शंकर के समीप हवन कर रहा था।

मैंने पार्वती को देख लिया । उनके अंगूठे को देखने से ही मेरे हृदय में काम भावना जागृत हो गयी और मेरा वीर्यपात हो गया । लज्जा से संकुचित होकर मैनें उस गिरे हुये वीर्य को चूर्ण कर दिया । उस बारीक किये हुये वीर्यचूर्ण से बालखिल्य पैदा हुये । यह देखकर देवताओं ने बड़ा हाहाकार मचाया तब लज्जा से आसन छोड़कर मैं बाहर चला गया। नारद इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते हुये मुझे देखकर सभी देवता मौन हो गये । किन्तु मुझको जाते हुये देखकर शंकरजी ने नंदी से कहा कि तुम ब्रह्मा को यहाँ बुला लाओ, मैं उसको निष्पाप करुँगा । संत मनुष्य अपराधी पर भी दया दिखलाते हैं । विषय वासनाओं की यही स्थिति है कि वे ज्ञानी को भी वशीभूत कर लेती हैं।"[118]

फिर ब्रह्मा को शुद्ध करने के लिये भगवान् शिव ने पृथ्वी और जल का सारभाग निकालकर पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें उस सारतत्त्व ज़ल को रख दिया । फिर पावमान्य आदि वैदिक मन्त्रों से उस जल को भली-भाँति अभिमंत्रित कर उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने वाली शक्ति का आह्वान किया । फिर भगवान् शंकर ने उस कमण्डलु को ब्रह्माजी को देते हुये कहा - इस कमण्डलु को लो । जलमात्र देवी हैं तथा पृथ्वी भी दूसरी माता है । इन दोनों में सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं । इनमे धर्म प्रतिष्ठित है । सनातन यज्ञ इनमें वर्तमान है । इनमें भुक्ति और मुक्ति है । स्थावर गङ्गा सभी इनमें ही रहते हैं । इस जल के स्मरण से मन के पाप, इसके विषय में चर्चा करने से वचन के पाप और इसमे स्नान, पान और अभिषेक करने से शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं । यही संसार में अमृत है । इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं है । मैने इसको अभिमंत्रित कर दिया है, तुम इस कमण्डलु को ग्रहण करो । ब्रह्मन् ! इस कमण्डलु में जो जल है वह पवित्र, पापनाशक और शुभदायक है । इसके स्पर्श, स्मरण और दर्शन से मनुष्य पापों से छूट जाता है ।[119]

इतना कहकर महादेव जी ने ब्रह्मा को वह कमण्डलु दे दिया । देवोत्सव के अवसर पर पार्वती जी के चरणों के अंगूठे को देखकर ब्रह्मा पाप से पतित हो गये परन्तु शंकर भगवान् इसका स्मरण करते हुये भी परमपवित्र गङ्गा को कमण्डलु में रखकर उनके कल्याणार्थ उन्हें सौंप दिया —

देवोत्सवे मातुरजः पदाग्रं समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप ।
प्रादात्कृपालुः स्मरणात्पवित्रां गङ्गां पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ।[120]

- ब्रह्मपुराण 71/36

इसी पुराण के 73वें अध्याय में नारदजी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि उनकी कमण्डलु में रहने वाली गङ्गा किस प्रकार मर्त्यलोक में पधारी, इसे वे विस्तार पूर्वक सुनायें । इस पर ब्रह्माजी वामन भगवान् के द्वारा बलि बन्धन की कथा सुनाते हैं । इसी प्रसंग में गङ्गा की उत्पत्ति का प्रकरण निम्नवत आता है —

ब्रह्माजी नारद से कहते हैं - नारद ! जब भगवान् अपने दूसरे बढ़े हुये चरण से ब्रह्माण्ड को नापने का प्रयत्न कर रहे थे, तो वह देवों से सुपूजित द्वितीय चरण मेरे लोक में आया । मैं अपने पिता के चरण को अपने घर में आया देखकर सोचने लगा कि मेरे घर आये इस चरण की क्या सेवा करूँ कि मेरा शुभ हो । इस विचार से मैं सब कुछ देखने लगा तब तक ध्यान में आया कि यह मेरा कमण्डलु ही इस कार्य के लिये श्रेष्ठ है । इसमें त्रिपुरारि शंकर का दिया हुआ वह जल है जो पावन, वर देने वाला, श्रेष्ठ, अनन्त शान्तिप्रद, शुभ, शुभ देने वाला, सर्वदा मुक्ति और भुक्ति देने वाला, माता के समान लोकपालक, अमृत, रोगनाशक, पवित्र, पूज्य, सर्वोत्तम और उत्तम गुणों से युक्त है । जिसके स्मरण मात्र से प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय में तो कहना ही क्या ? मैं आज इस पवित्र जल से पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ प्रदान करूँ, ऐसा सोचकर मैं उस जल को लेकर अर्घ देने को प्रस्तुत

हुआ—

तद्वारि यत्पुण्यतमं दत्तं च त्रिपुरारिणा ।
वरं वरेण्यं वरदं वरं शान्तिकरं परम् ॥
शुभं च शुभदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
मातृस्वरूपं लोकानामामृतं भेषजं शुचि ॥
पवित्रं पावनं पूज्यं ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम् ।
स्मरणादेव लोकानां किं नु दर्शनात् ध्रुवम् ॥
तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेऽर्घाय मे पितु ।
इति संचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम् ॥[121]

- ब्रह्मपुराण 73/60-63

ब्रह्माजी कहते हैं - जब मैंने मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घजल को विष्णु के चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेरु पर्वत पर गिरकर चार भागों में बहकर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पड़ा । जो जलधारा दक्षिण की ओर गिरी उसको हे मुने ! शंकर जी ने अपनी जटा में धारण कर लिया । पश्चिम की ओर गिरा जल मेरे कमण्डलु में आया । उत्तर दिशा में जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और पूर्व की ओर जो गिरा उस मंगलमय जल को ऋषि, देव, पितर और लोकपाल लोगों ने लिया । इस प्रकार विष्णु को अर्घ रूप में दिया गया वह जल और पवित्र हो गया । जो जल दक्षिण की दिशा में गया वह विष्णु के चरणों से निकला हुआ, लोकमाता और ब्रह्म सम्बन्धी है । जिसको पवित्र जानकर स्वयं महेश्वर ने अपनी जटा में स्थापित किया है और जिसका पर्व वेला में उदय हुआ है । इसीलिये ऐसे जल को स्मरण करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त करता है ।

विष्णोः पादे तु पतितमर्घवारि सुमन्त्रितम् ।
तद्वारि पतितं मेरौ चतुर्धां व्यगमद्भुवम् ॥

पुर्वे तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा ।
दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरौ मुने ॥
जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डुलम् ।
उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम् ॥
पूर्वेस्मिन्नृषयो देवा पितरो लोकपालकाः ।
जगृहुः शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते ॥
या दक्षिण दिशं प्राप्ता आपो वै लोकमातरः ।
विष्णु पादप्रसूतास्ता ब्रह्मण्या लोकमातरः ॥
महेश्वरजटासंस्थाः पर्वजातशुभोदयाः ।
तासां प्रभानस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥[122]

- ब्रह्मपुराण 73/64-69

ब्रह्मपुराण के अध्याय 74 में गङ्गा के दो भेदों का वर्णन आता है। नारदजी इस अध्याय में ब्रह्मा जी से निवेदन करते हैं कि उनमें कमण्डलु में रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा में आयी उसको तो उन्होंने सुन लिया । अब जिस प्रकार गङ्गा मर्त्यलोक में आयी वह कथा उन्हें सुनाने की कृपा की जाये । इस पर ब्रह्माजी बोले - महामते ! महेश्वर की जटा में रहने वाली जल देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे । इसलिये उसके दो भेद हो गये । एक अंश को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत, दान और समाधि से शंकर की पूजा कर पृथ्वी पर लाया यह लोक प्रसिद्ध है । महाभाग ! दूसरे अंश को बलवान भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शंकर को प्रसन्न करके ले आया । मुनिश्रेष्ठ इस प्रकार गङ्गा के दो भेद हो गये ।

नारद जी ने कहा - महेश्वर की जटा मे रहने वाली गङ्गा को किस कारण से गौतम और दूसरे अंश को किस कारण से क्षत्रिय भगीरथ लाये वह कारण बतलाइये ।

ब्रह्मा ने कहा - पूर्वकाल में जिस कारण ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय

गङ्गा को पृथ्वी पर लाये इन सब बातों को मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ । महामते ! जिस समय उमा शंकर की पत्नी हुईं उसी समय गङ्गा भी शंभु की प्रिय पत्नी हुईं । अत्यधिक रसिक एवं पत्नी भक्त होने के कारण शंकरजी की प्रीति गङ्गा में पार्वती जी से भी अधिक हो गयी । यह देखकर क्रोध में भरकर पार्वती जी ने शंकर जी से गङ्गा को अपनी जटा से हटा देने के लिये कहा । पर शिव जी ने ऐसा नहीं किया । तब पार्वती जी ने विनायक, स्कन्द और जया से कहा कि वे किसी तरह गङ्गा के बन्धन से शिवजी को मुक्त करायें । इसी बीच समस्त प्राणियों को त्रस्त करने वाला बारह वर्षों का अकाल पड़ गया। सारा स्थावर जंगमात्मक संसार विनष्टप्राय हो गया । केवल सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला गौतम का आश्रम ही उनके तप से विनष्ट होने से बचा रहा । गौतम का आश्रम पवित्र ब्रह्मगिरि पर्वत पर था ।

अनेकों आश्रमों के रहने वाले ऋषि, मुनि गौतम के आश्रम पर आने लगे । ऋषि ने भी उन आगन्तुकों की उनकी योग्यता एवं पात्रता के अनुसार किसी का शिष्य के समान, किसी का पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन-पोषण करने लगे । गौतम ऋषि की अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अति प्रसन्न हो गये । उनकी आज्ञा से लोक का भरण-पोषण करने वाली माता स्वरूप औषधियाँ थोड़ी ही देर में बढ़ जाती थी और पुनः कट भी जाती थी । इस प्रकार अतिथिसेवी गौतमऋषि को मनोवांछित वैभव प्राप्त हो जाते थे । इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमों में आये अतिथियों का पालन किया और इस प्रकार वहाँ मुनियों के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी ।

गौतम ऋषि की यह कीर्ति सुनकर गणेश जी ने अपनी माता, भाई और जया से कहा - स्वर्ग में गौतम का बड़ा गुणगान हो रहा है । सभी कह रहे हैं कि उन्होंने वह कार्य कर दिखाया जो देवताओं से भी नहीं

हो सकता था । इस प्रकार मैने ब्राह्मण गौतम के तपोबल को सुना है । वह विप्र निश्चय ही पिताजी की जटा में छिपी रहने वाली गङ्गा को वहाँ से निकाल देगा । इस विषय में ऐसा कोई उपाय होना चाहिये कि गौतम गङ्गा की याचना करें ।

ब्रह्माजी नारद से कह रहे हैं कि गणेश जी अपने भाई स्कन्द और जया के साथ गौतम के आश्रम पर जाकर रहने लगे । कुछ दिन वहाँ रहने के बाद एक दिन विघ्नराज ने वहाँ रहने वाले सभी मुनिगणों एवं ब्राह्मणों से कहा - 'हम लोग गौतम के अन्न खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं । अब हमें अपने-अपने घरों और पवित्र आश्रमों को लौट जाना चाहिये तथा इसके लिये हमें मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये ।' गणेश जी के इस परामर्श पर अमल करते हुये सभी मुनियों एवं ब्राह्मणों ने गौतम ऋषि से वापस लौटने की अनुमति माँगी । उन लोगों के इस प्रकार के प्रस्ताव सुनकर अतिथिप्रेमी गौतम ने उन सभी लोगों को विनती कर वापस जाने से रोक लिया ।

सभी मुनिगण और ब्राह्मणवृन्द जब गौतम के अनुरोध को टाल न सके तब उन सभी को एक तरह से भड़काते हुये गणेश जी ने कहा - क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमको घर जाने से रोक रहे हैं ? सीधे उपाय से तो हम लोग अपने-अपने घर जाने में समर्थ नहीं हैं और इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। अतः मैं चतुराई से एक नई युक्ति कर रहा हूँ । आप सब लोग इसमे मेरा सहयोग करें ।

ब्रह्माजी कहते हैं - हे नारद ! गणेश जी के प्रस्ताव को सुनकर सभी ब्राह्मणों ने कहा कि ठीक है ऐसा ही कीजिये । ब्राह्मणों को अपने पक्ष में करके तथा माता पार्वती से आज्ञा लेकर गणेश जी ने अपनी युक्ति का क्रियान्वयन किया । उन्होंने जया को गाय बनाकर गौतम ऋषि के आश्रम में खेतों में चरने के लिये खड़ा कर दिया और उसे

सिखा भी दिया कि जैसे ही गौतम तुम्हें निवारण करने का प्रयास करें उनके छूते ही तुम मरने का अभिनय करके गिर पड़ना । विघ्नराज की बात मानकर जया ने वैसा ही किया । वह आश्रम के खेतों में जाकर धान की फसल गौरूप धारणकर चरने लगी । गौतम ने चावल खाती हुयी उस गाय को देखा और मात्र एक तृण से ही उसका निवारण करने लगे कि तभी वह दुर्बल गौ करुणाजनक क्रन्दन कर गिर पड़ी । उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ । सभी ब्राह्मण दुःखी और नाराज होकर विघ्नराज के साथ गौतम के पास जाकर बोले - हम सभी यहाँ से जा रहे हैं । तुम्हारे आश्रम में अब रहना उचित नहीं । मुनिवर्य! तुमने पुत्र के समान हमलोगों का पालन किया है इसीलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं नारद ! मुनि गौतम उस समय उन ब्राह्मणों की बातें सुनकर और आश्रम से उनको जाते देखकर वज्राहत से हो गये और ब्राह्मणों के सामने ही पृथ्वी पर गिर पड़े । इस पर ब्राह्मणों ने उनसे कहा संसार को पवित्र करने वाली प्रिय इस रुद्रों की माता को जो धरती पर पड़ी हुयी है देखो । हम लोगों का यहाँ से चले जाना ही एक मात्र उचित उपाय है । अब तुम्हारे आश्रम में पूर्व की भाँति निवास करने से हमारा यह चिरसंचित व्रत नष्ट हो जायेगा ।

गौतम के द्वारा विनय करने पर तथा अपने पाप के प्रायश्चित का उपाय पूछने पर सभी मुनिगणों एवं ब्राह्मणों के प्रतिनिधिरूप गणेशजी ने कहा कि यदि गौतम जी शिवजी की जटा में वास कर रही गङ्गा को योगसाधना, तपस्या या नियमानुसार अनुष्ठान से यहाँ लायें और इस गौ पर उनका जल छिड़के तो सभी ब्राह्मण फिर से गौतम ऋषि के आश्रम पर रह सकते हैं । अपना कार्य सिद्ध कर सभी ब्राह्मणों के साथ गणेश जी स्कन्द और जया भी खुशी-खुशी गौतम के आश्रम से अपने धाम कैलाश को लौट आये । इधर गौतम जी ने भी मन स्वस्थ कर

प्रतिज्ञा की कि जगत् के स्वामी, वृषभध्वज, त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गङ्गा को अवश्य अपने आश्रम पर लायेंगे । इस प्रकार का मन में दृढ़ संकल्प कर वे ब्रह्मगिरि को छोड़कर देवों से पूजित कैलाश पर्वत पर गये जहाँ उग्रधनुष धारण करने वाले शंकर प्रियापार्वती के साथ रहते थे ।[123]

ब्रह्मपुराण के 75वें अध्याय में गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति का वर्णन है । इस स्तुति में एक बार गङ्गा का भी उल्लेख हुआ है । गौतमजी पार्वतीजी की स्तुति करते हुये कहते हैं ब्रह्मा से लेकर चराचर जीव की बुद्धि, नेत्र, चैतन्य, मन और सुख जिस लोकगुरु की स्मरणीय वागीश्वरी की प्रसन्नता और कृपा से फलयुक्त होते हैं, उस माता ने अन्य जन्तुओं की कौन कहे ब्रह्मा के भी मन को मलिन देखकर विविध उपायों से संसार को पवित्र करने के लिये गङ्गा को पृथ्वी पर अवतरित किया ।

ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य बुद्ध्यक्षिचैतन्यमनःसुखानि ।
यस्याः प्रसादात् फलवन्ति नित्यं, वागीश्वरी लोकगुरो सुरम्या ॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीनं, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
गङ्गाऽवतारं विविधैरूपायैः सर्वं जगत्पावयितुं चकार ॥20॥[124]

गौतम की स्तुति सुनकर उमा सहित भगवान् शंकर जी गणेश आदि गणों को साथ लिये हुये गौतम के सामने प्रकट हो गये और उनसे मनोवांछित वर माँगने के लिये कहा । इस पर गौतम जी बोले कि हे देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में रहने वाली कल्याणी गङ्गा को मुझे दे दीजिये । उन्होंने आगे कहा जगन्नाथ ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली, जटा में रहनेवाली, अपनी पुनीतप्रिया गङ्गा को ब्रह्मगिरि पर छोड़ दो । शंकर ! सब तीर्थों का स्वरूप यह गङ्गा जहाँ तक सागर में जाती हैं वहाँ तक अर्थात् उद्गम से संगम तक इसके जल में स्नान करने मात्र से मनुष्यों के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन, वचन

और शरीर से किये गये पाप विनष्ट हो जायें । अन्य पवित्र तीर्थों में चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय, अयन काल में तथा विसुव काल में, संक्राति और वैधृति योग में स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे पुण्य इसके स्मरण मात्र से मिल जाये । कृतयुग में तपस्या, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में यज्ञ और दान तथा कलियुग में केवल दान महत्त्वपूर्ण कहा गया है । इसी प्रकार युगधर्म तथा सब देशधर्म एवं देशकाल के संयोग से जो धर्म श्रेष्ठ माने गये हैं और अन्यत्र स्नान, दान, तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, हर ! वे सभी पुण्यफल इसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य को मिल जाये । जहाँ-जहाँ यह जाय और जब तक सागर मे न मिले, वहाँ-वहाँ आप अवश्य विराजमान रहें, यही मेरे लिये श्रेष्ठ वरदान होगा । शिव! दस योजन तक के भीतर रहने वाले या इस सीमा तक प्रवेश पा जाने वाले महापातकियों, स्नान के लिये आये हुये मनुष्यों और उसके पितरों के भी पाप इस गङ्गा में स्नान करने से नष्ट हो जाये और वे मृत्यु के बाद निश्चित रूप से मुक्ति के अधिकारी हो जाये । स्वर्ग, मर्त्य और रसातल के सभी तीर्थों में यह अद्वितीय हो । शम्भो ! बस यही इच्छा है । अब आपको मेरा नमस्कार है —

गौतम उवाच -

इमां देवीं जटासंस्थां पावनीं लोकपावनीम् ।
तवप्रियां जगन्नाथ उत्सृजद् ब्रह्मणो गिरौ ।
सर्वासां तीर्थभूतां तु यावद्गच्छति सागरम् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ।
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलयं यान्तु शंकर ।
चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ।
संक्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ।
श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञ कर्म च ।

द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ।
युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च ।
देशकालादिसंयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ।
यदन्यत्र कृतं पुण्यं स्नानदानादिसंयमैः ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ।
यत्र यत्र त्वियं याति यावत्सागरगामिनी ।
तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वरः ।
योजनानां तूपरितू दश यावच्च संख्यया ।
तदन्तरप्रविष्टानां महापातकिनामपि ।
तत्पितृणां च तेषां च स्नानायाऽऽगच्छतां शिव ।
स्नाने चाप्यन्तरे मृत्योर्मुक्तिभाजो भवन्तु वै ।
एकतः सर्वतीर्थानि स्वर्गमर्त्य रसातले ।
एष तुभ्यं विशिष्टं तु अलं शंभो नमोऽस्तु ते ।[125]

शिवजी ने तथास्तु कहकर तथा गौतमी के सर्वश्रेष्ठ तीर्थ होने का वरदान देकर अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर लोकपूजित भगवान् शंकर के चले जाने पर उनकी आज्ञा से पूर्ण मनोरथ और तपो बलशाली गौतम शिव की जटा में स्थित सरिता शिरोमणि गङ्गा को लेकर देवताओं के सहित ब्रह्मगिरि पर्वत पर आये ।

ब्रह्मपुराण के 76वें अध्याय में पन्द्रहरूप बनाकर स्वर्ग आदि में गङ्गा के गमन का वर्णन है । नारद जी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि महेश्वर की जटा से गङ्गा के ले आने के बाद गौतम ने उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया । इस पर ब्रह्माजी कहते हैं - पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर त्रिनेत्र शंकर का स्मरण करते हुये उन्होंने गङ्गा से कहा- त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होने वाली ! सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली माता ! आप अपराधों को क्षमा कीजिये । आप शान्तिपूर्वक सुख से जायें और हम लोगों का कल्याण करें । इस पर गङ्गा ने गौतम से

कहा - मैं देवलोक में जाऊँ या ब्रह्मा के कमण्डलु में अथवा रसातल जाऊँ । तुम सत्यवादी मानव हो इसलिये बतलाओ । इस पर गौतम ने कहा - तीनों लोकों पर उपकार के लिये मैंने शंभु से प्रार्थनापूर्वक आपको माँगा है । शंभु ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है । इसके विपरीत नहीं होना चाहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि ऐसी बात सुनकर गङ्गाजी स्वर्ग, मर्त्यलोक और रसातल में जाने के लिये अपने को तीन भागों में बाँटकर स्वर्ग में चार रूप से, मृत्युलोक में सात रूप से, और रसातल में चार रूप से प्रवेश किया । सब जगह सब रूप से सबके पापों का विनाश करने वाली तथा सबके मनोरथों को देने वाली उस गङ्गा का वेदों ने गान किया है ।

इस अध्याय के अंत में दक्षिण की गङ्गा, गोदावरी में भगवान् शिव, गौतम के पूछने पर उन्हें स्नान की विधि बतलाते हैं । तदनुसार पहले नान्दीमुखश्राद्ध कर उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये । दरिद्रों और साधुओं को वस्त्र और कम्बल प्रदान करना चाहिये । इस विधि से तीर्थ यात्रा करने पर पूर्णरूप से तीर्थ का फल मिलता है । इस अध्याय में कुल 22 श्लोक हैं ।

इस पुराण के 77वें अध्याय में गौतमी गङ्गा के महत्त्व का वर्णन है । इसमें कुल 15 श्लोक हैं । इस पुराण के अध्याय 78 से सगर का आख्यान आरम्भ होता है । इस अध्याय में कुल 77 श्लोक हैं । नारद जी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि हे प्रभो ! आपने उस एक ही गङ्गा के दो भेद कहे हैं । उसमें से एक अंश जिस प्रकार ब्रह्माण्ड द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया । अब दूसरा अंश जो कि शिव की जटा में ही रह गया था वह क्षत्रिय भगीरथ द्वारा किस प्रकार लाया गया उसे भी कहने की कृपा करें । नारद जी के निवेदन पर ब्रह्माजी इक्ष्वाकु वंशीय सगर से कथा का प्रारम्भ करते हुये कहते हैं कि इक्ष्वाकु वंश में सगर नाम

का एक अत्यन्त ही धार्मिक राजा हुआ । उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। सन्तानहीन होने के कारण वह सदा चिन्तित रहता था । गुरु वशिष्ठ से सन्तान प्राप्ति का उपाय पूछने पर उन्होंने कहा - राजन् ! तुम सर्वदा पत्नी सहित ऋषि पूजा करो । एक दिन राजा के घर एक तपस्वी आया। राजा ने उसकी विधिपूर्वक पूजा की । उसकी पूजा से प्रसन्न होकर ऋषि ने कहा महाराज ! वर माँगो । तब राजा ने पुत्रोत्पत्ति का वर माँगा । मुनि ने कहा - तुम्हारी एक स्त्री से वंश बढ़ाने वाला यशस्वी पुत्र होगा। दूसरी से साठ हजार लड़के उत्पन्न होंगे । कुछ काल बीतने पर मुनि की वाणी सत्य सिद्ध हुयी । राजा ने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये । एक अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र ने उसके घोड़े का अपहरण कर लिया । सगर के पुत्र घोड़े को ढूँढ कर हार गये किन्तु कहीं पता नहीं चला । इस बीच आकाशवाणी हुयी - सगर पुत्रों ! रसातल में घोड़ा बँधा हुआ है, दूसरी जगह नहीं है । ऐसी आकाशवाणी सुनकर वे सब रसातल जाने के लिये चारों तरफ से पृथ्वी को खोदने लगे और भूख मिटाने के लिये खोदी हुयी मिट्टी खाते हुये वे रसातल पहुँच गये । महाज्ञानी कपिलमुनि भी उस समय रसातल में ही सोये हुये थे । बहुत पहले उन्होंने देवताओं का एक उत्तम कार्य सिद्ध किया था । रात-दिन जगकर कठिन श्रम करने के कारण देवताओं ने उन्हें सोने के लिये रसातल लोक दे दिया । कपिल मुनि ने देवताओं से कहा कि जो मतिमन्द मुझे जगाये वह शीघ्र ही भस्म हो जाये । सगर के बलवान पुत्रों को देखकर डरे हुये रसातल लोक के राक्षस उनके वध का उपाय सोचते हुये इन्द्र के द्वारा चुराये हुये घोड़े को सोये हुये कपिल मुनि के सिरहाने बाँध दिया । सगर के पुत्र कपिल मुनि के पास अपने यज्ञ के घोड़े को देख उन्हें चोर समझ कर दुर्वचन कहते हुये पैरों से मारने लगे । इस पर महामुनि कपिल ने अत्यन्त क्रोध से उन सगर पुत्रों को देखा और उनके देखते ही वे सभी जलकर भस्म हो गये ।

राजा का दूसरा पुत्र असमंजस नाम का था । वह अपनी दुष्टता और अज्ञानता के कारण नगर के बालकों को जल में फेंक देता था । उसके दुष्ट कार्यों को जानकर राजा सगर ने उसे देश निकाला दे दिया। उसके बाद राजा सोचने लगे कि साठ हजार पुत्र तो कपिल मुनि के कोप से रसातल में भस्म हो गये । एक था वह भी चला गया अब हमें क्या करना चाहिये ? मेरे लिये कौन सा मार्ग बचा है ? अंशुमान नाम से प्रसिद्ध असमंजस का एक पुत्र था । राजा सगर ने उस बालक को बुलाकर यज्ञ का घोड़ा लाने का कार्यभार उसे सौंपा । बालक कपिल मुनि को प्रसन्न कर यज्ञ का घोड़ा लाकर उन्हें सौंप दिया । अंशुमान का पुत्र दिलीप और दिलीप के पुत्र हुये भगीरथ । अपने पितामह की गति सुनकर अत्यन्त दुःखित भगीरथ ने कपिल मुनि के पास जाकर अपने पूर्वजों के उद्धार का मार्ग पूछा । तब कपिल मुनि ने कहा नृपश्रेष्ठ ! चिरकाल तक ध्यानावस्थित होकर अपनी तपस्या से शंकर की आराधना करके उन्हें प्रसन्न करो । उनकी जटा में स्थित गङ्गा के जल से अपने पितरों को अभिषिक्त करो । मुनिश्रेष्ठ कपिल ने भगीरथ को कैलाश पर जाकर शिव की तपस्या करने की सलाह दी ।

भगीरथ की प्रार्थना से प्रसन्न शिवजी प्रकट हुये और भगीरथ की याचना पर अपनी जटा में स्थित गङ्गा उन्हें प्रदान कर दी । भगीरथ ने गङ्गा को प्रसन्न करने के लिये उनकी स्तुति की । बालक होते हुये भगीरथ ने अबालक के समान गङ्गा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गयी गङ्गा को लेकर रसातल चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गङ्गा की स्थापना की तथा माँ गङ्गा की परिक्रमा कर उनसे प्रार्थना की - देवि ! मेरे पितर महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं । उस पाप से हे माता ! तुम्ही उन लोगों का उद्धार कर सकती हो ।

नारद को ब्रह्माजी यह कथा सुनाते हुये उपसंहार करते हैं - सबका

उपकार करने वाली देवनदी गङ्गा ने 'ऐसा ही हो' यह कह कर लोककल्याण के लिये, पितरों को पुनीत करने के लिये विशेष रूप से अगस्त्य के द्वारा दान किये गये समुद्र को भर देने के लिये और स्मरणमात्र से पापों का नाश कर देने के लिये भगीरथ के कथनानुसार कार्य किया । पहले तो उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रों को जल से भली-भाँती अभिषिक्त किया । तदनन्तर उनसे खोदे गये गड्ढों को जल से भर दिया । फिर वहाँ से मेरु पर्वत पर आकर विराजमान हो गयीं । बालक देखकर राजा भगीरथ ने कहा - आपको अपनी कर्मभूमि (भारत भूमि) पर चलना चाहिये । इसको भी स्वीकार कर वह हिमालय पर्वत पर चली गयीं । उस हिमालय पर्वत से पुण्यभूमि भारतवर्ष में आ गईं, उसके मध्य से होकर वह पुण्य नदी पूर्व सागर की ओर चली गईं । वहीं माहेश्वरी, वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी हैं । इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह शुभ जल दो भागों में विभक्त हो गया । विन्ध्य के दक्षिण में वह गङ्गा गौतमी के नाम से कही जाती हैं विन्ध्य के उत्तर की गङ्गा भागीरथी इस नाम से पुकारी जाती हैं ।[126]

ब्रह्मपुराण के 105वें अध्याय में सोमतीर्थ का वर्णन है जो विशेष रूप से गौतमी गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन है । ब्रह्माजी नारदजी से कहते हैं कि सोमतीर्थ पितरों को आनन्द देने वाला तीर्थ है । बहुत पहले सोम गन्धर्वों को प्राप्त हो गया, देवों को नहीं । देवताओं की जीवन धारा सोम को गन्धर्वों ने ले लिया । यह देखकर देवता लोग अत्यन्त चिन्तित हुये और ब्रह्मा के पास जाकर सोम को प्राप्त करने की प्रार्थना की । उस समय वाणी देवी ने कहा कि आप देवता लोग मुझे गन्धर्वों को दे दीजिये क्योंकि वे स्त्री प्रेमी और अत्यन्त कामी होते हैं तथा मेरे बदले में सोम ले लीजिये पर देवताओं ने कहा कि वे न तो सोम के बिना रह सकते हैं और न सरस्वती के बिना हीं । इस पर सरस्वती ने कहा - मैं पुनः वहाँ से यहाँ चली आऊँगी । तुमलोग एक यज्ञ करो । गौतमी के दक्षिण

तीर पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम हो तो वहाँ सब देवता एकत्र हो जायें । सरस्वती के आदेशानुसार ही गौतमी के दक्षिण तट पर देवगिरि पर्वत के पास सुरगण, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, देव, सिद्ध, ऋषि तथा आंठ देवयोनिज उपस्थित थे । जब उस गौतमी के तीर पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देवताओं से घिरे इन्द्र ने कहा - सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हमलोग अमृत प्राप्ति के लिये तुमलोगों से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुमलोग यह सौदा स्वीकार कर लो।

इन्द्र की योजनानुसार गन्धर्वों ने सोम देकर सरस्वती को ले लिया। अब सोम देवताओं के अधिकार में आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गयीं फिर भी वाणी देवों के समीप ही रहती थी । प्रतिदिन वह छिपे रूप से आती थीं और देवताओं को मौन रहने को कहती थीं । इसी कारण यज्ञ में सोम खरीदा जाता है । सोम के इस प्रकार प्राप्त होने पर उस गौतमी के तट पर यज्ञ में सब गौयें, देव, पर्वत, यक्ष, रक्ष, सिद्ध, साध्य, मुनि, गुह्यक, गन्धर्व, मरुत, पन्नग, सब औषधियाँ, मातृगण, लोकपाल, रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विन अथवा जो यज्ञ भाग के अधिकारी देवता थे आये । पच्चीस नदियाँ गङ्गा में आकर मिल गयी। ब्रह्माजी नारद जी कहते हैं कि उन नामों से प्रसिद्ध तीर्थों के नाम सुनों- संगमतीर्थ, गान्धर्वतीर्थ, देवतीर्थ, पूर्णातीर्थ, शात्म, श्रीपर्णा-संगम, पवित्र स्वागता संगम, कुसुमा-संगम, पुष्टि संगम, शुभकर्णिका संगम, वैष्णवी संगम, कृशरा संगम, वासवी संगम, शिवशर्या संगम, शिखी, कुसुम्भिका, उपास्था, शान्तिजा, देवजा, वृद्धअज और भद्रसुर, इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये । उन तीर्थों में स्नान, जप, होम और पितृतर्पण आदि कर्म मनुष्यों के लिये सब मनोरथ तथा मुक्ति को देने वाले हैं । इस अध्याय में कुल 30 श्लोक हैं ।

इस पुराण के 107वें अध्याय में भी गौतमी गङ्गा का ही माहात्म्य

वर्णित है जिसमें कुल 69 श्लोक हैं तथा इसमें गौतम ऋषि अगस्त्य जी से पूछते हैं - महाप्राज्ञ ! वह कौन सा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है, आप शीघ्र ही उस भुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ को बताइये । इस पर अगस्त्य जी गौतमी के माहात्म्य का बखान करते हुये कहते हैं - ब्राह्मण ! श्रेय और प्रेय पथ बताने वाले मुनियों के मुख से मैंने सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं । इसमें सन्देह नहीं ।[128]

ब्रह्मपुराण के 119वें अध्याय में पुनः सोमतीर्थ का वर्णन है तथा इसमें भी दक्षिण-गङ्गा गौतमी के माहात्म्य का वर्णन है । इस अध्याय में कुल 20 श्लोक हैं । इसमें सभी औषधियाँ राजा पति प्राप्त करने के लिये ब्रह्माजी के परामर्श पर गौतमी के तट पर जाकर उनकी स्तुति करती हैं जिसमें वे गङ्गा के लिये प्रयुक्त होने वाले सभी विशेषणों का गौतमी के लिये प्रयोग करती हैं । यथा - जगदम्ब गङ्ग ! तुम्हारी विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता क्योंकि पार्वती से आलिंगित शरीर वाले मदन-मन्थन शंकर भी तुमको अपने सिर पर बिठाये रहते हैं । माता ! मनोरथदायिनी ! तुमको नमस्कार है, ब्रह्मस्वरूपिणी, पाप विनाशिनी, तुमको नमस्कार है । विष्णु के चरण कमल से निकलने वाली ! तुमको नमस्कार है । शंभु की जटा से निकलने वाली तुमको बार-बार नमस्कार है —

न ते विभूतिं ननु वेत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवंद्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरी समालिंगितविग्रहोऽपि, धत्तेस्मरारिः शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥
नमोऽस्तु ते मातारभीष्टदायिनीं, नमोस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनिःसृते नमोऽस्तु ते शंभुजटाविनिःसृते ॥[129]

इस पुराण के 120वें अध्याय में धान्यतीर्थ का वर्णन है । इसमें कुल 18 श्लोक हैं । इसमें भी गङ्गा के नाम पर गौतमी गङ्गा का ही माहात्म्य है । गौतमी माता गङ्गा की कृपा से राजा सोम को अपना पति

पाकर हर्षित हुईं । औषधियाँ गङ्गा को प्रिय लगने वाली स्तुति करती हैं- यह एक वैदिक पवित्र गाथा है, जिसे वेदज्ञ पुरुष जानते हैं कि जो कोई व्यक्ति गङ्गा के समीप मातृतुल्य एवं शस्यसम्पन्न भूमि का दान करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं —

वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति यां वै वेदविदो विदुः ।
भूमिं सत्यवतीं कश्चिन्मातरं मातृसंमिताम् ॥
गंगासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ।
भूमिं सत्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वितः ॥[130]

इसके बाद 121वें अध्याय में क्रम से विदर्भ-संगम और रेवती संगम आदि तीर्थों का वर्णन है तथा 122वें में पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन है जिसमें गौतमी गङ्गा का ही माहात्म्य गाया गया है । इन दोनों अध्यायों में क्रम से 26 और 105 श्लोक हैं । इसी पुराण के 172वें एवं 173वें अध्यायों में समुद्र तीर्थ एवं भीमेश्वर तीर्थ का वर्णन है तथा उसमें भी गौतमी गङ्गा का ही उल्लेख है । अध्याय 174 में गङ्गा और सागर का वर्णन है लेकिन इसमें गोदावरी और सागर के ही संगम का वर्णनं है । इसी तरह अध्याय 174, 175 में गौतमी गंगा के ही माहात्म्य का वर्णन आया है । अध्याय 175 में ब्रह्मा गौतम से कह रहे हैं - गङ्गा पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग में कलंकों को नष्ट करने में दक्ष, सकल सिद्धियों को देने वाला, कल्याणकारक, सुन्दर, जगत्पूज्य तथा अभीष्ट फलदायक है । गौतम ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गङ्गा को दण्डकारण्य में प्राप्त करे । जो व्यक्ति सैकड़ों योजन दूर से भी गङ्गा-गङ्गा यह उच्चारण करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है । तीनों लोकों में साढ़े तीस करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सिंहराशि पर वृहस्पति के जाने पर गङ्गा में स्नान करने आते हैं । वृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी में एक बार स्नान करने पर उतना ही फल होता है जितना साठ

हजार वर्षों तक गङ्गा में स्नान करने से होता है । पुत्र ! यह गौतमी गङ्गा अपने में जहाँ कहीं भी स्नान करने से मनुष्यों को मेरी आज्ञा से मुक्ति देती है —

कलिकलंकविनाशनदक्षमिदं सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम्
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं गाङ्गमेतुदुदीरितमुत्तमम् ।
गङ्गा गङ्गा तु यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।[175] 80-84

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मपुराणानुसार एक गङ्गा विन्ध्य के उत्तर में उत्तरी भारत के जन-जन को पवित्र तथा करोड़ों प्राणियों की प्राणधारा बनकर बह रही हैं और दूसरी गङ्गा विन्ध्य के दक्षिण में गौतमी बनकर दक्षिण भारत को धन्य-धन्य कर रही हैं । दोनों ही गङ्गा का महत्त्व बराबर है लेकिन गौतमी गङ्गा को कुछ अधिक अध्याय ब्रह्मपुराण ने दिये हैं ।

15- बृहन्नारदीय पुराण में गङ्गा -

इस पुराण के दो भाग हैं - (1) पूर्व भाग (2) उत्तर भाग । बृहन्नारदीय के पूर्व भाग के छठवें अध्याय में गङ्गा का माहात्म्य आया है । इसमें कुल सत्तर श्लोक हैं । इसके अनुसार गङ्गा शुभ पुण्यप्रद नदी मानी जाती है क्योंकि वह भगवान् श्रीविष्णु के चरण-कमलों से निकली हुयी हैं । गङ्गा नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है तथा अपने स्मरण मात्र से ही सब पापों को नष्ट और सभी उपद्रवों को दूर कर देती हैं । जो सैकड़ों योजन दूर रहकर भी 'गङ्गा-गङ्गा' इस नाम का उच्चारण करता है वह भी पापों से मुक्त हो जाता है । जो व्यक्ति इसके जल में डुबकी लगाते हैं उनका तो कहना ही क्या ?

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः ।
मुच्यते सोपि पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ।।[132]

जो एक बार भी गङ्गा इन दो अक्षरों का उच्चारण करता है, वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक चला जाता है ।

सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥[133]

जिस प्रकार भगवान् विष्णु व्यापक होने के कारण सर्वत्र हैं, उसी प्रकार यह त्रिभुवन पावनी गङ्गा सब पापों को नष्ट करने वाली है । अहो! गङ्गा जगन्माता हैं । उसमें स्नान और उसके जल का पान करने से यह पावनी संसार को पवित्र कर देती है । तो फिर ऐसी गङ्गा की सेवा लोग क्यों नहीं करते ?

यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठितः ।
तथेयं व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी ॥
अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् ।
पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥[134]

गङ्गा और गायत्री ये दो भगवान् विष्णु की शक्तियाँ हैं तथा मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाली हैं । गायत्री छन्दों की माता हैं और गङ्गा लोक की माता हैं । ये दोनों धर्म, अर्थ, और कामरूप फल को देने वाली और निरंजन रूप .हैं और ये उत्तम शक्तियाँ सब लोक के कल्याण के लिये उद्यत रहती हैं । -

गायत्रीच्छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी ।
उभे तौ सर्वपापानां नाशकारणतां गते ।
धर्मार्थकामरूपाणां फलरूपे निरंजने ।
सर्वलोकानुग्रहार्थं हि प्रवर्तेते महोत्तमे ॥[135]

जो व्यक्ति गङ्गाजल के एक बिन्दु से भी अभिषिक्त होता है वह तत्काल सब प्रकार के पापों से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त करता है। जिसके जल के बिन्दु के स्पर्श मात्र से ही सगर वंश की साठ सहस्र संतति राक्षस-भाव को छोड़कर मुक्त हो गयी उसके प्रभाव का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? —

गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः ।

सर्व पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ।
यद् बिन्दुसेवनादेव सगरान्वयसंभवः ।
विसृज्य राक्षसं भावं संप्राप्तः परमं पदम् ।।[136]

इसी पुराण के 7वें एवं आठवें अध्याय में क्रम से 76 एवं 137 श्लोक हैं और उसमें नारदजी के उस प्रश्न का (सगर वंश में कौन था जो राक्षस भाव से मुक्त हुआ तथा सगर कौन थे ?) उत्तर दिया गया है। सनक जी नारद जी के प्रश्न का उत्तर देते हुये सगर का वंशानुचरित सुनाते हैं । तद्नुसार बृक के बाहु, बाहु के सगर हुये । सगर की माता को उनकी ज्येष्ठ सौत ने गर (विष) दे दिया था लेकिन और्वमुनि की कृपा से उस विधवा रानी की कोई क्षति नहीं हुयी । उसका बालक गर के साथ पैदा होने के कारण सगर कहलाया ।

सगर की केशिनी और सुमति दो पत्नियाँ थीं । सुमति के साठ हजार पुत्र हुये और जब कि केशिनी को वंश बढ़ाने वाला मात्र एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम असमंजस पड़ा । असमंजस के अंशुमान हुये । राजा सगर के पुत्र बड़े ही दुराचारी और उपद्रवी हुये । देवताओं ने सगर के दुष्ट पुत्रों से रक्षा के लिये भगवान् कपिल मुनि से प्रार्थना की। इस पर कपिलमुनि ने देवताओं को आश्वासन दिया कि सगर के दुष्ट पुत्र थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जायेंगे । इधर राजा सगर वशिष्ठ आदि महर्षियों की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ करने लगे । उस यज्ञ में अभिषिक्त अश्व को देवेन्द्र इन्द्र चुराकर पाताल में (जहाँ कपिलमुनि रहते थे) बाँध आये । इधर सगर के साठ हजार पुत्रों ने घोड़े का पता लगाने के लिये पूरी पृथ्वी छान डाली । फिर उन सबों में से प्रत्येक ने एक-एक योजन धरती खोदकर पाताल बना दिया । इस तरह पाताल में पहुँचकर उन सबों ने ध्यानमग्न कपिल मुनि को देखा और उनके पास ही चुराया गया अश्व बँधा हुआ पाया । फिर क्या था ? वे साठ हजार सगर पुत्र मारो-मारो कहकर चिल्लाने लगे और कपिल मुनि के नेत्र खोलते ही उससे

उत्पन्न महानल में भस्म हो गये ।

देवदूतों ने आकर महाराज सगर से उक्त घटना का विवरण सुनाया। तब राजा ने अश्व लाने के लिये अपने पौत्र अंशुमान को भेजा। अंशुमान की प्रार्थना पर कपिल मुनि ने प्रसन्न होकर उन्हें आश्वासन दिया कि उनका पुत्र गङ्गा को पृथ्वी पर लाकर उसके पितरों को स्वर्ग पहुँचा देगा । अंशुमान के दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुये । भगीरथ ने बड़ी भारी तपस्या करके गङ्गा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा । भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने गङ्गा को तो दे दिया परन्तु गङ्गा को कौन धारण करेगा ? इसकी उन्हें चिंता होने लगी । तब भगीरथ ने शिव की आराधना की तथा उनकी सहायता से गङ्गा को पृथ्वी पर लाकर उनके जल से अपने पितरों को पवित्र किया ।

इसी पुराण के पूर्व भाग के अध्याय 9 में कुल 143 श्लोक हैं तथा इसमें गङ्गाजल के सम्पर्क से राजा सौदास के उद्धार का वर्णन है। भगीरथ के पुत्र सुदास और सुदास के पुत्र हुये सौदास या मित्रसह, जो वशिष्ठ के शाप से राक्षस हो गये थे तथा नरमांस भक्षण करने लगे थे। इसी अवस्था में वे बारह वर्ष तक रहे । फिर गङ्गाजल के अभिषेक से ही बारह वर्ष बाद शापमुक्त होकर राज्य करने लगे थे ।

इस अध्याय में गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये पुराणकार का कथन है - गङ्गा की महिमा का वर्णन करने में देवेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी सफल नहीं हो सकते । श्रीगङ्गाजी के नामस्मरण मात्र से मनुष्य अपने करोड़ों पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को चला जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं । जो एक बार भी 'गङ्गा-गङ्गा' ऐसा उच्चारण करता है, वह तत्काल पापमुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है —

तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गायाः शक्यते नहि ।
पारे गन्तुं सुराधीशैर्ब्रह्माविष्णुशिवैरपि ।
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः ।

विमुक्तो ब्रह्मशप्तं हि नरो याति न संशयः ।
गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा ।
तदैव पापनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥[137]

इस पुराण के 11वें अध्याय में सनकजी नारदजी से गङ्गोत्पत्ति का वर्णन करते हुये कहते हैं कि जब बलि को बाँधने के लिये और उनके द्वारा दी गयी भूमि को नापने के लिये भगवान् वामन ने अपना विराट् रूप बढ़ाया तो उस विराट् रूप से उन्होंने दो ही डग में पृथ्वी नाप ली। उन परम तेजस्वी ने दो ही डग में सारे ब्रह्माण्ड को नाप लिया । उस समय उनके पैर के अँगूठे के नख से ब्रह्माण्ड दो भागों में बट गया । उस ब्रह्माण्ड के मध्य से जल की अनेक धारायें बह निकलीं । विष्णु के चरण को धोने वाली जलधारा ब्रह्माण्ड के बाह्यआश्रय रूप धारा के रूप में बहने लगी और वह पुनीत धारा ब्रह्मा आदि सुरों को पवित्र करती हुई सप्तर्षि से सुशोभित सुमेरु पर्वत के शिखर पर गिरी । विष्णु के चरणों से निकलने वाली गङ्गा का ऐसा प्रभाव है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । जो कोई गङ्गा-माहात्म्य को नदी तीर अथवा देवालय में सुनता है वह भी अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है —

एवं प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा ।
यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ।
इदं तु गंगामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ।
देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥[138]

बृहन्नारदीय पुराण में मोहिनी-वसु संवाद के अन्तर्गत गङ्गा माहात्म्य का वर्णन आरम्भ होता है जो इस पुराण के उत्तर भाग के 38वें, 39वें, 40वें, 42वें एवं 43वें अध्यायों तक चलता है तथा पुनः 51वें अध्याय में उत्तरवाहिनी गङ्गा का माहात्म्य वर्णित है ।

इस पुराण के 38वें अध्याय में गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते

हुये पुराणकार कहते हैं - भूतल पर सब तीर्थों में गङ्गा श्रेष्ठ हैं । उनके समान पापनाशक कोई भी नहीं है —

सर्वेषामपि तीर्थानां श्रेष्ठा गङ्गा धरातले ।
न तस्या सदृशं किंचिद्विद्यते पापनाशनम् ।।[139]

मोहिनी को सम्बोधित करते हुये वसु कहते हैं कि वे देश, गाँव, पर्वत तथा आश्रम धन्य हैं, जिनके समीप पुण्यवती गङ्गा सदा विद्यमान रहती हैं —

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ।।[140]

सतयुग में समस्त तीर्थ, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गङ्गा सबसे श्रेष्ठ हैं —

कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते ।।[141]

जो सर्वव्यापक चित्तरूपी जनार्दन विष्णु हैं, वे ही द्रवित रूप में गङ्गजल हैं । इसमें संशय नहीं —

योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः ।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः ।।[142]

ब्रह्मघाती, गुरुघाती, गोघाती, गुरुपत्नीगामी तथा चोर भी गङ्गाजल से पवित्र हो जाता है, इसमें विचारने की आवश्यकता नहीं ।[143]

गङ्गाजल क्षेत्रस्थ या उद्धृत हो, ठंडा हो या गरम हो, परन्तु वह जीवन भर के पापों को दूर कर देता है । बासी जल एवं बासी पत्र वर्जनीय है, परन्तु बासी गङ्गाजल और तुलसीपत्र वर्ज्य नहीं है —

वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।
न वर्ज्यं जाह्नवी तोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ।।[144]

सुमेरु पर्वत के सभी रत्न, ओले, जल आदि की संख्या की जा सकती है पर गङ्गाजल के गुणों की संख्या नहीं की जा सकती । समस्त तीर्थ यात्राओं को बिना किये भी मनुष्य केवल गङ्गाजल के माहात्म्य से

सबका फल प्राप्त कर लेता है । गङ्गाजल के बिन्दुओं में चिन्तामणि से अधिक गुण हैं । वे भक्तों को वांछित फल देते हैं । एक बार भक्तिपूर्वक चुल्लू भर गङ्गाजल पान करने से मनुष्य स्वर्ग में कामधेनु के स्तनों से निःसृत दिव्य रसों का उपभोग करता है । ..... हिमालय तथा विन्ध्य के बराबर पापराशि गङ्गाजल से उसी तरह विनष्ट हो जाती है जैसे विष्णु भक्ति से आपत्तियाँ । भक्तिपूर्वक स्नान करने के लिये गङ्गा में प्रवेश मात्र से ब्रह्महत्या आदि पाप 'हाय-हाय' करके भाग जाते हैं ।[145]

जो मनुष्य सदा गङ्गातीर पर वास करता है और नित्य गङ्गाजल का पान करता है, वह पूर्व संचित पापों से मुक्त हो जाता है —

गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत्सदा ।
यः पुमान्स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः ॥[147]

अष्टांग योग, तपस्या तथा यज्ञ करने से क्या प्रयोजन? गङ्गावास ही सबसे विशेष है । अनेंक जप, यज्ञ, तप, व्रत से क्या प्रयोजन? स्वर्ग, मोक्षदायिनी गङ्गा का ही सुखपूर्वक सेवन करना चाहिये । यज्ञ, यम, नियम, दान या संन्यास से वह फल नहीं मिलता जो गङ्गा सेवन से मिलता है । सूर्यग्रहण में, प्रभास क्षेत्र में सहस्र गोदान से जो फल प्राप्त होता है, वह गङ्गा में एक दिन स्नान करने से प्राप्त हो जाता है।[148]

जैसे गरुड़ को देखने से सर्प निर्विष हो जाते हैं, उसी तरह गङ्गा के दर्शन से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । गङ्गा के दर्शन, स्पर्श तथा स्नान से मनुष्य सात पीढ़ी नीचे और सातपीढ़ी ऊपर के पितरों को तारते हैं । दर्शन, स्पर्श, पान तथा गङ्गा नामोच्चारण से मनुष्य सैकड़ों-हजारों मानवों को पवित्र करता है —

भवन्ति निर्विषं सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।
गङ्गा संदर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
सप्तावरान् सप्तपरान् पितृंस्तेभ्यश्च ये परे ।
पुमांस्तारयते गङ्गा वीक्ष्य सृष्टवावगाह्य च ॥

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेति कीर्तनात् ।
पुमान्पुनाति पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥[149]

दूर से भी किया गया गङ्गा का स्मरण अशुभ कर्मों द्वारा संसार सागर में डूबते हुये तथा नरक में गिरते हुये प्राणियों का उद्धार कर देता है । जो मनुष्य हजारों योजन दूरी पर रहकर गङ्गा का स्मरण करता है, वह पापी ही क्यों न हो, अवश्य परमगति को प्राप्त करता है । गङ्गा के स्मरण करने से ही पापसमूहरूप कंकाल के उसी तरह सहस्र टुकड़े हो जाते हैं जैसे वज्र के गिरने से पर्वत के हो जाते हैं । ..... हजारों दूर योजन रहने वाला व्यक्ति भी यदि भक्तिपूर्वक 'गङ्गा-गङ्गा' कहकर स्मरण करे तो वह भी पाप से रहित हो जायेगा । ..... जो सैकड़ों योजन दूर से रहकर 'गङ्गा-गङ्गा' इस नाम का जप करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है । गङ्गा के कीर्तन से पापों का नाश तथा दर्शन से मंगल होता है —

यततो नरके गङ्गा स्मृता दूरात्समुद्धरेत् ।
योजनानां सहस्रेषु गङ्गा स्मरति यो नरः ॥
अपि दुष्कृतकर्मा हि लभते परमां गतिम् ।
स्मरणादेव गङ्गायाः पापसंघातपंजरम् ॥
भेदं सहस्रधा याति गिरिर्वज्रहतो यथा ।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्ध्यायन्जाग्रद्भुंजन्रुदन्हसन् ॥
यः स्मरेत्सततं गङ्गां स च मुच्येत वन्धनात् ।
सहस्रयोजनस्थाश्च गङ्गां भक्त्या स्मरंति ये ॥
गङ्गा गङ्गेति चाक्रुश्य मुच्यन्ते तेऽपि पातकात् ।
ये च स्मरंति वै गङ्गां गङ्गाभक्तिपराश्च ये ॥
आरोग्यं वित्तसंपत्तिर्गंगास्मरणजं फलम् ।
मनसा संस्मरेद्यस्तु गङ्गां दूरस्थितो नरः ॥
चान्द्रायणसहस्रस्य स फलं लभते ध्रुवम् ।

गङ्गा गङ्गा जपन्नाम योजनानां शतेस्थितः ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति ।
कीर्तनान्मुच्यते पापाद्दर्शनान्मंगलं लभेत् ॥[150]

गङ्गाजल में स्नान तथा पान करने वाला मनुष्य सात नीचे की पीढ़ियों और सात ऊपर की पीढ़ियों को पवित्र करता है । ..... ब्रह्मघाती, गुरुघाती तथा महापापी मनुष्य भी गङ्गाजल स्पर्श से पवित्र हो जाता है । मनुष्य यदि एक बार भी विधिवत गङ्गा में स्नान कर ले तो उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होगा । गङ्गा में स्नान मात्र से अनेकों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और सद्यः पुण्य की प्राप्ति होती है ।[151]

गङ्गास्नानेन विधिवन्मुच्यते सर्वपातकैः ।
गङ्गास्नानात्परं स्नानं न भूतं न भविष्यसि ॥[152]

गङ्गा में जहाँ-तहाँ स्नान करने से गङ्गा कुरुक्षेत्र के समान फलदायिका होती है परन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगम में स्नान करने से उससे भी अधिक फल प्राप्त होता है —

कुरुक्षेत्र समा गङ्गा यत्र त्रतावगाहिता ।
हरिद्वारे प्रयागे च सिन्धुसंगेफलाधिका ॥[153]

इसी पुराण के उत्तर भाग में चालीसवें अध्याय में कालविशेष और स्थानविशेष में गङ्गा-स्नान की महिमा विशेषरूप से वर्णित है । तदनुसार जो नर माघ मास में निरन्तर गङ्गा-स्नान करता है, वह चिरकाल तक अपने कुल सहित इन्द्रलोक में वास कर करोड़ों कल्प तक ब्रह्मलोक में वास करता है । सूर्य के उत्तरायण होने पर जो मनुष्य एकभुक्त रहते हुये छः मास तक विधिपूर्वक नित्य गङ्गा-स्नान करता है, वह सौ कुलों का उद्धार कर विष्णुलोक को जाता है । जो मनुष्य प्रत्येक संक्रान्ति में गङ्गा-स्नान करता है वह सूर्य के समान चमकने वाले विमान से विष्णुलोक में पहुँच जाता है । ..... माघ और कार्तिक में गङ्गा-स्नान का फल बराबर ही होता है । ..... यदि कोई अक्षय तिथि में या कार्तिक तथा वैशाख

मास में स्नान कर ले तो उसे वर्ष भर स्नान करने का पुण्य हो जाएगा। ..... कृष्णाष्टमी में गङ्गा स्नान का हजार गुना अधिक फल होता है । ..... चन्द्रग्रहण का स्नान अन्य स्नान की अपेक्षा एक लाख गुना अधिक फल देता है । सूर्य ग्रहण का स्नानं दस लाख गुना फल देता है ।[154]

इसी अध्याय में गङ्गा में देशविशेष में स्नान का फल बताते हुये कहा गया है कि यत्र-तत्र स्नान करने की अपेक्षा कुरुक्षेत्र में स्नान करने का दस गुना अधिक फल होता है । कुरुक्षेत्र की अपेक्षा विन्ध्य समीप गङ्गा में स्नान करने का सौ गुना फल होता है । उससे भी सौ गुना फल काशीपुरी में स्नान करने से होता है । वैसे तो गङ्गा सब जगह दुर्लभ हैं, पर तीन स्थानों में विशेष दुर्लभ हैं - गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसंगम। यहाँ स्नान करने से सौ गुना फल होता है —

सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु चाधिका ।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।
एषु स्नाता दिवं याति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।।[155]

बृहन्नारदीय पुराण के उत्तर भाग के 41वें अध्याय में गङ्गातट पर किये जाने वाले स्नान, तर्पण, पूजन तथा विविध प्रकार के दानों की महिमा कही गयी है । 42वें अध्याय में एक वर्ष तक गङ्गार्चन व्रत का वर्णन है । इन दोनों अध्यायों में क्रम से 72 तथा 44 श्लोक हैं । 43वें अध्याय में गङ्गा दशहरा के पुण्य कृत्य एवं उनके माहात्म्य का वर्णन है । इस अध्याय में कुल 129 श्लोक हैं । इस अध्याय का सारांश भाव यह है कि जिस मनुष्य की जितनी हड्डियाँ गङ्गा में रहती हैं, वह उतने सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में पूजित होता है । जिसकी अस्थि को मनुष्य गङ्गाजल में फेंक देते हैं उसकी स्थिति उसी क्षण से स्वर्गलोक में हो जाती है । जिस धर्मात्मा व्यक्ति की हड्डी गङ्गा-जल में डाली जाती है, वह ब्रह्मलोक से कभी नहीं लौटता —

यावंत्यस्थीनि गङ्गायां तिष्ठंति पुरुषस्य वै ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
गङ्गातोयं तु यस्यास्थि प्राप्यते शुभकर्मणः ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथंचन ॥[156]

बृहन्नारदीय पुराण के 51वें अध्याय में काशी की उत्तरवाहिनी गङ्गा तथा पंचनद में स्नान करने वालों के महापातक की निवृत्ति तथा शिवलोक प्राप्ति का वर्णन है । इस अध्याय में कुल 88 श्लोक हैं । उत्तरवाहिनी गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये कहा गया है कि तीनों लोकों में जितने मोक्षदायक तीर्थ हैं, सब काशी की उत्तरवाहिनी गङ्गा का सेवन करते हैं । जो नर दशाश्वमेध में स्नान कर विश्वेश्वर शिव का दर्शन करते हैं, वे सद्यः निष्पाप होकर भव बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । यों तो सब जगह की गङ्गा पवित्र एवं ब्रह्महत्या आदि दोषों को दूर करने वाली है पर वाराणसी की उत्तरवाहिनी गङ्गा और भी विशेष फलदायिनी है । ..... अखिल पुण्य पर्वों में देवताओं के साथ तीर्थसमूह भी महापातक आदि दोषों से दूषित, व्यक्तियों के स्पर्शजन्य पाप, अपने पाप तथा जीवों के पाप को दूर करने के लिये काशी की उत्तरवाहिनी गङ्गा में स्नान करने के लिये जाते हैं । सत्कर्मपरायण व्यक्ति सौ जन्मों में भी जिस मोक्ष को प्राप्त नहीं करते हैं, वह मोक्ष काशी की गङ्गा में मरने से एक पल में ही प्राप्त हो जाता है —

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मोक्षदानि च कृत्स्नशः ।
सेवते सततं गङ्गां काश्यामुत्तरवाहिनीम् ।
दशाश्वमेधे यः स्नात्वा दृष्ट्वा विश्वेश्वरं शिवम् ।
सद्यो निष्पातको भूत्वा मुच्यते भवबन्धनात् ।
गङ्गा हि सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यानिवारिणि ।
वाराणस्यां विशेषेण यत्र चोत्तरवाहिनी ।
सर्वलोकेषु तीर्थानि यानि ख्यातानि तानि च ।

सर्वाण्येतानि सुभगे काश्यामायांति जाह्नवीम् ॥
नित्यं पर्वसु सर्वेषु पुण्येश्चायतनैः सह ।
उत्तराभिमुखीं गङ्गा काश्यामायाति चान्वहम् ।
महापातकदोषादिदुष्टानां स्पर्शनोद्भवम् ।
व्यपोहितुं स्वपापं च जंतुपापविमुक्तये ।
जन्मांतरशतेनापि सत्कर्मनिरतस्य च ।
अन्यत्र सुधिया भद्रे मोक्षो लभ्येत वा न वा ।
एकेन जन्मना त्वत्र गंगायां मरणेन च ॥[157]

16- मार्कण्डेय पुराण में गङ्गा -

साहित्य भण्डार मेरठ द्वारा प्रकाशित पुराणों में इसकी गणना सप्तम पुराण के रूप में की गई है । - **'मार्कण्डेयं च सप्तम्'** मारकण्डेय पुराण के 53वें अध्याय में गङ्गावतरण का वर्णन है । तदनुसार गङ्गा के अवतरण का वर्णन करते हुये मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं- जगद्योनि भगवान् नारायण का जो धराधार (ध्रुवाधार) पद है उससे त्रिपथगामिनी गङ्गा देवी निकली हैं । समस्त जल की आधाररूपिणी वह सुधा योनिचन्द्र मंडल में प्रवेश करके वहाँ की सूर्य की किरणों से संयुक्त होकर अत्यन्त पवित्र हो सुमेरु पर्वत के ऊपर गिरी हैं । फिर वहाँ से मेरुकूट के प्रान्तभागों में गिरती हुयी, विवर्तित होकर आगे चार भागों में चली हैं । इस प्रकार बिखरते हुये (विस्तृत) जल वाली आलम्बरहित गङ्गा मंदरादि पर्वत वृक्षों में चार भागों मे विभाजित हो गिरी हैं । उनमें से जो धारा पूर्व में चैत्ररथ वन की ओर गयी वह सीता नाम से प्रसिद्ध हुयी । वह सीता नामक गङ्गा वरुणोदक सरोवर को आप्लावित करती हुयी गयी । वहाँ से शीतान्त पर्वत तथा अन्य पर्वतों का अतिक्रम करके पृथ्वी पर पहुँचकर भद्राश्ववर्ष को प्राप्त करके समुद्र में गयी ।

उसी प्रकार दक्षिण की ओर गन्धमादन पर्वत में पतित हुयी धारा अलकनन्दा नाम से प्रसिद्ध हुयी । फिर यह धारा सुमेरु पर्वत के पाद

में स्थित देवताओं को प्रसन्न करने वाले नन्दनवन में जाकर वेगपूर्वक मानसरोवर को प्लावित करके तथा तीन शिखरों वाले रमणीय पर्वतराज को प्राप्त करके तथा उस पर्वत के दक्षिण में स्थित सभी पर्वतों का अतिक्रमण करती हुयी महागिरि हिमालय में आयी हैं । तब उस धारा को वहाँ वृषभध्वज महादेव ने धारण किया और उनका कभी त्याग नहीं किया । पश्चात् जब महाराज भगीरथ ने भगवान् शिव की उपवास तथा स्तुतियों के द्वारा उपासना की, तब प्रसन्न हुये शिव के द्वारा छोड़ी हुयी वह गङ्गा साधारण धाराओं में विभक्त होकर दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुयी और तब वहाँ इनके तीन भाग हो गये । उन भागों से गङ्गा ने पूर्व दिशा में बहने वाली महानदी को आप्लावित किया तथा उन तीनों में से एक स्रोत से भगीरथ के रथ का अनुसरण करती हुयी दक्षिणसमुद्र में प्रविष्ट हुयीं ।

उसी प्रकार विस्तृत पश्चिमभाग में जो महानदी निकली हैं वह सुचक्षु नाम से प्रसिद्ध हुईं । यह धारा वैभ्राजवन को सींचती हुयी तथा शीतोदक सरोवर को प्लावित करती हुयी विविध पर्वतों के शिखरों पर गिरती हुयी सुचक्षु नामक पर्वत पर आयी और शिखर तथा केतुमाल पर्वतों से होती हुयी दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुयीं ।

यह महादिव्य गङ्गा उत्तर दिशा में जाकर पुनः वहाँ से ऋषभ आदि उत्तर दिशा के पर्वतों सुपार्श्व और सुमेरु पर्वत के पैरों से होती हुयी सविता वन में गईं जहाँ वह भद्रसोमा नाम से प्रसिद्ध हुईं । फिर वहाँ से गङ्गा की उत्तरवाहिनी धारा भद्रसरोवर पर पहुँची । इसके बाद शंखकूट पर्वत होती हुयी, उत्तर कुरु प्रदेश को प्लावित करती हुयी महासमुद्र में गिरीं ।

17- नारद पुराण में गङ्गा -

नारद पुराण के पूर्व भाग के छठवें अध्याय में गङ्गा-यमुना संगम, प्रयाग, काशी तथा गङ्गा एवं गायत्री महिमा का वर्णन आया है । इस अध्याय के वक्ता सूतजी हैं लेकिन माहात्म्य नारद-सनक संवाद के रूप

में वर्णित है । जिसमें नारदजी के प्रश्न पर सनकजी गङ्गा की महिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं - मुने ! नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा स्मरण मात्र से समस्त क्लेशों का नाश करने वाली, सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली तथा सारे उपद्रवों को मिटा देने वाली हैं । ..... सब तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, वे सब मिलकर गङ्गाजी के एक बूँद जल से किये हुये अभिषेक की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते । जो गङ्गा से सौ योजन दूर खड़ा होकर भी गङ्गा-गङ्गा का उच्चारण करता है, वह भी सब पापों से मुक्त हो जाता है, फिर जो गङ्गा में स्नान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ?

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतेस्थितः ।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ।

- नारद पुराण 6/12

भगवान् विष्णु के चरण-कमलों से प्रकट होकर, भगवान् शिव के मस्तक पर विराजमान होने वाली भगवती गङ्गा मुनियों और देवताओं के द्वारा भी भली-भाँति सेवन करने योग्य हैं, फिर साधारण मनुष्यों के लिये तो बात ही क्या है ?

विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरःस्थिता ।
संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः ॥[158]

- नारद पुराण 6/13

श्रेष्ठ मनुष्य अपने ललाट में जहाँ गङ्गाजी की तिलक लगाते हैं, वहीं अर्धचन्द्र के नीचे प्रकाशित होने वाला तृतीय नेत्र समझना चाहिये। ..... ब्रह्मन् ! जो गङ्गाजी का स्मरण करता है, उसने सब तीर्थों में स्नान और सभी पुण्य क्षेत्र में निवास कर लिया इसमें संशय नहीं है । गङ्गा में स्नान किये हुये व्यक्ति को देखकर पापी भी स्वर्गलोक का अधिकारी हो जाता है । उसके अंगो का स्पर्श करने मात्र से वह देवताओं का अधिपति हो जाता है । (गङ्गा, तुलसी, भगवान् के चरणों में अविचल

भक्ति तथा धर्मोपदेशक सद्गुरु में श्रद्धा - ये सब मनुष्यों के लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं —

गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचंचला ।
अत्यन्त दुर्लभा नृणां भक्तिधर्मप्रवक्तरि ॥[159]

- नारद पुराण 6/21

ब्रह्मन् ! दूसरी बातें बहुत कहने से क्या लाभ ? साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षों में गङ्गाजी की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। ..... जो एक बार भी 'गङ्गा' इन दो अक्षरों का उच्चारण कर लेता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है —

गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि ।
न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुर्भाषितैः ॥

- नारद पुराण 6/24

सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥[160]

- नारद पुराण 6/27

गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, माता के समान कोई गुरु नहीं है, भगवान् विष्णु के समान कोई देवता नहीं है तथा गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है -

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः ।
नास्ति विष्णुसमं दैवं नास्ति तत्वं गुरोः परम् ॥

जैसे चारों वर्णों में ब्राह्मण, नक्षत्रों में चन्द्रमा तथा सरोवर में समुद्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुण्य तीर्थों और नदियों में गङ्गा सबसे श्रेष्ठ मानी गयी हैं । ..... शांति के समान कोई बन्धु नहीं है, सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है, मोक्ष से बड़ा कोई लाभ नहीं है और गङ्गा के समान कोई नदी नहीं है —

नास्ति शान्तिसमो बन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः ।
नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गा समा नदी ॥

- नारद पुराण 6/60

गङ्गाजी का उत्तम नाम पापरूपी वन को भस्म करने के लिये दावानल के समान हैं । गङ्गा संसाररूपी रोगों को दूर करने वाली हैं, इसीलिये यत्नपूर्वक उसका सेवन करना चाहिये । गायत्री और गङ्गा दोनों समस्त पापों को हर लेने वाली मानी गयी हैं ।

गायत्री वेदों की माता हैं और जाह्नवी सम्पूर्ण जगत् की जननी हैं। वे दोनों समस्त पापों के नाश का कारण हैं । जिस प्रकार गायत्री प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार गङ्गा भी प्रसन्न होती हैं । वे दोनों भगवान् विष्णु की शक्ति से सम्पन्न हैं । अतः सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि देने वाली हैं । गङ्गा और गायत्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के फलरूप में प्रकट हुयी हैं । ये दोनों निर्मल तथा परम उत्तम हैं और सम्पूर्ण लोकों पर अनुग्रह करने के लिये प्रवृत्त हुयी हैं । .... महाभागा गङ्गा का स्मरण करने पर समस्त पापों का नाश करने वाली, दर्शन करने पर भगवान् विष्णु का लोक देने वाली तथा जल पीने पर भगवान् का सारूप्य प्रदान करने वाली हैं । उनमें स्नान करने पर मनुष्य भगवान् के उत्तम धाम को जाते हैं —

अहो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी ।
हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम् ।

जगत् का धारण-पोषण करने वाले भगवान् विष्णु नारायण गङ्गा-स्नान करने वालों को मनोवांछित फल देते हैं । जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजल के एक कण से भी अभिषिक्त होता है वह सब पापों से मुक्त हो परमधाम को प्राप्त कर लेता है । गङ्गा के जलबिन्दु का सेवन करने मात्र से राजा सगर की संतति परमपद को प्राप्त हुयी ।

इसी पुराण के पूर्वभाग के 7वें अध्याय में असूया दोष के कारण राजा बाहु की अवनति और पराजय तथा उनकी मृत्यु के बाद रानी का और्व मुनि के आश्रम में रहने आदि का वर्णन है तथा 8वें अध्याय में सगर का जन्म तथा शत्रु विजय, कपिल के क्रोध से सगर पुत्रों का विनाश तथा भगीरथ द्वारा लायी हुयी गङ्गाजी के स्पर्श से उन सबके उद्धार का वर्णन है । नारद पुराण के पूर्व भाग के 11वें अध्याय में अदिति को भगवद्दर्शन और वर प्राप्ति, वामनजी का अवतार, बलि-वामन संवाद, भगवान् का तीन पैर से समस्त ब्रह्माण्ड को लेकर बलि को रसातल भेजने का वर्णन है । इसमें गङ्गा की उत्पत्ति इस प्रकार है- अत्यन्त तेजस्वी विश्वरूप श्रीहरि ने अपने पैरों से बलि की सारी भूमि नाप ली । उस समय उनका दूसरा पैर ब्रह्माण्ड को छू गया । उस छिद्र के द्वारा ब्रह्माण्ड से बाहर का जल अनेक धाराओं में बहकर आने लगा। भगवान् विष्णु के चरणों को धोकर निकला हुआ वह निर्मल गङ्गाजल सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करने वाला था । ब्रह्माण्ड के बाहर जिनका उद्गम स्थान है, वह श्रेष्ठ और पावन गङ्गाजल धारा रूप में प्रवाहित हुआ और ब्रह्मा आदि देवताओं को उसने पवित्र किया । फिर सप्तर्षियों से सेवित हो वह मेरु पर्वत पर गिरा । ..... भगवान् विष्णु के चरणों से निकली हुयी गङ्गादेवी का ऐसा प्रभाव है कि जिनके स्मरण मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण पातकों से मुक्त हो जाता है । जो इस गङ्गा माहात्म्य को देवालय अथवा नदी के तट पर पढ़ता या सुनता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है ।

नारद पुराण के पूर्वभाग के 15वें अध्याय में पापियों को प्राप्त होने वाले नरकों की यातनाओं का वर्णन, भगवद्भक्ति का निरुपण, तथा धर्मराज के उपदेश से भगीरथ का गङ्गाजी को लाने के लिये उद्योग का वर्णन है । इसमें धर्मराजजी भगीरथ से कहते हैं - गङ्गाजी को लाने का पराक्रम करके तुम अपने पितरों का उद्धार करो । भूपते ! गङ्गाजी

निश्चय ही सब पापों का नाश कर देती हैं। नृपश्रेष्ठ मनुष्य के केश, हड्डी, नख, दाँत तथा शरीर की भस्म भी यदि गङ्गाजी के जल से छू जाये तो वे भगवान् विष्णु के धाम में पहुँचा देती है। राजन् ! जिसकी हड्डी अथवा भस्म को मनुष्य गङ्गाजी के जल में डाल देते हैं, वह सब पापों से मुक्त हो भगवान् श्रीहरि के धाम में चला जाता है। भूपते ! अब तक जितने भी पाप तुम्हें बताये गये हैं, वे सब गङ्गाजी के एक बिन्दु का अभिषेक होने से नष्ट हो जाते हैं।

इसी पुराण के पूर्वभाग के 16वें अध्याय में राजा भगीरथ का भृगुजी के आश्रम पर जाकर सतसंग लाभ करने एवं हिमालय पर घोर तपस्या करके भगवान् विष्णु एवं शिव की कृपा से गङ्गाजी को लाकर पितरों का उद्धार करने की कथा का वर्णन है।

इस पुराण के उत्तरभाग के 38वें अध्याय में मोहिनी-वसु संवाद में गङ्गाजी के माहात्म्य का वर्णन है। पुरोहित वसु मोहिनी से कहते हैं - पृथ्वी पर सब तीर्थों में श्रेष्ठ गङ्गाजी के समान पापनाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है। वे देश, वे जनपद, वे पर्वत, वे आश्रम भी धन्य हैं, जिनके समीप सदा पुण्य सलिला भगवती भागीरथी बहती रहती हैं।

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ।[163]

मोहिनी ! पक्षों के आदि अर्थात् कृष्ण पक्ष में षष्ठी से लेकर पुण्यमयी अमावस्या तक दस दिन गङ्गा इस पृथ्वी पर निवास करती हैं। शुक्लपक्ष प्रतिपदा से लेकर दस दिन तक वे पाताल में निवास करती हैं। फिर शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक जो दस दिन होते हैं, उनमें गङ्गाजी सदा स्वर्ग में रहती हैं।

सतयुग में सब तीर्थ उत्तम हैं। त्रेता में पुष्कर तीर्थ सर्वोत्तम हैं, द्वापर में कुरुक्षेत्र की विशेष महिमा है और कलियुग में गङ्गा ही सबसे बढ़कर हैं। कलियुग में सभी तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्ति

गङ्गाजी में छोड़ते हैं परन्तु गङ्गा देवी अपनी शक्ति को कहीं नहीं छोड़ती हैं । गङ्गाजी के जल कणों से परिपुष्ट हुयी वायु के स्पर्श से पापाचारी मनुष्य भी परमगति को प्राप्त होते हैं । जो सर्वत्र व्यापक हैं, जिनका स्वरूप चिन्मय है, वे जनार्दन भगवान् विष्णु ही द्रवरूप से गङ्गाजी के जल हैं, इसमें संशय नहीं है । महापातक भी गङ्गाजी के जल में स्नान करने से पवित्र हो जाते हैं । इस विषय में अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । गङ्गाजी का जल अपने क्षेत्र में हो या निकालकर लाया गया हो, ठंडा हो या गरम हो, वह सेवन करने पर आमरण किये हुये पापों को हर लेता है । बासी जल और बासी दल त्याग देने योग्य माना गया है परन्तु गङ्गाजल और तुलसी दल बासी होने पर भी त्याज्य नहीं है । मेरु के सुवर्ण की, सब प्रकार के रत्नों की, पर्वतों के प्रस्तर और जल के एक-एक कण की गणना हो सकती है परन्तु गङ्गाजल के गुणों का परिणाम बताने की शक्ति किसी में नहीं हैं —

कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते ॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः ।
गङ्गायां प्रतिमुंचन्ति सा तु देवी न कुत्रचित् ॥
गङ्गांभःकणदग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि ।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः ॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः ।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः ॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
गङ्गाम्भसैव पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा ।
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा ।
गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम् ।
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितम् दलम् ।

न वर्ज्यं जाह्नवी तोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्यवापि ।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र ॥

- नारद पुराण 5.38/20-27

हिमालय और विन्ध्य के समान पापराशियाँ भी गङ्गाजी के जल से उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार भगवान् विष्णु की भक्ति से सब प्रकार की आपत्तियाँ । गङ्गाजी में भक्तिपूर्वक स्नान करने के लिए प्रवेश करने पर मनुष्यों के ब्रह्महत्या आदि पाप हाय-हाय करके भाग जाते हैं —

हिमवद् विंध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम् ।
गङ्गाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः ॥
प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम् ॥[165]

जो प्रतिदिन गङ्गाजी के तट पर रहता है सदा गङ्गाजी का जल पीता है, वह पुरुष पूर्वसंचित पापों से मुक्त हो जाता है । जो गङ्गाजी का आश्रय लेकर नित्य निर्भय रहता है, वही देवताओं, ऋषियों और मनुष्यों के लिये पूजनीय है —

गङ्गातीरे वसेनित्यं गङ्गातोयं पिबेत्सदा ।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः ॥[36]
यो वै गङ्गां समाश्रित्यः नित्यं तिष्ठति निर्भयः ।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः ॥[37]

इस पुराण के उत्तरभाग के अध्याय 39वें से 43वें तक गङ्गाजी के दर्शन, स्मरण तथा उनके जल में स्नान करने के महत्त्व का वर्णन है तथा इसके अगले अध्याय में कालविशेष और स्थलविशेष में गङ्गा स्नान की महिमा का वर्णन है तथा गङ्गाजी के तट पर किये जाने वाले स्नान, तर्पण, पूजन तथा विविध प्रकार के दानों की महिमा का वर्णन है । एक

वर्ष तक गङ्गार्चन-व्रत का विधान है और गङ्गातट पर नक्त व्रत करके शिव का पूजन, प्रत्येक मास की पूर्णिमा और अमावस्या को शिवाराधना तथा गङ्गा दशहरा के पुण्य-कृत्य एवं उनके माहात्म्य का वर्णन है ।

18- भविष्यपुराण में गङ्गा -

इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों एवं उपपुराणों में भी गङ्गा की महिमा का यत्र-तत्र वर्णन है । आप कह सकते हैं कि सभी पुराणों ने गङ्गाजल से अभिषेक करके अपने आपको पावन बनाया है । भविष्य पुराण के दो भाग हैं - पूर्व और उत्तर । इन दोनों भागों में गङ्गा बही हैं । भविष्य पुराण के तीर्थ प्रकरण में गङ्गा का माहात्म्य निम्न प्रकार से है —

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात् तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।
स्मरणादेव गङ्गायाः सद्य पापैः प्रमुच्यते ॥

अर्थात् गङ्गा का दर्शन, उनके जल का स्पर्श तथा पान एवं उनके नाम का संकीर्तन और उनके माहात्म्य का स्मरण करने से गङ्गा सभी पापों से शीघ्र छुटकारा दिला देती हैं । भविष्य पुराण के उत्तरभाग के 17वें अध्याय के 61वें श्लोक में गङ्गाजी का नाम आया है जिसके अनुसार इन्द्र पत्नी शची कलियुग में गौड़ देश में भागीरथी गङ्गा के तट पर लोकनिवासिनी शुभ शान्तिमर्या पुरी में आकर द्विज कार्य को सिद्ध करेंगी । वाराह पुराण के 82वें अध्याय में गङ्गा शब्द की व्युत्पत्ति 'गां गता' अर्थात् जो पृथ्वी की ओर गयी हो के रूप में की गयी है ।

19- लिंग पुराण में गङ्गा -

लिंगपुराण के 52वें अध्याय में शुभगङ्गोद्भव वर्णन प्रकरण के अन्तर्गत गङ्गा का उल्लेख है ।

20- वृहद्धर्म पुराण में गङ्गा -

वृहद्धर्म पुराण के 45वें अध्याय से ही गङ्गा का प्रकरण प्रारम्भ हो जाता है तथा वह इस पुराण के 55वें अध्याय तक कुल 11 अध्यायों तक चलता है । 45वें अध्याय में जैमिनी जी श्री शुकदेव से

पूछते हैं —

कथं विष्णु पदं प्राप्ता गङ्गा ब्रह्मकमण्डलोः ।
कथं वा वैष्णवात् पादद् गंगायाता धरातलम् ।।[11]
कथं वाऽऽराधयद्गङ्गां दैवो राजा भगीरथः ।
कथं सगरपुत्रान् वाऽपावयत् परमेश्वरौ ।।[211]

अर्थात् भगवान् विष्णु के पादपद्मों से गङ्गा ब्रह्मा के कमण्डलु में कैसे आयीं तथा फिर वे पृथ्वी पर कैसे उतरीं । राजा भगीरथ ने कैसे गङ्गा की आराधना की फिर गङ्गाजी ने सगर के पुत्रों को कैसे तारा । इस पर श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि मरीच ब्राह्मण के पुत्र थे कश्यप । कश्यप और अदिति के गर्भ से हिरण्यकश्यपु पैदा हुआ । हिरण्यकश्यपु के चारों पुत्रों में प्रह्लाद सबसे ज्येष्ठ था । प्रह्लाद के विरोचन और विरोचन के बलि नाम का पुत्र हुआ । बलि ने सभी देवताओं को जीत लिया । तब देवताओं की माता अदिति ने भगवान् हरि की आराधना की । इस प्रकार इस अध्याय में भगवान् श्रीहरि के द्वारा अदिति को वरप्राप्ति की कथा है । फिर इस पुराण के 46वें अध्याय में वामनचरित का कुल 34 श्लोकों में वर्णन है । फिर 47वें अध्याय में कुल 102 श्लोकों में भगवान् वामन के ही चरित्र का वर्णन है ।

वृहदधर्म पुराण के 48वें अध्याय में कुल 58 श्लोक हैं तथा इसमें गङ्गा की आराधना का वर्णन है । इसमें बताया गया है कि जब भगवान् श्रीहरि के पाद से बह्माण्ड का मस्तक फट गया तब उसके बाहर का भरा हुआ कारण सलिल भगवान् के पादपद्मों का प्राक्षालन करते हुये ब्रह्मा के कमण्डलु में भर गया । वही जल गङ्गाजल बना। पद्मनाभ भगवान् श्रीहरि के नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुयी । ब्रह्मा से मरीचि तथा मरीचि से कश्यप की उत्पत्ति हुयी । कश्यप के पुत्र सूर्य हुये । सूर्य से महाराज मनु की उत्पत्ति हुयी । इन्हें श्राद्धदेव भी कहा जाता है । मनु के पुत्रों में अत्यन्त पटु इक्ष्वांकु हुये । इक्ष्वांकु

के विचुक्षि, विचुक्षि के पुरंजय तथा पुरंजय से पृथु हुये । पृथु से विश्वगन्धि तथा विश्वगन्धि के चन्द्र नामक पुत्र हुये । चन्द्र से युवनाश्व, युवनाश्व से श्रावस्त, श्रावस्त से वृहवाश्व, वृहवाश्व के धुन्धमार नामक पुत्र हुआ । धुन्धमार से दृढ़ाश्व, दृढ़ाश्व के हर्यश्व, हर्यश्व के निकुम्भ, निकुम्भ के वर्हिणाश्व, वर्हिणाश्व के कृताश्व नामक पुत्र हुआ । कृताश्व के सेनजित, सेनजित के युवनाश्व, युवनाश्व के मान्धाता नामक पुत्र हुआ । मान्धाता से पुरुकुत्स, पुरुकुत्स से त्रसदश्व, त्रसदश्व से अनरण्य की उत्पत्ति हुयी । अनरण्य से हर्यश्व, हर्यश्व से त्रैयारुण, त्रैयारुण से त्रिबन्धन, त्रिबन्धन से त्रिशंकु तथा त्रिशंकु से हरिश्चन्द्र की उत्पत्ति हुयी। हरिश्चन्द्र से रोहित, रोहित से हरित, हरित से श्वाप तथा श्वाप से सुदेव की उत्पत्ति हुयी । सुदेव के विजय, विजय के भरुक, भरुक के वृक्क, वृक्क के बाहुक तथा बाहुक के सगर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । सगर की दो पत्नियाँ थीं सुमति और केशिनी । आर्व ऋषि के प्रसाद से सुमति को साठ हजार और केशिनी के असमंजस नामक एक पुत्र हुआ । फिर इसी अध्याय में महाराज सगर के यज्ञ तथा इस यज्ञ में यज्ञ अश्व की चोरी एवं महामना कपिलमुनि के श्राप से सगर से साठ हजार पुत्रों के भस्म होने की कथा है । फिर असमंजस के पुत्र आसमंजस (अंशुमान) द्वारा कपिलमुनि को प्रसन्न कर यज्ञ अश्व को लाकर सगर के यज्ञ को सुसम्पन्न करने की कथा है । महाराज सगर अपने पौत्र अंशुमान को राज्य देकर कालकवलित हो गये । अंशुमान के पुत्र दिलीप हुये । अंशुमान दिलीप को राज्य देकर गङ्गा को प्रसन्न करने के लिये बहुत काल तक तप किये लेकिन सफल नहीं हुये । उनके कालकवलित होने पर महाराज दिलीप भी बहुत काल तक तप किये लेकिन गङ्गा को आराधित करने में सफल नहीं हो सके । फिर दिलीप के पुत्र भगीरथ बहुत काल तक तपस्या करने के उपरान्त गङ्गा का दर्शन पाने में सफल हुये ।

- वृहद्धर्म पुराण 48/1-58

इस पुराण के 59वें अध्याय में गङ्गा के पृथ्वी पर अवतरण की कथा है । इस अध्याय में कुल 89 श्लोक हैं । इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गङ्गा के मनोहारी स्वरूप का वर्णन वशिष्ठ जी करते हैं । तदनुसार -

ध्येया गङ्गा श्वेतारूपा त्रिनेत्रा वरदा शुभा ।
अभया पद्महस्ता च पीयूषघट पाणिका ॥
चतुर्भुजा दिव्यरूपा वसन्ती मकरे शुचौ ।
नानालंकारभूषाढ्या स्फुरत्स्मेरमुखाम्बुजा ॥

- वृहद्धर्म पुराण 49/11-12

अर्थात् गङ्गा का ध्यान श्वेतरूपा चतुर्भुजी रूप में करना चाहिये । उनके एक-हाथ में कमल है तथा दूसरा वरमुद्रा में है । वे अत्यन्त पवित्ररूप मकरारूढ़ा हैं ।

इसी तरह वृहद्धर्मपुराण के मध्यखण्ड के 50वें अध्याय में गङ्गा सहस्रनाम का वर्णन है । इसमें कुल 191 श्लोक हैं । स्कन्दपुराण में दिये गये गङ्गा सहस्रनाम से इस पुराण के गङ्गा सहस्रनाम में सबसे बड़ी भिन्नता यह है कि स्कन्दपुराण में गङ्गा सहस्रनाम वर्णक्रमानुसार है जबकि इस पुराण में ऐसा नहीं है । 51वें अध्याय में श्रीशुकदेव जी गङ्गावतरण की कथा कहते हुये कहते हैं कि इस कथा का श्रवण एवं कीर्तन करने से महापातकों का नाश हो जाता है —

शृणु विप्र महाश्चर्य गङ्गावतरणं क्षितौ ।
श्रवणं कीर्तनं यस्य महापातकनाशनम् ॥

- वृहद्धर्म पुराण 51/1

इस अध्याय में कुल 76 श्लोक हैं । इसी पुराण के मध्यखण्ड के 54वें अध्याय में गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करते हुये कहा गया है कि गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं, गङ्गा से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं ।

गङ्गा के किनारे बसना चाहिये, गङ्गा ही परमगति है । गङ्गा आकाशवासिनी हैं, गङ्गा गिरिवासिनी हैं, गङ्गा धरावासिनी हैं तथा गङ्गा पातालवासिनी हैं । यहाँ तक कि कीट-पतंगे भी यदि गङ्गाजल में मर जायें तो वे भी कीट-पतंगे का शरीर त्यागकर दुर्लभ स्वर्ग की प्राप्ति कर लेते हैं ।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं गङ्गा च परदेवता ।
गङ्गा च वसतिस्थानं गङ्गैव परमा गतिः ॥
गङ्गाकाशवासिनी च गङ्गा च गिरिवासिनी ।
गङ्गा धरावासिनी च गङ्गा पातालवासिनी ॥
अपि कीटपतंगा या यदि गङ्गाजले मृताः ।
तेपि त्यक्त्वा कीटतनुं स्वर्गं यान्त्यतिदुर्लभम् ॥

- वृहद्धर्म पुराण मध्य खण्ड 54/21-22-24

जो हजारों योजन से गङ्गा-गङ्गा कहते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाते हैं । पूरे जन्म के किये गये पाप भी मृत्युकाल में गङ्गा का स्मरण करने से नष्ट हो जाते हैं —

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूते योजनानां शतैरपि ।
समुच्यते सर्वपापैर्विष्णुलोकं च गच्छति ॥
आजन्म पापकर्माणि यः कुर्यात् सर्वदा कुधीः ।
गङ्गाचेन्मृत्यु काले स्यात्तदा मोक्षस्य किंकरः ॥

- वृहद्धर्म पुराण मध्य खण्ड 54/27½-29½

इसी तरह इस पुराण के 55वें अध्याय भी गङ्गा के माहात्म्य से भरा पड़ा है इसमें कुल 74 श्लोक हैं ।

इस तरह हम देखते हैं कि गङ्गा, जिसका वेदों में उल्लेख माना हुआ है पुराणों में आकर भारतीय संस्कृति की साम्राज्ञी बन गयी हैं । भारतीय सनातन धर्म के पाँच प्राण हैं - गङ्गा, गौ, गीता, गोविन्द और गायत्री । इन पाँचों का पुराणों में प्रभूत माहात्म्य वर्णित है पर गङ्गा तो जैसे भारतीय-संस्कृति एवं राष्ट्र की जीवन रेखा ही है । इसके क्षीण होने

एवं टूटने का सीधा अर्थ है भारतीय-संस्कृति एवं जीवन का खतरे में पड़ जाना । यद्यपि आज भारतीय-जीवनधारा के ये पाँचों प्राण संकटग्रस्त हैं और निश्चित रूप से हमारा सनातन धर्म और इस सनातन धर्म की सामाजिक एवं राजनैतिक अभिव्यक्ति से भारत राष्ट्र संकटग्रस्त और बीमार चल रहा है । पुराणों में गङ्गा नामक अध्याय में (1) श्रीमद्भागवत (2) विष्णु पुराण (3) शिवपुराण (4) स्कन्द पुराण (5) वायुपुराण (6) मत्स्यपुराण (7) अग्निपुराण (8) पद्मपुराण (9) कूर्मपुराण (10) ब्रह्माण्ड पुराण (11) वामन पुराण (12) ब्रह्मवैवर्त पुराण (13) देवीभागवत (14) ब्रह्म पुराण (15) बृहन्नारदीय पुराण (16) मार्कण्डेय पुराण (17) नारदपुराण (18) अग्निपुराण (19) भविष्य पुराण (20) लिङ्गपुराण, (21) बृहद्धर्मपुराण में गङ्गा का अनुशीलन प्रस्तुत है ।



तृतीय अध्याय

महाभारत में गङ्गा

महाभारत न केवल भारत का वरन् विश्व का अब तक का सबसे बृहदाकार ग्रन्थ है और स्वयं महाभारत के अनुसार ही जो भी विश्व में है वह महाभारत में है और जो महाभारत में नहीं है वह कहीं नहीं है। महाभारत प्राचीन भारत का सबसे बड़ा ऐतिहासिक दस्तावेज है । हाँ, इतना जरूर है कि यह इतिहास भारतीय मानकों पर है । पाश्चात्य मानकों पर नहीं । हमारे यहाँ इतिहास भी काव्य में लिखे गये हैं और काव्य की अपनी एक भाषा और शैली है । यह महाभारत ग्रन्थ प्राचीन भारत के भव्यतम् और सुदृढ़तम् ज्ञानसौंध का सिद्ध द्वार है । बिना इसमें से प्रवेश किये भारतीय ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, वेद, पुराण, इतिहासादि को ठीक ढंग से समझा ही नहीं जा सकता है । यह महाभारत एक लाख श्लोकों का है जैसा कि कहा गया है —

लक्षं तु वेदाश्चत्वारः लक्षं भारतमेव च ।

महाभारत के बारे में स्वयं वेदव्यास जी नारदजी से कहते हैं - ब्रह्मन् ! मैंने इस महाकाव्य में सम्पूर्ण वेदों का गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रों का सार संकलित करके स्थापित कर दिया है । केवल वेदों का ही नहीं, उनके अंग एवं उपनिषदों का भी इसमें विस्तार से निरुपण किया है । इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मज्जन करके उनका प्रशस्तरूप प्रकट किया गया है । भूत, वर्तमान और भविष्य काल की इन तीनों संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है । इस ग्रन्थ में बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्त्व और मिथ्यत्त्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है तथा अधिकारी भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों

एवं आश्रमों का भी लक्षण बताया गया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य का विधान, पुराणों का सम्पूर्ण मूल तत्त्व भी प्रकट हुआ है । तपस्या एवं ब्रह्मचर्य के स्वरूप, अनुष्ठान एवं कालों का विवरण, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग - इन सबके परिणाम और प्रमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इनके आध्यात्मिक अभिप्राय और अध्यात्मशास्त्र का इस ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया गया है । न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत का भी इसमें विशद निरूपण है । साथ ही यह भी बताया गया है कि देवता, मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म का कारण क्या है । लोकपावन तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों, वनों और समुद्र का भी इसमें वर्णन किया गया है, जब महाभारत में इतना कुछ है तो वहाँ भला गङ्गा कैसे नहीं होती? महाभारत के आदि पर्व, भीष्म पर्व और अनुशासन पर्व में गङ्गाजी का वर्णन है ।

महाभारत के आदि पर्व के 96वें अध्याय में महाभिष को ब्रह्माजी का शाप तथा शापग्रस्त वसुओं के साथ गङ्गाजी के बातचीत का वर्णन है । तदनुसार महाभिष इक्ष्वाकु वंश के सत्यवादी और महापराक्रमी राजा थे । उन्होंने एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञों द्वारा देवेश्वर इन्द्र को संतुष्ट किया और उन यज्ञों के पुण्य से उन शक्तिशाली नरेश ने स्वर्गलोक प्राप्त कर लिया । एक समय सब देवता ब्रह्माजी की सेवा में उनके समीप बैठे हुये थे । वहाँ बहुत से राजर्षि तथा पूर्वोक्त राजा महाभिष भी उपस्थित थे । उसी समय सरिताओं में श्रेष्ठ गङ्गाजी भी उस सभा में आयीं और अचानक वायु के झोकों से उनका वस्त्र ऊपर की ओर उठ गया । यह दृश्य देख सभी देवता एवं राजर्षियों ने अपना सिर नीचे कर लिया किन्तु राजर्षि महाभिष निःशंक होकर देवनदी की ओर देखते ही रह गये । तब भगवान् ब्रह्मा ने महाभिष को शाप देते हुये कहा- दुर्मते ! तुम मनुष्यों में जन्म लेकर फिर पुण्यलोक में आओगे ।

जिस गङ्गा ने तुम्हारे चित्त को चुरा लिया है वही मनुष्य लोक में तुम्हारे प्रतिकूल आचरण करेगी। जब तुम्हें गङ्गा पर क्रोध आयेगा तब तुम भी शाप से छूट जाओगे । तब महाभिष ने अन्य बहुत से तपस्वी राजाओं का चिंतन करके महातेजस्वी राजा प्रतीप को ही अपना पिता बनाने के योग्य चुना ।

ब्रह्मा की सभा से लौटते हुये मार्ग में गङ्गा को वसुगण मिले, उनका शरीर स्वर्ग से नीचे गिर रहा था । उन्हें स्वर्ग से गिरते हुये और मलिन देखकर गङ्गा ने उसका कारण जानना चाहा । तब उन्होंने अपने ऊपर दिये गये वशिष्ठ की शाप की कथा गङ्गा को बता दी । महर्षि वशिष्ठ द्वारा वसुओं को शाप दिये जाने की कथा इसी पर्व के अध्याय 99वें में कही गयी है, जिसके अनुसार जह्नुपुत्री जाह्नवी अपने पति शान्तनु को वशिष्ठ द्वारा वसुओं को शाप की कथा सुनाती हुयी कहती हैं - भरतवंश शिरोमणि ! गिरिराज मेरु के पार्श्वभाग में वसिष्ठ जी का आश्रम था और उसी आश्रम में रहकर वशिष्ठ जी तपस्या करते थे । एक दिन उस देवर्षि सेवित वन में पृथु आदि वसु तथा सम्पूर्ण देवता पधारे। वे अपनी स्त्रियों के साथ उस वन में चारों ओर विचरण करने लगे । उन वसुओं में से एक वसु की पत्नी ने उस वन में घूमते हुये वशिष्ठ जी की गौ नन्दनी को देखा । उस पत्नी के द्वारा उकसाये जाने पर द्यौ नामक वसु ने पृथु आदि अपने भाईयों की सहायता से उस गौ का अपहरण कर लिया । अपनी दिव्यदृष्टि से सम्पूर्ण सत्य को जानकर वशिष्ठजी ने वसुओं को मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया । शापित हो जाने के बाद सभी वसु वशिष्ठजी की शरण में आये तब उस समय धर्मात्मा वशिष्ठजी ने उनसे कहा - मैंने तुम सभी वसुओं को शाप दे दिया है । परंतु तुमलोग तो प्रतिवर्ष एक-एक करके सब के सब शाप से मुक्त हो जाओगे, किन्तु यह द्यौ, जिसके कारण तुम सबको शाप मिला है, मनुष्य लोक में अपने कर्मानुसार दीर्घकाल तक निवास करेगा

परन्तु ये महामना द्यौ मनुष्य लोक में संतान की उत्पत्ति नहीं करेंगे ।

वशिष्ठजी से शापित होने के बाद सभी वसुओं ने गङ्गाजी से निवेदन किया कि वे पृथ्वी पर मानव-पत्नी होकर वसुओं को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करें । गङ्गाजी ने उन्हें ऐसा ही करने का आश्वासन दे दिया । वसुओं के अनुरोध पर ही गङ्गाजी ने प्रतीप के पुत्र राजा शांतनु की पत्नी बनना भी स्वीकार कर लिया । वसुओं ने गङ्गाजी से यह भी प्रार्थना की कि जब वे सब गङ्गाजी के गर्भ से जन्म लें तो जन्म लेते ही उन्हें वे अपनी गोद में समा लें ।

इसके बाद इसी पर्व के 97वें अध्याय में राजा प्रतीप को गङ्गा को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने, शांतनु के जन्म, राज्याभिषेक तथा गङ्गा से मिलने की कथा है । इसके अनुसार एक समय राजा प्रतीप गङ्गाद्वार पर गये और बहुत वर्षों तक जप करते हुये एक आसन पर बैठे रहे । उसी समय मनस्विनी गङ्गा सुन्दर रूप और उत्तम गुणों से युक्त युवती का रूप धारण करके जल से निकलीं एवं स्वाध्याय में लगे हुये राजर्षि प्रतीप की बाँयी जँघा पर बैठ गयीं । राजा के पूछने पर कि उन्होंने ऐसा क्यों किया गङ्गा ने उनसे कहा कि वे उन्हें चाहती हैं और वे (राजा प्रतीप) उन्हें स्वीकार करें । राजा ने कहा कि वे (गङ्गा) उनकी बाँयी जाँघ पर बैठी हैं जो पुत्र, पुत्री या पुत्रवधू का आसन है । अतः वे (राजा प्रतीप) उन्हें (गङ्गाजी को) अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करते हैं ।

राजा प्रतीप के ऐसा कहने पर गङ्गाजी जिस अभिप्रेत से उनके पास आयीं थीं उसे पूरा होते देख उनसे कहा - धर्मज्ञ ! मैं एक शर्त पर आपके पुत्र के साथ विवाह करूँगी । मैं जो कुछ भी आचरण करूँ वह सब आपके पुत्र को स्वीकार होना चाहिये । ये उनके विषय में कभी कुछ विचार न करें । राजा प्रतीप ने गङ्गा की शर्तें स्वीकार कर ली । समय पाकर राजा महाभिष ही प्रतीप के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुये । उसका नाम शान्तनु रखा गया । जब शान्तनु युवा हुये तो राजा प्रतीप

ने उनसे कहा शान्तनो ! पूर्वकाल में मेरे समीप एक दिव्य नारी आयी थी । उसका आगमन तुम्हारे कल्याण के लिये ही हुआ था । यदि वह स्त्री तुम्हें कभी मिले तो उससे उसका परिचय पूछे बिना उसे अपनी पत्नी बना लेना । अनघ ! वह जो कुछ भी कार्य करे उसके विषय में भी उससे पूछ-ताछ मत करना । अपने पुत्र शान्तनु को ऐसा आदेश देकर राजा ने उन्हें राज्य देकर स्वयं तपस्या करने वन में चले गये ।

एक बार राजा शान्तनु को वन में शिकार करते हुये गङ्गाजी मिलीं। राजा शान्तनु उनके रूप लावण्य पर मोहित हो और अपने पिता की बात यादकर उनसे अपनी पत्नी बनने की याचना की । इस पर गङ्गाजी ने कहा कि वे भला या बुरा जो कुछ भी करें, उसके लिये वे कभी उन्हें मना नहीं करेंगे तथा कभी उनसे अप्रिय वचन नहीं कहेंगे। यदि राजा ने उन्हें किसी कार्य को करने से कभी रोका या अप्रिय वचन कहा तो वे उनका साथ छोड़ देंगी । राजा ने गङ्गा की बात मान ली तथा अपने पिता को दिये हुये वचन के अनुसार गङ्गाजी से उनका परिचय भी नहीं पूछा । इस तरह राजा शान्तनु ने गङ्गा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ।

समय के साथ राजा शान्तनु को गङ्गाजी के गर्भ से देवताओं के समान तेजस्वी कुल आठ पुत्र हुये । पर जो-जो पुत्र उत्पन्न होते उसे गङ्गाजी जल में फेंक देती और कहती - वत्स ! मैं तुम्हें प्रसन्न कर रही हूँ अर्थात् शापमुक्त कर रही हूँ । गङ्गा का यह व्यवहार राजा शान्तनु को अच्छा नहीं लगता था पर वे दिये गये वचन का पालन करते हुये यह समझ में न आने वाला अपनी प्रिय पत्नी का कृत्य देखते गये । राजा को यह डर भी बना हुआ था कि कहीं यह मुझे छोड़कर चली न जाये। परन्तु जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ तब शान्तनु ने उसे गङ्गा को देने से अस्वीकार करते हुये कुछ कटु वचन भी कह डाले । इस पर गङ्गाजी ने कहा कि यह सब प्रारब्धानुसार ही हो रहा है । वे इस पुत्र को मारने वाली नहीं थीं पर अब वे पहले ही की गई प्रतिज्ञा के अनुसार अब और उनके

साथ रहने वाली नहीं । फिर गङ्गाजी ने शान्तनु महाराज जी को अपना परिचय देते हुये महर्षि वशिष्ठ द्वारा दिये गये वसुओं को शाप एवं उनके उद्धार के लिये वसुओं से अपनी की गई प्रतिज्ञा का भी भेद प्रकट कर दिया । फिर गङ्गाजी ने महाराज शान्तनु से कहा - यह तुम्हारा पुत्र सब वसुओं के पराक्रम से सम्पन्न होकर अपने कुल का आनन्द बढ़ाने के लिये प्रकट हुआ है । इसका नाम गङ्गादत्त रखना । इसके बाद गङ्गाजी उस पुत्र को अपने साथ लेकर चली गईं तथा महाराज शान्तुन को यह आश्वासन भी दिया कि समय आने पर उनका पुत्र उन्हें मिल जायेगा ।

महाभारत के इसी आदिपर्व के 100वें अध्याय में शान्तनु के रूप गुण तथा सदाचार की प्रशंसा, गङ्गाजी के द्वारा सुशिक्षित पुत्र की प्राप्ति तथा देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा का वर्णन है । एक बार शिकार करते हुये जब राजा शान्तुन गङ्गा के तट पर आये तो देखा कि गङ्गाजी में बहुत थोड़ा जल रह गया है । गङ्गा की यह दुर्दशा देखकर महाराज शान्तनु इस दुश्चिन्ता में पड़ गये कि गङ्गा का जल प्रवाहित क्यों नहीं हो रहा है? फिर उन्होंने देखा कि एक विशालकाय कुमार देवराज इन्द्र के समान दिव्यास्त्रों का अभ्यास कर रहा है और अपने तीखे बाणों से समूची गङ्गा की धारा को रोककर खड़ा है । उस बालक का यह अलौकिक कार्य देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । चूँकि शान्तनु ने अपने पुत्र को पैदा होते समय ही देखा था इसीलिये उस देवव्रत नामधारी अपने पुत्र को वे पहचान नहीं सके । बालक ने अपने पिता को देखकर उन्हें माया से मोहित कर दिया और फिर वह शीघ्र ही अर्न्तधान हो गया । यह अद्भुत बात देखकर शान्तनु को कुछ सन्देह हुआ और उन्होंने गङ्गाजी को अपना पुत्र दिखाने को कहा । तब गङ्गाजी परम सुन्दर रूप धारण करके अपने पुत्र का दाहिना हाथ पकड़े सामने आयीं और दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित कुमार देवव्रत को दिखाया । फिर उन्होंने शान्तनु से कहा - महाराज ! पूर्वकाल में आपने जिस आठवें पुत्र को मेरे गर्भ से प्राप्त

किया था यह वही है । मेरे दिये हुये इस महान् वीर पुत्र को आप घर ले जाइये । ऐसा कहकर महाभागा गङ्गा देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं ।

आदिपर्व के बाद महाभारत के वनपर्व में 85वें, 90वें, 97वें, 106वें, 107वें, 108वें, 109वें, 114वें, 142वें, 145वें तथा 272वें अध्याय में गङ्गाजी का वर्णन या उल्लेख किसी न किसी प्रकार आया है । इस पर्व के 85वें अध्याय में गङ्गासागर, अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग आदि विभिन्न तीर्थों की महिमा का वर्णन तथा गङ्गाजी का माहात्म्य दिया गया है । इस अध्याय में कुल 132 श्लोक हैं जिनमें से 88वें श्लोक से लेकर 100वें श्लोक तक कुल 13 श्लोकों में गङ्गा माहात्म्य का वर्णन है, जिसके अनुसार —

कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता ।
विशेषो वै कनखले प्रयागे परमं महत् ॥
यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गाभिषेचनम् ।
सर्वं तत् तस्य गङ्गाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥
सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता ॥
पुष्करे तु तपस्तप्येद् दानं दद्यान्महालये ।
मलये त्वाग्निमारोहेद् भृगुतुंगे त्वनाशनम् ॥
पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गङ्गायां मध्यमेषु च ।
स्नात्वा तारयते जन्तुः सप्तसप्तावरांस्तथा ॥
पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाहिता च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् ।
तावत् स पुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते ॥
यथा पुण्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
उपास्य पुण्यं लब्ध्वा च भवत्यमरलोकभाक् ॥

न गङ्गा सदृशं तीर्थे न देवः केशवात् परः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः ॥
यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत् तपोवनम् ।
सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ॥
इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च ।
सुदृढ़ां च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥
इदं धन्यमिदं मेध्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम् ।
इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम् ॥
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ।
अधीत्य द्विजमध्ये च निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥[2]

अर्थात् गङ्गा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायिनी है । कनखल में गङ्गा का स्नान विशेष माहात्म्य रखता है । प्रयाग में गङ्गा-स्नान का महत्त्व सबसे अधिक है ।

जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, उसी प्रकार निषिद्ध कर्म करके भी यदि गङ्गा स्नान किया जाय तो उसका जल उन सब पापों को भस्म कर देता है ।

सतयुग में सभी तीर्थ पुण्यदायक होते हैं । त्रेता में पुष्कर का महत्त्व है । द्वापर में कुरुक्षेत्र विशेष पुण्यदायक है और कलियुग में गङ्गा की अधिक महिमा बतायी गयी है ।

पुष्कर में तप करें, महालय में दान दें, मलय पर्वत में अग्नि पर आरूढ़ हों और भृगुतुंग में उपवास करें ।

पुष्कर में, कुरुक्षेत्र में, गङ्गा में तथा प्रयाग आदि मध्यवर्ती तीर्थों में स्नान करके मनुष्य अपने आगे-पीछे की सात-सात पीढ़ियों का उद्धार कर देता है ।

गङ्गाजी का नाम लिया जाय तो वह सारे पापों को धो-बहाकर पवित्र कर देती हैं । दर्शन करने पर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान

और जलपान करने पर वह मनुष्य की सात पीढ़ियों को पावन बना देती है ।

राजन् ! मनुष्य की हड्डी जब तक गङ्गाजल का स्पर्श करती है, तब तक वह पुरुष स्वर्गलोक में पूजित होता है ।

जितने पुण्यतीर्थ हैं और जितने पुण्य मन्दिर हैं उन सबकी उपासना से पुण्य लाभ करके मनुष्य देवलोक का भागी होता है ।

गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं, भगवान् विष्णु से बढ़कर कोई देवता नहीं और ब्राह्मणों से उत्तम कोई वर्ण नहीं है । ऐसा ब्रह्माजी का कथन है ।

महाराज ! जहाँ गङ्गा बहती हैं वही उत्तम देश है और वही तपोवन है । गङ्गा के तटवर्ती स्थान को सिद्धक्षेत्र समझना चाहिये ।

इस सत्य सिद्धान्त को ब्राह्मण आदि द्विजों, साधुपुरुषों, सुहृदों, शिष्यवर्ग तथा अपने अनुगत मनुष्यों के कान में कहना चाहिये ।

यह गङ्गा-माहात्म्य धन्य, पवित्र, स्वर्गप्रद और परम उत्तम है । यह पुण्यदायक, रमणीय, पावन, उत्तम, धर्मसंगत और श्रेष्ठ है ।

यह महर्षियों का गोपनीय रहस्य है । सब पापों का नाश करने वाला है । द्विजमण्डली में इस गङ्गा-माहात्म्य का पाठ करके मनुष्य निर्मल हो स्वर्गलोक में पहुँच जाता है ।

महाभारत में वनपर्व के 105वें अध्याय में अगस्त्य जी के द्वारा समुद्र का पान और देवताओं द्वारा कालेय दैत्य का वध करके ब्रह्माजी द्वारा समुद्र को पुनः भरने के उपाय पूछने का वर्णन है । 106वें अध्याय में ब्रह्माजी विष्णु सहित अपने पास आये हुये सभी देवताओं से कहते हैं कि दीर्घकाल के पश्चात् समुद्र फिर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाएगा । महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बी जनों के उद्धार का उद्देश्य लेकर जलनिधि समुद्र को पुनः अगाध जलराशि से भर देंगे । इसके बाद इसी अध्याय में राजा सगर का संतान के लिये अपनी दोनों

पत्नियों के साथ कैलाश पर बड़ी भारी तपस्या करने का तथा भगवान् शिव से उन्हें एक पुत्री के गर्भ से साठ हजार तथा दूसरी से एक वंशधर पुत्र की प्राप्ति का वर्णन है । 107वें अध्याय में सगर के पुत्रों की उत्पत्ति, साठ हजार सगर पुत्रों का कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म होना, असमंजस का परित्याग, अंशुमान के प्रयत्न से सगर के यज्ञ की पूर्ति, अंशुमान से दिलीप और दिलीप से भगीरथ को राज्य प्राप्ति का वर्णन है । पूरी कथा लगभग पुराणों में आयी कथा के अनुसार ही है । अतः यहाँ पूरी कथा नहीं दी जा रही है ।

108वें अध्याय में भगीरथ का हिमालय पर तपस्या द्वारा गङ्गा और महादेव जी को प्रसन्न करने और उनसे वर प्राप्त करने की कथा है। तदनुसार जब महाराज भगीरथ ने यह सुना कि कपिल द्वारा उनके साठ हजार पितरों की भयंकर मृत्यु हुई है और वे स्वर्ग प्राप्ति से वंचित रह गये हैं तब उन्होंने व्यथित हृदय से अपना राज्य मन्त्रियों को सौंप दिया और स्वयं हिमालय के शिखर पर तपस्या करने के लिये प्रस्थान किया। लोमश ऋषि इस कथा का महाराज युधिष्ठिर से वर्णन करते हुये कहते हैं - नरश्रेष्ठ ! तपस्या से सारा पाप नष्ट करके भगीरथजी गङ्गाजी की आराधना करना चाहते थे । उन्होंने सहस्रों वर्षों तक फल, मूल और जल का आहार किया । एक हजार दिव्य वर्ष बीत जाने पर महानदी गङ्गा ने स्वयं साकार होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया भगीरथ से उनकी याचना पूर्ण करने का वचन दिया ।

गङ्गा के आश्वासन पर भगीरथ ने उनसे कपिल के शाप से भस्म हो गये पितरों के उद्धार की याचना की । इस पर गङ्गा ने उनसे कहा कि वे उनकी बात तो मान लेंगी पर जब वे आकाश से नीचे गिरेंगी तब पृथ्वी पर गिरते समय उनके वेग को रोकना बहुत ही कठिन हो जायेगा तथा देवश्रेष्ठ महेश्वर नीलकंठ को छोड़कर तीनों लोकों में कोई भी उनके वेग को धारण नहीं कर पायेगा । तब भगीरथ कैलाश पर्वत पर जाकर

भगवान् शिव की तपस्या करके उनसे गङ्गाजी के वेग को धारण करने के लिये वर की याचना की ।

वन पर्व के 109वें अध्याय में पृथ्वी पर गङ्गाजी के उतरने और समुद्र को जल से भरने का विवरण तथा सगर के पुत्रों के उद्धार का वर्णन है । तदनुसार भगवान् शिव ने भगीरथ से कहा - तुम महानदी गङ्गा से भूतल पर उतरने के लिये प्रार्थना करो । मैं तुम्हारे पितरों को पवित्र करने के लिये स्वर्ग से उतरती हुयी सरिताओं में श्रेष्ठ गङ्गा को सिर पर धारण करुँगा । तब भगीरथ ने गङ्गाजी का चिंतन किया । उनके चिंतन करने पर तथा भगवान् शिव को खड़ा देख पुण्यसलिला रमणीया नदी गङ्गा सहसा आकाश से नीचे गिरीं । आकाश की मेखलारूप गङ्गा को भगवान् शिव ने अपने ललाट देश में पड़ी हुयी मोतियों की माला की भाँति धारण कर लिया । नीचे गिरती हुयी गङ्गा तीन धाराओं में बँटकर हंसों की पंक्तियों की भाँति सुशोभित होने लगी । भूतल पर पहुँच कर गङ्गाजी ने भगीरथ से कहा - महाराज ! रास्ता दिखाओ मैं किस मार्ग से चलूँ । पृथिवीपते ! मैं तुम्हारे लिये ही भूतल पर आयी हूँ । यह सुनकर राजा भगीरथ जहाँ महात्मा सगर पुत्रों के शरीर पड़े थे, वहाँ गङ्गाजी के पावन जल से उन शरीरों को प्लावित करने के लिये उस स्थान से प्रस्थित हुये । इधर भगवान् शिव गङ्गाजी को सिर पर धारण कर देवताओं के साथ सर्वश्रेष्ठ पर्वत कैलाश पर चले गये । राजा भगीरथ ने गङ्गाजी के साथ समुद्र तट पर जाकर वरुणालय समुद्र को बड़े वेग से भर दिया और गङ्गाजी को अपनी पुत्री बना लिया । तत्पश्चात् वहाँ उन्होंने पितरों के लिये जलदान किया तथा पितरों का उद्धार होने से वे सफल मनोरथ हो गये । लोमष ऋषि युधिष्ठिर से कहते हैं - युधिष्ठिर जिस प्रकार गङ्गा त्रिपथगा हुई वह सब प्रसंग मैने तुम्हें सुना दिया । महाराज ! समुद्र भरने के लिये ही गङ्गा पृथ्वी पर उतारी गयी थीं ।

इस तरह इस प्रकरण में हमें पुराणों से थोड़ी भिन्नता भी देखने को मिली है । यहाँ गङ्गा के पृथ्वी पर अवतरण का मुख्य उद्देश्य अगस्त्यजी द्वारा सुखा दिये गये समुद्र को भरना था । साथ ही भगीरथ के पुरखों का उद्धार भी हो जाता है ।

महाभारत के वन पर्व के 114वें अध्याय में युधिष्ठिर का कौशिकी, गङ्गा सागर एवं वैतरणी नदी होते हुये महेन्द्र पर्वत पर गमन का वर्णन है । इसमें वर्णित है कि युधिष्ठिर ने गङ्गासागर संगम तीर्थ में समुद्र तट पर पहुँच क़र पाँच सौ नदियों के जल में स्नान क़िया । भाव यह है कि उस समय सागर तक गङ्गा के पहुँचने में उनमें छोटी-बड़ी कुल पाँच सौ नदियाँ मिलती थीं । फिर इस पर्व के 142वें अध्याय में पाण्डवों द्वारा गङ्गाजी की वन्दना, लोमष जी का नरकासुर के वध और भगवान् वाराह द्वारा वसुधा के उद्धार की कथा है । इस अध्याय में तीर्थदर्शी पाण्डवों को सम्बोधित करते हुये लोमष ऋषि उनसे कहते हैं- यहाँ कल्याणमय जल से भरी हुई पुण्यस्वरूपा महानदी अलकनन्दा प्रवाहित होती हैं, जो देवर्षियों के समुदाय से सेवित हैं । इसका प्रार्दुभाव बदरिकाश्रम से ही हुआ है । आकाशधारी महात्मा बालखिल्य तथा महामना गन्धर्वगण भी नित्य इसके तट पर आते-जाते हैं और इसकी पूजा करते हैं । सामगान करने वाले विद्वान् वेदमन्त्रों की पुण्यमय ध्वनि फैलाते हुये यहाँ सामवेद की ऋचाओं का गान करते हैं । मरीचि, पुलह, भृगु तथा अंगिरा भी यहाँ जप एवं स्वाध्याय करते हैं । देवश्रेष्ठ इन्द्र भी मरुद्गणों के साथ यहाँ आकर प्रतिदिन नियमपूर्वक जप करते हैं । उस समय साध्य तथा अश्वनी कुमार भी उनकी परिचर्या में रहते हैं । चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र भी दिन-रात के विभागपूर्वक इस पुण्यनदी की माला जपते हैं । महाभाग ! गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में साक्षात् भगवान् शंकर ने इसके पावन जल को अपने मस्तक पर धारण किया है, जिससे जगत की रक्षा हो । तात ! तुम सब लोग मन को संयम में रखते हुये इस

ऐश्वर्यशालिनी दिव्य नदी के तट पर चलकर इसे सादर प्रणाम करो। महात्मा लोमष का यह कथन सुनकर सब पाण्डवों ने संयतचित होकर आकाशगङ्गा को प्रणाम किया ।[3]

वन पर्व के 146वें अध्याय में घटोत्कच और उसके साथियों की सहायता से पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत एवं बदरिकाश्रम में प्रवेश तथा बदरीवृक्ष, नर-नारायण आश्रम और गङ्गा का वर्णन है । पुराणों के अनुसार हिमालय पर गिरने के बाद गङ्गा अनेक धाराओं में विभक्त होकर बहने लगीं । उनकी सीधी धारा तो गङ्गोत्तरी से देवप्रयाग होती हुयी हरिद्वार आयी हैं और अन्य धारायें अन्य मार्गों से प्रवाहित होकर पुनः गङ्गा में ही मिल गयी हैं । उनकी जो धारा कैलाश और बदरिकाश्रम के मार्ग से बहती आयी हैं, उसका नाम अलकनन्दा है । वह देवप्रयाग में आकर सीधी धारा में मिल गयी हैं । इस प्रकार नर-नारायण का स्थान बदरिकाश्रम यद्यपि अलकनन्दा के ही तट पर है पर इस अध्याय में अलकनन्दा और भागीरथी को एक समझकर कहा गया है कि धर्मात्मा युधिष्ठिर नें भगवान् नर-नारायण का स्थान देखा, जो देवर्षियों से पूजित एवं भागीरथी से सुशोभित था ।

नरनारायणस्थानं भागीरथ्योदशोभितम् ।

वन पर्व के 272वें अध्याय में भीम द्वारा बन्दी होकर जयद्रथ का युधिष्ठिर के सामने उपस्थित होना, उनकी आज्ञा से छूटकर उसका गङ्गाद्वार में तप करके भगवान् शिव से वरदान पाना तथा भगवान् शिव द्वारा अर्जुन के सहायक भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा आदि का वर्णन है।

महाभारत के अनुशासन पर्व के 26वें अध्याय में श्रीगङ्गाजी के माहात्म्य का वर्णन है । यह अध्याय वैशम्पायन एवं जनमेजय के संवाद के रूप में वर्णित है तथा इसमें कुल 106 श्लोक हैं । महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ में इस अध्याय में कुल 107 श्लोक हैं । इस अध्याय में युधिष्ठिर जी गङ्गानन्दन भीष्म जी से प्रश्न करते हैं -

पितामह! कौन से देश, कौन से प्रान्त, कौन-कौन से आश्रम, कौन-कौन से पर्वत और कौन-कौन सी नदियाँ पुण्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ समझने योग्य हैं ? युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर भीष्म जी शीलवृत्ति ब्राह्मण एवं सिद्ध के संवाद के माध्यम से देते हैं —

ते देशास्ते जनपदा आश्रमास्ते च पर्वताः ।
येषां भागीरथी गंगा मध्येनैति सरिद्वरा ॥

- महाभारत अनुशासन पर्व 26/26

वे ही देश, जनपद, आश्रम और पर्वत पुण्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके बीच से होकर सरिताओं में उत्तम भागीरथी बहती हैं —

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत् ॥
स्पृष्टानि येषां गाङ्गेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम् ।
न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद् विधीयते ॥

गङ्गाजी का सेवन करने से जीव जिस उत्तम गति को प्राप्त करता है, उसे वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्याग से भी नहीं पा सकता। जिन देहधारियों के शरीर गङ्गाजी के जल से भीगते हैं अथवा मरने पर जिनकी हड्डियाँ गङ्गाजी में डाली जाती हैं, वे कभी स्वर्ग से नीचे नहीं गिरते ।

सर्वाणि येषां गाङ्गेयैस्तोयैः कार्याणि देहिनाम् ।
गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति ते जनाः ॥
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः ।
पश्चाद् गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥

विप्रवर ! जिन देहधारियों के सम्पूर्ण कार्य गङ्गाजल से ही सम्पन्न होते हैं, ये मानव मरने के बाद पृथ्वी का निवास छोड़कर स्वर्ग में विराजमान होते हैं । जो मनुष्य जीवन की पहली अवस्था में पापकर्म करके भी पीछे गङ्गाजी का सेवन करने लगते हैं, वे भी उत्तम गतिं को

ही प्राप्त होते हैं ।

स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम् ।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

गङ्गाजी के पवित्र जल से स्नान करके जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है उन पुरुषों के पुण्य की जैसी वृद्धि होती है, वैसी सैकड़ों यज्ञ करने से भी नहीं हो सकती । मनुष्य की हड्डी जितने समय तक गङ्गाजी के जल में पड़ी रहती है उतने हजार वर्षों तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः ॥
विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।
तद्वद् देशा दिशश्चैव हीना गङ्गाजलैः शिवैः ॥

जैसे सूर्य उदय काल में घने अन्धकार को विदीर्ण करके प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार गङ्गाजल में स्नान करने वाला पुरुष अपने पापों को नष्ट करके सुशोभित होता है । जैसे बिना चाँदनी की रात और बिना फूलों के वृक्ष शोभा नहीं पाते उसी प्रकार गङ्गाजी के कल्याणमयजल से वञ्चित हुए देश और दिशाएँ भी शोभा एवं सौभाग्यहीन हैं ।

वर्णाश्रमा यथा सर्वे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
क्रतवश्च यथासोमास्तथा गङ्गां बिना जगत् ॥
यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च वायुना ।
तथा देशा दिशश्चैव गङ्गाहीना न संशयः ॥

जैसे धर्म और ज्ञान से रहित होने पर सम्पूर्ण वर्णों और आश्रमों की शोभा नहीं होती है तथा जैसे सोमरस के बिना यज्ञ सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार गङ्गा के बिना जगत् की शोभा नहीं है । जैसे सूर्य के

बिना आकाश, पर्वतों के बिना पृथ्वी और वायु के बिना अन्तरिक्ष की शोभा नहीं होती उसी प्रकार जो देश और दिशाएँ गङ्गाजी से रहित हैं, उनकी भी शोभा नहीं होती इसमें संशय नहीं है ।

त्रिषु लोकेषु ये केचित् प्राणिनः सर्व एव ते ।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः ॥
यस्तु सूर्येण निष्टप्तं गाङ्गेयं पिबते जलम् ।
गवां निर्हारनिर्मुक्ताद् यावकात् तद् विशिष्यते ॥

तीनों लोकों में जो कोई भी प्राणी है उन सबका गङ्गाजी के शुभ जल से तर्पण करने पर वे सब परम तृप्ति लाभ करते हैं । जो मनुष्य सूर्य की किरणों से तपे हुए गङ्गाजल का पान करता है उसका वह जलपान गाय के गोबर से निकले हुए जौ की लप्सी खाने से अधिक पवित्रकारक है ।

इन्दुव्रतसहस्त्रं तु यश्चरेत् कायशोधनम् ।
पिबेद् यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ ॥
तिष्ठेद् युगसहस्त्रं तु पदेनैकेन यः पुमान् ।
मासमेकं तु गङ्गायां समौ स्यातां न वा समौ ॥

जो शरीर को शुद्ध करने वाले एक सहस्र चान्द्रायण व्रतों का अनुष्ठान करता है और जो केवल गङ्गाजल पीता है वे दोनों समान ही हैं अथवा यह भी हो सकता है कि दोनों समान न हों (गङ्गाजल पीने वाले का पुण्य बढ़ जाय) । जो पुरुष एक हजार युगों तक एक पैर से खड़ा होकर तपस्या करता है और जो एक मास तक गङ्गातट पर निवास करता है वे दोनों समान हो सकते हैं अथवा यह भी सम्भव है कि समान न हों (अर्थात् गंगा तट पर निवास करने वाले का पुण्य बढ़ जाए) ।

लंबतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।
तिष्ठेद् यथेष्टं यश्चापि गङ्गायां स विशिष्यते ॥
अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।

तथा गङ्गावगाढस्य सर्वपापैः प्रधूयते ॥

जो मनुष्य दस हजार युगों तक नीचे सिर करके वृक्ष में लटका रहे और जो इच्छानुसार गङ्गाजी के तट पर निवास करे उन दोनों में गङ्गाजी पर निवास करने वाला ही श्रेष्ठ है । द्विजश्रेष्ठ ! जैसे आग में डाली हुई रुई तुरंत जलकर भस्म हो जाती है उसी प्रकार गङ्गा में गोता लगाने वाले मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः ॥
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।
गङ्गाया दर्शनात् तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इस संसार में दुःख से व्याकुल चित्त होकर अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़ने वाले समस्त प्राणियों के लिये गङ्गाजी के समान कोई दूसरा सहारा नहीं है । जैसे गरुड़ को देखते ही सारे सर्पों के विष झड़ जाते हैं उसी प्रकार गङ्गाजी के दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है ।

अप्रतिष्ठाश्च ये केचिदधर्मशरणाश्च ये ।
तेषां प्रतिष्ठा गङ्गेह शरणं शर्म वर्म च ॥
प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान् ।
पततो नरके गङ्गा संश्रितान् प्रेत्य तारयेत् ॥

जगत् में जिनका कहीं आधार नहीं हैं तथा जिन्होंने धर्म की शरण नहीं ली है उनका आधार और उन्हें शरण देने वाली श्रीगङ्गाजी ही हैं । वे ही उसका कल्याण करने वाली तथा कवच की भाँति उसे सुरक्षित रखने वाली हैं । जो नीच मानव अनेक बड़े-बड़े अमङ्गलकारी पापकर्मों से ग्रस्त होकर नरक में गिरने वाले हैं वे भी यदि गङ्गाजी की शरण में आ जाते हैं तो ये मरने के बाद उनका उद्धार कर देती हैं ।

ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः ।

येऽभिगच्छन्ति सततं गङ्गां मतिमतां वर ॥
विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः ।
ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः ॥

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ब्राह्मण ! जो लोग सदा गङ्गाजी की यात्रा करते हैं उन पर निश्चय ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा मुनि लोग पृथक्-पृथक् कृपा करते आये हैं । विप्रवर ! विनय और सदाचार से हीन अमङ्गलकारी नीच मनुष्य भी गङ्गाजी की शरण में जाने पर कल्याण स्वरूप हो जाते हैं ।

यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा ।
सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम् ॥
उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः ।
श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः ॥

जैसे देवताओं को अमृत, पितरों को स्वधा और नागों को सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये गङ्गाजल ही पूर्ण तृप्ति का साधन है । जैसे भूख से पीड़ित हुए बच्चे माता के पास जाते हैं उसी प्रकार कल्याण की इच्छा रखने वाले प्राणी इस जगत् में गङ्गाजी की उपासना करते हैं ।

स्वायम्भुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।
स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते ॥
यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता ।
तथोपजीविनां गङ्गा सर्वप्राणभृतामिह ॥

जैसे ब्रह्मलोक सब लोकों से श्रेष्ठ बताया जाता है वैसे ही स्नान करने वाले पुरुषों के लिये गङ्गाजी ही सब नदियों में श्रेष्ठ कही गयी हैं। जैसे धेनुस्वरूपा पृथ्वी उपजीवी देवता आदि के लिये आदरणीय हैं उसी प्रकार इस जगत् में गङ्गा समस्त उपजीवी प्राणियों के लिये आदरणीय हैं ।

देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः ।
अमृतान्युपजीवन्ति तथा गङ्गाजलं नराः ॥
जाह्नपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितम् ।
आत्मानं मन्यते लोको दिविष्ठमिव शोभितम् ॥

जैसे देवता सत्रयाज्ञादि द्वारा चन्द्रमा और सूर्य में स्थित अमृत से आजीविका चलाते हैं उसी प्रकार संसार के मनुष्य गङ्गाजल का सहारा लेते हैं । गङ्गाजी के तट से उड़े हुए बालुका-कणों से अभिषिक्त हुए अपने शरीर को ज्ञानी पुरुष स्वर्गलोक में स्थित हुआ सा शोभासम्पन्न मानता है ।

जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना विभर्ति यः ।
विभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय निर्मलम् ॥
गङ्गोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा ।
स्पृशते सोऽस्य पाप्मानं सद्य एवापकर्षति ॥

जो मनुष्य गङ्गा के तीर की मिट्टी अपने मस्तक में लगाता है, वह अज्ञानान्धकार का नाश करने के लिये सूर्य के समान निर्मल स्वरूप धारण करता है । गङ्गा की तरङ्गमालाओं से भीगकर बहने वाली वायु जब मनुष्य के शरीर का स्पर्श करती है उसी समय वह उसके सारे पापों को नष्ट कर देती है ।

व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः ।
गङ्गादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥
हंसारावैः काकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् ।
पस्पर्ध गङ्गा गन्धर्वान् पुलिनैश्च शिलोच्चयान् ॥

दुर्व्यसनजनित दुःखों से संतप्त होकर मरणासन्न हुआ मनुष्य भी यदि गङ्गाजी का दर्शन करे तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है कि उसकी सारी पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती है । हंसो की मीठी वाणी, चक्रवाकों के सुमधुर शब्द तथा अन्यान्य पक्षियों के कलखों द्वारा गङ्गाजी गन्धर्वों

से होड़ लगाती हैं तथा अपने ऊँचे-ऊँचे तटों द्वारा पर्वतों के साथ स्पर्धा करती हैं ।

हंसादिभिः सुवहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम् ।
गङ्गा गोकुलसम्बाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः ॥
न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्नतः ।
सम्भवेद् या परा प्रीतिर्गङ्गायाः पुलिने नृणाम् ॥

हंस आदि बहुसंख्यक एवं विविध पक्षियों से घिरी हुई तथा गौओं के समुदाय से व्याप्त हुई गङ्गाजी को देखकर मनुष्य स्वर्गलोक को भी भूल जाता है । गङ्गाजी के तट पर निवास करने से मनुष्यों को जो परम प्रीति, अनुपम आनन्द मिलता है वह स्वर्ग में रहकर सम्पूर्ण भोगों का अनुभव करने वाले पुरुष को भी नहीं प्राप्त हो सकता ।

वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतो अत्र मे नास्ति संशयः ॥
सप्तावरान् सप्तपरान् पितृंस्तेभ्यश्च ये परे ।
पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वगाह्य च ॥

मन, वाणी और क्रिया द्वारा होने वाले पापों से ग्रस्त मनुष्य भी गङ्गाजी का दर्शन करने मात्र से पवित्र हो जाते हैं - इसमें मुझे संशय नहीं है । गङ्गाजी का दर्शन, उनके जल का स्पर्श तथा उस जल के भीतर स्नान करके मनुष्य सात पीढ़ी पहले के पूर्वजों का और सात पीढ़ी आगे होने वाली संतानों का तथा इनसे भी ऊपर के पितरों और संतानों का उद्धार कर देता है ।

श्रुताभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता ।
गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥
दर्शनात् स्पर्शनात् पानात् तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।
पुनात्यपुण्यान् पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥

जो पुरुष गङ्गाजी का माहात्म्य सुनता, उनके तट पर जाने की

अभिलाषा रखता, उनका दर्शन करता, जल पीता, स्पर्श करता तथा उनके भीतर गोते लगाता है, उसके दोनों कुलों का भगवती गङ्गा विशेषरूप से उद्धार कर देती हैं। गङ्गाजी अपने दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा अपने गङ्गा नाम के कीर्तन से सैकड़ों और हजारों पापियों को तार देती हैं।

य इच्छेत् सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च।
स पितृंस्तर्पयेद् गाङ्गमभिगम्य सुरांस्तथा॥
न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम्।
प्राप्नुयात् पुरुषोऽत्यन्तं गङ्गां प्राप्य यदाप्नुयात्॥

जो अपने जन्म, जीवन और वेदाध्ययन को सफल बनाना चाहता हो, वह गङ्गाजी के पास जाकर उनके जल से देवताओं तथा पितरों का तर्पण करें। मनुष्य गङ्गास्नान करके जिस अक्षय फल को प्राप्त करता है उसे पुत्रों से, धन से तथा किसी कर्म से भी नहीं पा सकता।

जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्गुभिरेव च।
समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम्॥
भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम्।
देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गा नोपसेवत मानवः॥

जो सामर्थ्य होते हुए भी पवित्र जल वाली कल्याणमयी गङ्गा का दर्शन नहीं करते वे जन्म के अन्धों, पंगुओं और मुर्दों के समान हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन गङ्गाजी का सेवन कौन मनुष्य नहीं करेगा ?

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः।
विद्यावद्भिःश्रितां गङ्गां पुमान् को नाम नाश्रयेत्॥
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणः प्रयतः शिष्टसम्मतः।
चिन्तयेन्मनसा गङ्गा स गतिं परमां लभेत्॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और विद्वान् पुरुष भी

जिनकी शरण लेते हैं ऐसी गङ्गाजी का कौन मनुष्य आश्रय नहीं लेगा । जो साधु पुरुषों द्वारा सम्मानित तथा संयतचित मनुष्य प्राण निकलते समय मन ही मन गङ्गाजी का स्मरण करता है वह परम उत्तम गति को प्राप्त कर लेता है ।

न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः ।
आ देहपतनाद् गङ्गामुपास्ते यः पुमानिह ॥
महापुण्यां च गगनात् पतन्तीं वै महेश्वरः ।
दधार शिरसा गङ्गा तामेव दिवि सेवते ॥

जो पुरुष यहाँ जीवनपर्यन्त गङ्गाजी की उपासना करता है उसे भयदायक वस्तुओं से, पापों से तथा राजा से भी भय नहीं होता । भगवान् महेश्वर ने आकाश से गिरती हुई परम पवित्र गङ्गाजी को सिर पर धारण किया उन्हीं का वे स्वर्ग में सेवन करते हैं ।

अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः ।
यस्तु तस्या जलं सेवेत् कृतकृत्यः पुमान् भवेत् ॥
दिवि ज्योतिर्यथाऽऽदित्यः पितृणां चैव चन्द्रमाः ।
देवेशश्च तथा नृणां गङ्गा च सरितां तथा ॥

जिन्होंने तीन निर्मल मार्गों द्वारा आकाश, पाताल तथा भूतल इन तीनों लोकों को अलंकृत किया है उन गङ्गाजी के जल का जो मनुष्य सेवन करेगा वह कृतकृत्य हो जायगा । स्वर्गवासी देवताओं में जैसे सूर्य का तेज श्रेष्ठ है, जैसे पितरों में चन्द्रमा तथा मनुष्यों में राजाधिराज श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार समस्त सरिताओं में गङ्गाजी उत्तम हैं ।

मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्विमुक्तस्य धनेन वा ।
न भवेद्धि तथा दुःखं यथा गङ्गावियोगजम् ॥
नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः ।
तथा प्रसादो भवति गङ्गां वीक्ष्य यथा भवेत् ॥

गङ्गाजी में भक्ति रखने वाले पुरुष को माता, पिता, पुत्र, स्त्री और

धन का वियोग होने पर भी उतना दुःख नहीं होता जितना गङ्गा के विछोह से होता है । इसी प्रकार उसे गङ्गाजी के दर्शन से जितनी प्रसन्नता होती है उतनी वन के दर्शनों से, अभीष्ट विषय से, पुत्रों से तथा धन की प्राप्ति से भी नहीं होती ।

पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ।
तथा त्रिपथगां दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ॥
तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
गङ्गां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत् ॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमा का दर्शन करके मनुष्यों की दृष्टि प्रसन्न हो जाती है, उसी तरह त्रिपथगा गङ्गा का दर्शन करके मनुष्यों के नेत्र आनन्द से खिल उठते हैं । जो गङ्गाजी में श्रद्धा रखता, उन्हीं में मन लगाता, उन्हीं के पास रहता, उन्हीं का आश्रय लेता तथा भक्तिभाव से उन्हीं का अनुसरण करता है, वह भगवती भागीरथी का स्नेह भाजन होता है ।

भूस्थैः स्वःस्थैर्दिविष्ठश्च भूतैरुच्चावचैरपि ।
गङ्गा विगाह्या सततमेतत् कार्यतमं सताम् ॥
विश्वलोकेषु पुण्यत्वाद् गंङ्गायाः प्रथितं यशः ।
यत्पुत्रान्सगरस्येतो भस्माख्याननयद् दिवम् ॥

पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्ग में रहने वाले छोटे-बड़े सभी प्राणियों को चाहिये कि वे निरन्तर गङ्गाजी में स्नान करें । यही सत्यपुरुषों का सबसे उत्तम कार्य है । सम्पूर्ण लोकों में परम पवित्र होने के कारण गङ्गाजी का यश विख्यात है, क्योंकि उन्होंने भस्मीभूत होकर पड़े हुए सगर पुत्रों को यहाँ से स्वर्ग में पहुँचा दिया ।

वाय्वीरिताभिः सुमनोहराभिर्द्रुताभिरत्यर्थसमुत्थिताभिः ।
गङ्गोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धाः सहस्त्ररश्मिप्रतिमा भवन्ति ॥
पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् ।
गङ्गां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं गता धीरास्ते विवुधैः समत्वम् ॥

वायु से प्रेरित हो बड़े वेग से अत्यन्त ऊँचे उठने वाली गङ्गाजी की परम मनोहर एवं कान्तिमती तरंगमालाओं से नहाकर प्रकाशित होने वाले पुरुष परलोक में सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं। दुग्ध के समान उज्ज्वल और घृत के समान स्निग्ध जल से भरी हुई, परम उदार, समृद्धिशालिनी, वेगवती तथा अगाध जलराशि वाली गङ्गाजी के समीप जाकर जिन्होंनेअपना शरीर त्याग दिया है वे धीर पुरुष देवताओं के समान हो गये।

अन्धान् जडान् द्रव्यहीनांश्च गङ्गा यशस्विनी बृहती विश्वरूपा।
देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता सर्वकामैर्युनक्ति॥
ऊर्जावतीं महापुण्यां मधुमतीं च त्रिवर्त्मगाम्।
त्रिलोकगोप्त्रीं ये गङ्गां संश्रितास्ते दिवं गताः॥

इन्द्र आदि देवता, मुनि और मनुष्य जिनका सदा सेवन करते हैं, वे यशस्विनी, विशालकलेवरा गङ्गादेवी अपनी शरण में आये हुए अन्धों, जड़ों और धनहीनों को भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओं से सम्पन्न कर देती हैं। गङ्गाजी ओजस्विनी, परम पुण्यमयी, मधुर जलराशि से परिपूर्ण तथा भूतल, आकाश और पाताल - इन तीनों मार्गों पर विचरने वाली हैं। जो लोग तीनों लोकों की रक्षा करने वाली गङ्गाजी की शरण में आये हैं, वे स्वर्गलोक को चले गये।

यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्यस्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः।
तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति॥
दक्षां पृश्निं बृहतीं विप्रकृष्टां शिवामृद्धां भागिनीं सुप्रसन्नाम्।
विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां गङ्गा गता ये त्रिदिवं गतास्ते।

जो मनुष्य गङ्गाजी के तट पर निवास और उनका दर्शन करता है, उसे सब देवता सुख देते हैं। जो गङ्गाजी के स्पर्श और दर्शन से पवित्र हो गये हैं, उन्हें गङ्गाजी से ही महत्त्व को प्राप्त हुए देवता मनोवाञ्छित गति प्रदान करते हैं। गङ्गा जगत् का उद्धार करने में समर्थ हैं। भगवान् पृश्निगर्भ की जननी 'पृश्नि' के तुल्य हैं, विशाल हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं,

मङ्गलकारिणी हैं, पुण्यराशि से समृद्ध हैं, शिवजी के द्वारा मस्तक पर धारित होने के कारण सौभाग्यशालिनी तथा भक्तों पर अत्यन्त प्रसन्न रहने वाली हैं । इतना ही नहीं, पापों का विनाश करने के लिये वे कालरात्रि के समान हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियों की आश्रयभूता हैं । जो लोग गङ्गाजी की शरण में गये हैं वे स्वर्गलोक में जा पहुँचे हैं ।

ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे ।
तस्या जलं सेव्य सरिद्वराया मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति ॥
इयं गङ्गेति नियतं प्रतिष्ठा गुहस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा ।
प्रतिस्त्रिवर्गा घृतवहा विपाप्मा गङ्गावतीर्णा वियतो विश्वतोया ॥

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओं में भी जिनकी ख्याति फैली हुई है, सरिताओं में श्रेष्ठ उन भगवती भागीरथी के जल का सेवन करके सभी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं । 'ये गङ्गाजी हैं' ऐसा कहकर जो दूसरे मनुष्य को उनका दर्शन कराता है, उसके लिये भगवती भागीरथी सुनिश्चित प्रतिष्ठा (अक्षय पद प्रदान करने वाली) हैं । वे कार्तिकेय और सुवर्ण को अपने गर्भ में धारण करने वाली, पवित्र जल की धारा बहाने वाली और पाप दूर करने वाली हैं । वे आकाश से पृथ्वी पर उतरी हुई हैं । उनका जल सम्पूर्ण विश्व के लिये पीने योग्य है । उनमें प्रातःकाल स्नान करने से धर्म, अर्थ और काम तीनों वर्गों की सिद्धि होती है ।

नारायणादक्षयात्पूर्वजाता विष्णोःपादाच्छिशुमाराद् ध्रुवाच्च।
सोमात् सूर्यान्मेरुरूपाच्च विष्णोः समागता शिवमूर्ध्नो हिमाद्रिम्॥
सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा ।
भव्या पृथिव्यां भागिनी चापि राजन् गङ्गा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम्॥

भगवती गङ्गा पूर्वकाल में अविनाशी भगवान् नारायण से प्रकट हुई हैं । वे भगवान् विष्णु के चरण, शिशुमार चक्र, ध्रुव, सोम, सूर्य तथा मेरुरूप विष्णु से अवतरित हो भगवान् शिव के मस्तक पर आयी हैं और

वहाँ से हिमालय पर्वत पर गिरी हैं । गङ्गाजी गिरिराज हिमालय की पुत्री, भगवान् शङ्कर की पत्नी तथा स्वर्ग और पृथ्वी की शोभा हैं । राजन् ! वे भूमण्डल पर निवास करने वाले प्राणियों का कल्याण करने वाली, परम सौभाग्यवती तथा तीनों लोकों को पुण्य प्रदान करने वाली हैं ।

मधुस्त्रवा घृतधारा घृतार्चिर्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च ।
दिवश्च्युताशिरसाऽऽप्ता शिवेन गङ्गावनीध्रात् त्रिदिवस्य माता॥
योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी शय्याचिरा वारिवहा यशोदा ।
विश्वावती चाकृतिरिष्टसिद्धा गङ्गोक्षितानां भुवनस्य पन्थाः॥

श्रीभागीरथी मधु का स्रोत एवं पवित्र जल की धारा बहाती हैं । जलती हुई घी की ज्वाला के समान उनका उज्ज्वल प्रकाश है । वे अपनी उत्ताल तरङ्गों तथा जल में स्नान-संध्या करने वाले ब्राह्मणों से सुशोभित होती हैं । वे जब स्वर्ग से नीचे की ओर चलीं, तब भगवान् शिव ने उन्हें अपने सिर पर धारण किया । फिर हिमालय पर्वत पर आकर वहाँ से वे पृथ्वी पर उतरी हैं । श्रीगङ्गाजी स्वर्गलोक की जननी हैं । सबका कारण, सबसे श्रेष्ठ, रजोगुण रहित, अत्यन्त सूक्ष्म, मरे हुये प्राणियों के लिये सुखद शैय्या, तीव्र वेग से बहने वाली, पवित्र जल का स्रोत बहाने वाली, यश देने वाली, जगत् की रक्षा करने वाली, सत्स्वरूपा तथा अभीष्ट को सिद्ध करने वाली भगवती गङ्गा अपने भीतर स्नान करने वालों के लिये स्वर्ग का मार्ग बन जाती हैं ।

क्षान्त्या मह्या गोपने धारणे च दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव ।
तुल्या गङ्गा सम्मता ब्राह्मणानां गुहस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यम्॥
ऋषिष्टुतां विष्णुपदीं पुराणां सुपुण्यतोयां मनसापि लोके ।
सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्नास्ते ब्रह्मणः सदनं सम्प्रयाताः ॥

क्षमा, रक्षा तथा धारण करने में पृथ्वी के समान और तेज में अग्नि एवं सूर्य के समान शोभा पाने वालों के गङ्गाजी ब्राह्मण जाति पर सदा अनुग्रह करने के कारण सुब्रह्मण्य कार्तिकेय तथा ब्राह्मणों के लिये भी

प्रिय एवं सम्मानित हैं । ऋषियों द्वारा जिनकी स्तुति होती है, जो भगवान् विष्णु के चरणों से उत्पन्न, अत्यन्त प्राचीन तथा परम पावन जल से भरी हुई हैं, उन गङ्गाजी की जगत् में जो लोग मन के द्वारा भी सब प्रकार से शरण लेते हैं, वे देहत्याग के पश्चात् ब्रह्मलोक में जाते हैं ।

लोकानवेक्ष्यन् जननीव पुत्रान् सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्नान्
तत्स्थानकं ब्राह्ममभीप्समानैर्गङ्गा सदैवात्मवशैरुपास्या ॥
उस्त्रां पुष्टां मिषतीं विश्वभोज्यामिरावतीं धारिणीं भूधराणाम्।
शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां गङ्गां श्रयेदात्मवान् सिद्धिकामः॥

जैसे माता अपने पुत्रों को स्नेह भरी दृष्टि से देखती है और उनकी रक्षा करती है, उसी प्रकार गङ्गाजी सर्वात्मभाव से अपने आश्रय में आये हुए सर्वगुण सम्पन्न लोकों को कृपादृष्टि से देखकर उनकी रक्षा करती है, अतः जो ब्रह्मलोक को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें अपने मन को वश में करके सदा मातृभाव से गङ्गाजी की उपासना करनी चाहिये। जो अमृतमय दूध देने वाली, गौ के समान सबको पुष्ट करने वाली, सब कुछ देखने वाली, सम्पूर्ण जगत् के उपयोग में आने वाली, अन्न देने वाली तथा पर्वतों को धारण करने वाली, श्रेष्ठ पुरुष जिनका आश्रय लेते हैं और जिन्हें ब्रह्माजी भी प्राप्त करना चाहते हैं तथा जो अमृस्वरूप हैं, उन भगवती गङ्गाजी का सिद्धिकामी जितात्मा पुरुषों को अवश्य आश्रय लेना चाहिये ।

प्रसाद्य देवान् सविभून् समस्तान् भगीरथस्तपसोग्रेण गङ्गाम् ।
गामानयत् तामभिगम्य शश्वत् पुंसां भयं नेह चामुत्र विद्यात्॥
उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्ध्या ।
शक्तिर्न मे काचिदिहास्ति वक्तुं गुणान् सर्वान् परिमातुं तथैव॥

राजा भगीरथ अपनी उग्र तपस्या से भगवान् शङ्कर सहित सम्पूर्ण देवताओं को प्रसन्न करके गङ्गाजी को इस पृथ्वी पर ले आये । उनकी शरण में जाने से मनुष्य को इहलोक और परलोक में भय नहीं रहता ।

ब्रह्मन् ! मैंने अपनी बुद्धि से सर्वथा विचार कर यहाँ गङ्गाजी के गुणों का एक अंशमात्र बताया है । मुझमें कोई इतनी शक्ति नहीं है कि मैं यहाँ उनके सम्पूर्ण गुणों का वर्णन कर सकूँ ।

मेरोः समुद्रस्य च सर्वयत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि ।
शक्यं वक्तुं नेह गङ्गाजलानां गुणाख्यानं परिमातुं तथैव ॥
तस्मादेतान् परया श्रद्धयोक्तान् गुणान् सर्वान् जाह्नवीयान् सदैव ।
भवेद् वाचा मनसा कर्मणा च भक्त्या युक्तः श्रद्धया श्रद्दधानः॥

कदाचित् सब प्रकार के यत्न करने से मेरु गिरि के प्रस्तर कणों और समुद्र के जलबिन्दुओं की गणना की जा सके, परन्तु यहाँ गङ्गाजल के गुणों का वर्णन तथा गणना करना कदापि सम्भव नहीं है । अतः मैंने बड़ी श्रद्धा के साथ जो ये गङ्गाजी के गुण बताये हैं, उन सब पर विश्वास करके मन, वाणी, क्रिया, भक्ति और श्रद्धा के साथ आप सदा ही उनकी आराधना करें ।

लोकानिमांस्त्रीन्यशसा वितत्य सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम्।
गङ्गाकृतानचिरेणैव लोकान् पथेष्टमिष्टान् विहरिष्यसि त्वम्॥
तव मम च गुणैर्महानुभावा जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः।
अभिमतजनवत्सला हि गङ्गा जगति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम्॥

इससे आप परम दुर्लभ उत्तम सिद्धि प्राप्त करके इन तीनों लोकों में अपने यश का विस्तार करते हुए शीघ्र ही गङ्गाजी की सेवा से प्राप्त हुए अभीष्ट लोकों में इच्छानुसार विचरेंगे । महान् प्रभावशाली भगवती भागीरथी आपकी और मेरी बुद्धि को सदा स्वधर्मानुकूल गुणों से युक्त करें । श्रीगङ्गाजी बड़ी भक्तवत्सला हैं । वे संसार में अपने भक्तों को सुखी बनाती हैं ।

भीष्म उवाच -

इति परममतिर्गुणानशेषाञ्शिलरतये त्रिपथानुयोगरूपान् ।
बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपान् गगनतलं द्युतिमान् विवेशसिद्धः॥

शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य वाक्यैः सम्बोधितस्तदा ।
गङ्गामुपास्य विधिवत् सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥
तथा त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः ।
गङ्गामभ्येहि सततं प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ॥

भीष्म जी कहते हैं - युधिष्ठिर ! वह उत्तम बुद्धिवाला परम तेजस्वी सिद्ध शिलोञ्छवृत्ति द्वारा जीविका चलाने वाले उस ब्राह्मण से त्रिपथगा गङ्गाजी के उपर्युक्त सभी यथार्थ गुणों का नाना प्रकार से वर्णन करके आकाश में प्रविष्ट हो गया । वह शिलोञ्छवृत्ति वाला ब्राह्मण सिद्ध के उपदेश से गङ्गाजी के माहात्म्य को जानकर उनकी विधिवत् उपासना करके परम दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त हुआ । कुन्तीनन्दन ! इसी प्रकार तुम भी पराभक्ति के साथ सदा गङ्गाजी की उपासना करो । इससे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी ।

अनुशासन पर्व के ही 165वें अध्याय में नित्यस्मरणीय देवता, नदी, पर्वत, ऋषि और राजाओं के नामकीर्तन का माहात्म्य वर्णित है । इसमें पुण्य नदियों में एक बार गङ्गा का नाम आया है । 168वें अध्याय में भीष्म जी का प्राण त्याग, धृतराष्ट्र आदि के द्वारा उनका दाह-संस्कार, कौरवों का गङ्गा के जल से भीष्म को जलांजलि देने, गङ्गाजी का प्रकट होकर पुत्र के लिये शोक करने और श्रीकृष्ण का उन्हें समझाने आदि का वर्णन है । इसमें कुल 37 श्लोक हैं । इसमें श्लोक 21 से 29 तक गङ्गा के शोक एवं विलाप का वर्णन है । तदनुसार उस समय कौरवों द्वारा अपने पुत्र भीष्म को जलांजलि देने का कार्य पूरा हो जाने पर भगवती भागीरथी जल के ऊपर प्रकट हुयी और शोक से विह्वल हो रोदन एवं विलाप करती हुयी कौरवों से कहने लगी - निष्पाप पुत्रगण! मै जो कहती हूँ उस बात को यथार्थरूप से सुनो । भीष्म राजोचित सदाचार से सम्पन्न थे । वे उत्तम बुद्धि और श्रेष्ठ कुल से सम्पन्न थे ।..... राजाओं ! अवश्य ही मेरा हृदय पत्थर और लोहे का बना हुआ है ।

तभी तो अपने प्रिय पुत्र को जीवित न देखकर भी आज यह हृदय फट नहीं जाता है । ..... हाय ! इस पृथ्वी पर बल में जिसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है उसी को शिखण्डी के हाथ से मारा गया सुनकर आज मेरी छाती क्यों नहीं फट जाती ? ऐसी बातें कहकर जब महानदी गङ्गाजी बहुत विलाप करने लगीं तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया और आश्वासन दिया । फिर श्रीकृष्ण आदि सब नरेश गङ्गाजी का सत्कार करके उनकी आज्ञा से वहाँ से लौट आये ।

महाभारत के उद्योग पर्व के 178वें अध्याय में अम्बा और परशुराम जी का संवाद, अकृतव्रण की सलाह, परशुराम और भीष्म का रोषपूर्ण वार्ता तथा उन दोनों का युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र में उतरने का वर्णन है । इस प्रसंग में गङ्गा का उल्लेख हुआ है । अपने पुत्र भीष्म को क्षत्रियहन्ता परशुराम जी के सामने कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिये डटे हुये देखकर ममतामयी माँ का हृदय विह्वल हो उठा और वे भीष्म को युद्ध से विरत करने के लिये अपने स्वरूप को धारण कर समझाने आयीं । भीष्मजी दुर्योधन को उस युद्ध का संस्मरण सुनाते हुये कहते हैं - उस समय समस्त प्राणियों का हित चाहने वाली मेरी माता गङ्गा देवी स्वरूपतः प्रकट होकर बोलीं - बेटा ! यह तू क्या करना चाहता है ? कुरुक्षेत्र में स्वयं जाकर जमदग्निनन्दन परशुराम जी से बारंबार याचना करूँगी कि आप अपने शिष्य भीष्म के साथ युद्ध न कीजिये। बेटा तू ऐसा आग्रह न कर । विप्रवर जमदग्निनन्दन परशुराम के साथ समरभूमि में युद्ध करने का हठ अच्छा नहीं है । ऐसा कहकर वे डाँटने लगीं। अंत में वे फिर बोलीं - बेटा ! क्षत्रियहन्ता परशुराम महादेव जी के समान पराक्रमी हैं । क्या तू उन्हें नहीं जानता जो उनके साथ युद्ध करना चाहता है ?[4]

इतना ही नहीं ममतामयी गङ्गा माँ भीष्म को रण से विमुख न होते हुये देख स्वयं जाकर अपने पुत्र के कल्याण के लिये परशुराम जी से

भीष्म की गलतियों के लिये क्षमा प्रार्थना करने लगीं । विह्वल माँ अपने पुत्र को युद्ध से विरत करने के लिये कभी परशुराम के पास जाती हैं और कभी भीष्म के पास आती हैं । कर्तव्य पालन में जो गङ्गा इतनी कठोर बन जाती हैं कि अपने ही पुत्रों को जन्मते ही मृत्यु प्रदान कर देती हैं वही भगवती गङ्गा अपने भीतर कितनी ममता समाये हुये हैं, महाभारत का यह प्रकरण इस बात का श्रेष्ठतम उदाहरण है ।

उद्योग पर्व के अध्याय 179, 180, 181, 182, 183, 184 तथा 185 में भीष्म और परशुराम के युद्ध का वर्णन है । अध्याय 182 में जब भीष्म के सारथी की मृत्यु हो जाती है तथा स्वयं भीष्म परशुराम जी के बाणों से बिद्ध होकर अचेत हो जाते हैं उस समय का संस्मरण दुर्योधन को सुनाते हुये वे कहते हैं - मैं सहसा उठ कर खड़ा हो गया और देखा कि मेरे रथ पर सारथि के स्थान में सरिताओं में श्रेष्ठ माता गङ्गा बैठी हुयी हैं । कौरव राज ! उस युद्ध में महानदी माता गङ्गा ने मेरे घोड़ो की बागडोर पकड़ रखी थीं । तब मैं माता के चरणों का स्पर्श करके और पितरों के उद्देश्य से मस्तक नवाकर उस रथ पर जा बैठा । माता ने मेरे रथ, घोड़ों तथा अन्यान्य उपकरणों की रक्षा की । तब मैंने हाथ जोड़कर पुनः माता को विदा कर दिया ।[5]

पुनः उद्योग पर्व के 185वें अध्याय में गङ्गा एक बार पुनः नारदादि ऋषियों के साथ परशुराम और भीष्म का युद्ध बन्द कराने आती हैं तथा अध्याय 186 में अम्बा की कठोर तपस्या को देखते हुये गङ्गाजी उससे पूछती हैं - भद्रे ! तू किसलिये शरीर को इतना क्लेश देती है । मुझे ठीक-ठीक बता । तब अम्बा ने गङ्गाजी से कहा कि वह भीष्म के विनाश के लिये कठोर तप कर रही थीं । उसके इस कठोर निर्णय को सुनकर पुत्र प्रेम में विह्वल गङ्गा अम्बा को उसे शापित करती हुयी कहती है - भामिनी ! तू कुटिल आचरण कर रही है । सुन्दर अंगो वाली अबले! तेरा यह मनोरथ कभी पूर्ण नहीं हो सकता । काशीराज कन्ये !

यदि भीष्म के विनाश के लिये तू प्रयत्न कर रही है और व्रत में स्थिर रहकर ही यदि तू अपना शरीर छोड़ेगी तो शुभे ! तुझे टेढ़ी-मेढ़ी नदी बनना पड़ेगा । केवल बरसात में ही तेरे भीतर जल दिखाई देगा । तेरे भीतर तीर्थ या स्नान की सुविधा बड़ी कठिनाई से होगी । तू केवल बरसात की नदी समझी जायेगी । शेष आठ महीने में तेरा पता नहीं लगेगा । बरसात में भी भयंकर ग्राहों से भरी रहने के कारण तू समस्त प्राणियों के लिये अत्यन्त भयंकर और घोरस्वरूपा बनी रहेगी ।[6] जनश्रुति के अनुसार वह वत्सदेश में अम्बा नाम से प्रसिद्ध हुयी तथा अपने आधे शरीर से वत्सदेश में ही एक कन्या होकर प्रकट हुयी ।

इस तरह से हम देखते हैं कि महाभारत में भी गङ्गा का प्रभूत वर्णन है । वह शिव की जटा में विराजने वाली तथा त्रिपथगामिनी हैं । वह ब्रह्मलोकवासिनी देवी हैं जो वसुओं के उद्धार के लिये एवं अगस्त्य द्वारा सुखाये गये समुद्र को भरने के लिये पृथ्वी पर आयी थीं । इन्होंने सगर के साठ हजार पुत्रों का भी उद्धार किया । महाभारत में गङ्गा के माहात्म्य का प्रभूत वर्णन है और पुराणों में वर्णित सम्पूर्ण माहात्म्य इसमें आ गया है । महाभारत में गङ्गा के दैवी स्वरूप के अतिरिक्त उनका लौकिक स्वरूप भी है, जिसमें गङ्गा एक कुशल गृहणी एवं ममतामयी माँ हैं । वे अपने पुत्र भीष्म को परशुराम के कोप से बचाने का एक माँ की तरह ही प्रयास करती हैं तथा असफल होने पर स्वयं सारथ्य कर्म भी स्वीकार करती हैं एवं मूर्छनावस्था में वे परशुराम से भीष्म की रक्षा भी करती हैं। अम्बा के विनाश के लिये तपस्या करने पर वे एक साधारण माँ की तरह ही न्याय के पक्ष में न खड़ा होकर अपने पुत्र के पक्ष में खड़ा होती हैं और अम्बा को शाप तक दे डालती हैं ।



चतुर्थ अध्याय

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में गङ्गा

चौबीस हजार श्लोकों का वाल्मीकीय रामायण प्राचीन भारत का काव्यात्मक इतिहास है । इस ऐतिहासिक काव्य में भी गङ्गा का प्रभूत वर्णन है । इस काव्य के प्रथम काण्ड बालकाण्ड के 23वें, 24वें, 35वें, 36वें, 37वें, 42वें, 43वें, 44वें अध्यायों में गङ्गा का विशेष रूप से वर्णन है तथा 38वाँ, 39वाँ, 40वाँ एवं 41वाँ अध्याय भी गङ्गा की उत्पत्ति के उपक्रम रूप में ही प्रस्तुत है । इन अध्यायों में सगर के पुत्रों की उत्पत्ति उनके विनाश आदि का वर्णन है । इस काव्य के दूसरे काण्ड अयोध्याकाण्ड के 50वें, 52वें एवं 54वें अध्यायों में भी गङ्गाजी का उल्लेख है । इस तरह हम देखते हैं कि पुराणों की भाँति ही गङ्गा महाभारत और रामायण में भी भारतीय संस्कृति को पावन एवं उर्वर बनाती हुयी उन्मुक्त और अविरल रूप से प्रवाहित हैं । वैसे तो गङ्गा का उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड के 23वें सर्ग में ही हो जाता है जब विश्वामित्र सहित श्रीराम और लक्ष्मण का सरयू गङ्गा संगम के समीप पुण्य आश्रम में रात को ठहरते हैं । फिर बालकाण्ड के 24वें सर्ग में गङ्गा का उल्लेख है जब गङ्गा पार करते समय उसमें उठने वाली तुमुलध्वनि के सम्बन्ध में श्रीराम विश्वामित्र से प्रश्न करते हैं । वाल्मीकीय रामायण में गङ्गा का पुनः प्रवेश बालकाण्ड के 35वें अध्याय से होता है जब विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मण के साथ सोनभद्र पार करके गङ्गाजी के तट पर पहुँचते हैं तथा वहाँ रात्रिवास करने का निश्चय करते हैं । यहाँ समस्त मुनिगण गङ्गाजी में स्नान कर पितरों का तर्पण तथा अग्निहोत्र करके अमृत के समान मीठे हविष्य का भोजन करते हैं । फिर सभी

महर्षिगण श्रीराम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र को चारों तरफ से घेर कर गङ्गाजी के तट पर बैठ जाते हैं । तब श्रीराम जी प्रसन्नचित होकर विश्वामित्र से पूछते हैं —

भगवन् श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ।
त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गता नदनदीपतिम् ॥[1]

भगवन् ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि तीन मार्गों से प्रवाहित होने वाली नदी गङ्गाजी किस प्रकार तीनों लोकों में घूमकर नदी और नदियों के स्वामी समुद्र में जा मिली हैं । श्रीरामजी के इस प्रश्न द्वारा प्रेरित होकर महामुनि विश्वामित्र ने गङ्गाजी की उत्पत्ति और वृद्धि की कथा कहना प्रारम्भ किया ।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार गङ्गाजी हिमवान और मैना की दो पुत्रियों गङ्गा और उमा में से प्रथम और ज्येष्ठा हैं । देवताओं ने गङ्गाजी को लोकहित के लिये हिमवान से माँग लिया । इसी अध्याय में गङ्गा के त्रिपथगा होने का उल्लेख करते हुये विश्वामित्र श्रीरामजी से कहते हैं कि पहले तो ये आकाश मार्ग में गयी थीं । तत्पश्चात् ये गिरिराज कुमारी गङ्गा रमणीया देवनदी के रूप में देवलोक में आरूढ़ हुयी थीं । फिर जल में प्रवाहित हो लोगों के पाप दूर करती हुयी रसातल में पहुँची थीं ।

बालकाण्ड के 37वें सर्ग में गङ्गा से कार्तिकेय की उत्पत्ति के प्रसंग का वर्णन है । सर्ग 35 के अनुसार विवाहोपरान्त जब भगवान् शिव और जगन्माता पार्वती जी सौ वर्षों तक सुरति क्रीड़ा में संलग्न थे तब लोकहित में देवताओं ने शिव को रतिक्रीड़ा से विरत करने के लिये उनके पास जा उनसे प्रार्थना की । भगवान् शिव ने देवताओं का अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपना तेज छोड़ दिया जिससे पर्वत और वनों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो गयी । फिर देवताओं ने अग्नि देव से कहा कि वे शिव का तेज धारण कर लें । अग्नि के धारण करते ही वह तेज श्वेत पर्वत के रूप में परिणत हो गया । साथ ही वहाँ दिव्य सरकंडो

का वन भी प्रकट हुआ जो अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी प्रतीत होता था । उसी वन में अग्निजनित महातेजस्वी कार्तिकेय का प्रार्दुभाव हुआ। इधर शिव के साथ प्रणयक्रीड़ारत भगवती पार्वती ने रुष्ट होकर देवताओं को शाप देते हुये कहा - देवताओं ! मैंने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पति के साथ समागम किया था परन्तु तुमने मुझे रोक दिया । अतः अब तुमलोग भी अपनी पत्नियों से संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह जाओगे। आज से तुम्हारी पत्नियाँ संतानोत्पादन नहीं कर पायेंगी । फिर उमा देवी ने पृथ्वी को भी शाप दिया कि उसका एक रूप नहीं रह जायेंगा, वह बहुतों की भार्या होगी । भगवान् शिव हिमालय पर जाकर उमा देवी के साथ तप करने लगे ।

वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के 37वें सर्ग में गङ्गा से कार्तिकेय की उत्पत्ति के प्रसंग का वर्णन है । देवताओं को देव सेना के लिये सेनापति की आवश्यकता थी । अतः ब्रह्मा के निर्देश पर देवताओं ने कैलाश पर्वत पर जाकर अग्निदेव को पुत्र उत्पन्न करने के कार्य में नियुक्त किया । देवताओं ने अग्निदेव को सलाह दी कि वे अपने में संचित शिवतेज को गङ्गाजी में स्थापित कर दें । अग्निदेव ने ऐसा ही किया और वे दिव्यरूपधारिणी गङ्गाजी के चारों तरफ शिव तेज को बिखेर दिया । तब गङ्गाजी के सभी स्रोत शिव तेज से परिपूर्ण हो गये। गङ्गादेवी उस शिव तेज को सह नहीं सकीं और अग्निदेव के परामर्श पर उस तेज को हिमालय पर्वत के पार्श्वभाग में स्थापित कर दिया । गङ्गा के गर्भ से जो तेज निकाला वह तपाये हुये जम्बूनद नामक सुवर्ण के समान कान्तिमान दिखायी देने लगा । पृथ्वी पर जहाँ वह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ वहाँ की भूमि तथा प्रत्येक वस्तु सुवर्णमयी हो गयी । उसके आस-पास का स्थान अनुपम प्रभा से प्रकाशित होने वाला रजत हो गया । उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भू भाग की वस्तुयें ताँबे और लोहे के रूप में परिणत हो गयीं । उस तेजस्वी गर्भ का जो मल

था वही वहाँ रांगा और सीसा हुआ । इस प्रकार पृथ्वी पर पड़कर वह तेज नाना प्रकार के धातुओं के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ । तदनन्तर इन्द्र और मरुद्गणों सहित सम्पूर्ण देवताओं ने वहाँ उत्पन्न हुये कुमार को दूध पिलाने के लिये छहों कृत्तिकाओं को नियुक्त किया । कृत्तिकाओं के द्वारा पोषित होने के कारण ही उस बालक का नाम कार्तिकेय पड़ा ।

बालकाण्ड के 38वें सर्ग में राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति तथा यज्ञ की तैयारी का वर्णन है । तदनुसार महाराज सगर अयोध्या के राजा थे । उनकी दो पत्नियाँ थीं । ज्येष्ठ पत्नी विदर्भ राजकुमारी केशिनी तथा छोटी रानी सुमति थीं । पुत्र प्राप्ति के लिये महाराज सगर दोनों पत्नियों सहित हिमालय पर्वत पर जाकर भृगुप्रस्रवण नामक शिखर पर तपस्या करने लगे । सौ वर्ष पूर्ण होने पर उनकी तपस्या द्वारा प्रसन्न हुये सत्यवादियों में श्रेष्ठ महर्षि भृगु ने राजा सगर को वर दिया कि उनकी एक पत्नी को वंशधर एक पुत्र होगा तथा दूसरी पत्नी को साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे । केशिनी ने महर्षि भृगु से वंश चलाने वाले एक पुत्र का वर प्राप्त किया जबकि सुमति ने साठ हजार पुत्र प्राप्त करने का वर माँगा ।

कुछ काल व्यतीत होने पर बड़ी रानी केशिनी ने सगर के औरस पुत्र असमंजस को जन्म दिया जबकि सुमति ने तुम्बी के आकार का एक गर्भ पिण्ड उत्पन्न किया । उसको फोड़ने से साठ हजार बालक निकले जिन्हें घी से भरे घड़े में रखकर धाइयों ने उनका पोषण किया । असमंजस की दुष्ट प्रकृति को देखते हुये सगर ने उन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया । असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान था । वह बड़ा ही योग्य, सुशील और पराक्रमी था । महाराज सगर के मन में यज्ञ करने का संकल्प जगा और वे यज्ञ की तैयारियों में जुट गये ।

बालकाण्ड के 39वें सर्ग में इन्द्र के द्वारा राजा सगर के अश्व का अपहरण, सगर पुत्रों द्वारा सारी पृथ्वी का भेदन तथा देवताओं द्वारा

ब्रह्माजी को यह सभी वृत्तान्त बताने का वर्णन है । तदनुसार, हिमवान और विन्ध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त है । इसी आर्यावर्त क्षेत्र में महाराज सगर का यज्ञ हुआ । राजा सगर की आज्ञा से यज्ञीय अश्व की रक्षा का भार सुदृढ़ धनुर्धर महारथी अंशुमान ने स्वीकार किया था। परन्तु यज्ञ का वह घोड़ा राजा इन्द्र ने राक्षस का रूप धारण करके चुरा लिया । इस पर राजा सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों को अश्व ढूँढने का दायित्त्व सौंपा । वे सभी राजकुमार सारी पृथ्वी का चक्कर लगाकर भी जब अश्व को न ढूँढ सके तब आपस में एक-एक योजन भूमि का बँटवारा कर उसे खोदने लगे । उन्होंने नागों, असुरों, राक्षसों तथा अन्य दूसरे भूमिगत प्राणियों का संहार करते हुये साठ हजार योजन भूमि खोद डाली । तब गन्धर्वों, असुरों और नागों सहित सम्पूर्ण देवता मन ही मन घबरा उठे और इस संकट से त्राण पाने के लिये सभी ने मिलकर ब्रह्माजी से प्रार्थना की ।

बालकाण्ड के सर्ग 40वें में सगर पुत्रों के भावी विनाश की सूचना देकर ब्रह्माजी का देवताओं को शान्त करने, सगर के पुत्रों का पृथ्वी को खोदते हुये कपिल जी के पास पहुँचने और उनके रोष से जलकर भस्म होने का वर्णन है - तदनुसार देवताओं को अश्वासन देते हुये ब्रह्माजी ने कहा - देवगण ! यह सारी पृथ्वी भगवान् वासुदेव की वस्तु है तथा जिन भगवान् लक्ष्मीपति की यह रानी है वे ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीहरि कपिलमुनि का रूप धारण करके निरन्तर इस पृथ्वी को धारण करते हैं। उनकी कोपाग्नि से ये सभी राजकुमार जलकर भस्म हो जायेंगे ।

पृथ्वी की खुदाई करते समय सगर के साठ हजार पुत्रों को एक पर्वताकार दिग्गज दिखाई दिया जिसका नाम विरूपाक्ष था । इसी विरूपाक्ष ने पर्वतों और वनों सहित इस सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण कर रखा था । जिस समय यह थककर विश्राम के लिये अपने मस्तक को इधर-उधर हटाता था उस समय भूकम्प होने लगता था । यह

पूर्व दिशा का गजराज था । पूर्व दिशा में अश्व को न पाकर वे सभी दक्षिण दिशा में पृथ्वी को खोदने लगे । दक्षिण दिशा में भी उन्हें एक महान् दिग्गज दिखाई दिया । उसका नाम था महापद्म । फिर सगर के पुत्र वहाँ अश्व न पाकर पश्चिम दिशा की पृथ्वी को खोदने लगे । उधर भी उन्हें एक महान् दिग्गज सौमनस का दर्शन हुआ । फिर वे सभी राजकुमार उत्तर दिशा की भूमि खोदने लगे । उत्तर दिशा में उन्हें हिम के समान श्वेतभद्र नामक दिग्गज दिखाई दिया, वह अपने कल्याणमय शरीर से इस पृथ्वी को धारण किये हुये था । वहाँ भी जब सगर पुत्रों को अश्व नहीं मिला तब सबने पूर्वोत्तर दिशा में जाकर रोषपूर्वक एक साथ पृथ्वी को खोदना प्रारम्भ कर दिया । वहाँ उन्होंने सनातन वासुदेव स्वरूप भगवान् कपिल को देखा । राजा सगर के अश्व का वह घोड़ा भी भगवान् कपिल के पास ही चर रहा था । वे कपिल मुनि को ही घोड़े का चोर समझकर उन्हें अपशब्द कहने लगे । तब भगवान् कपिल को बड़ा रोष हुआ और उनके मुख से एक हुँकार निकल पड़ा और उस हुँकार के साथ ही प्रभावशाली महात्मा कपिल ने उन सभी राज पुत्रों को जला कर राख का ढेर कर दिया ।

बालकाण्ड के 41वें सर्ग में सगर की आज्ञा से अंशुमान का रसातल में जाकर घोड़े को ले आने और उन्हें अपने चाचाओं के निधन का समाचार सुनाने का वर्णन है । तदनुसार सगर से आज्ञा प्राप्त कर वीरवर अंशुमान धनुष ओर तलवार लेकर घोड़े का और अपने चाचाओं का पता लगाने चल दिया । उसके महान् तेजस्वी चाचाओं ने पृथ्वी के भीतर जो मार्ग बना दिया था उसी पर अंशुमान राजा सगर से प्रेरित होकर गया । उस महान् तेजस्वी वीर ने एक दिग्गज देखा, जिसकी देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी और नाग सभी पूजा कर रहे थे । अंशुमान ने उस दिग्गज की परिक्रमा करके उससे अपने चाचाओं का समाचार तथा अश्व चुराने वाले का पता पूछा । इसी प्रकार अंशुमान उन

चारों दिग्गजों से मिले और उन सबसे एक ही प्रश्न पूछा और सबका उत्तर भी एक ही था कि तुम्हें अपने कार्य में सफलता मिलेगी तथा तुम घोड़े सहित लौट जाओगे । फिर अंशुमान वहाँ पहुँच गया जहाँ उसके सभी चाचा जलकर राख का ढेर बन चुके थे । दुःखी अंशुमान ने पास ही यज्ञ के घोड़े को भी चरते हुये देखा । महातेजस्वी अंशुमान ने अपने पितरों को जलांजलि देनी चाही पर उसे वहाँ कहीं भी जल नहीं दिखाई दिया । वहाँ उसे अपने चाचाओं के मामा गरुड़ दिखाई दिये । गरुड़ ने अंशुमान से कहा कि उसकी चाचाओं की मृत्यु जगत् के मंगल के लिये हुयी है । इन्हें लौकिक जल से जलांजलि देना उचित नहीं । गरुड़जी ने अंशुमान को प्रेरणा दी कि वे हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजी के जल से अपने चाचाओं का तर्पण करें । उन्होंने कहा कि जिस समय लोकपावनी गङ्गाजी राख के ढेर होकर गिरे हुये उन साठ हजार राजकुमारों को अपने जल से आप्लावित करेंगी, उसी समय उन सबको स्वर्गलोक पहुँचा देंगी । लोक-कमनीय गङ्गाजी के जल से भीगी हुयी यह भस्मराशि इन सबको स्वर्गलोक में भेज देंगी —

गङ्गा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ ।
तस्यां कुरु महाबाहो पितृणां सलिलक्रियाम् ।
भस्मराशिकृतानेतान् प्लावयेल्लोकपावनी ।
तथा क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गाया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥[2]

- वाल्मीकि रामायण 1/41/19-20

गरुड़ की बात सुनकर महातपस्वी अंशुमान घोड़ा लेकर तुरंत लौट आया । यज्ञ में दीक्षित हुये राजा के पास आकर उसने सारा समाचार निवेदित किया और गरुड़ की बतायी हुयी बात भी कह सुनायी । यज्ञ समाप्त करके पृथ्वीपति महाराज सगर अपनी राजधानी को लौट आये। वहाँ आने पर उन्होंने गङ्गाजी को ले आने के विषय पर बहुत विचार

किया किन्तु वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके और इसी तरह अनिश्चय की अवस्था में तीस हजार वर्ष तक राज्य करके स्वर्ग को चले गये ।

इसी काण्ड के सर्ग 42वें में अंशुमान और भगीरथ की तपस्या, ब्रह्माजी को भगीरथ का अभीष्ट वर देकर गङ्गाजी को धारण करने के लिये भगवान् शंकर को राजी करने के निमित्त प्रयत्न करने की सलाह देने का वर्णन है । तदनुसार सगर की मृत्यु के उपरान्त अंशुमान राजा हुये । वे बड़े प्रतापी राजा थे । उनके पुत्र का नाम दिलीप था । अंशुमान दिलीप को राज्य देकर हिमालय के रमणीय शिखर पर चले गये और वहाँ अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे । महायशस्वी अंशुमान ने उस तपोवन में जाकर बत्तीस हजार वर्षों तक तप किया । तपस्या के धन से सम्पन्न हुये उन नरेश ने वहीं शरीर त्याग कर स्वर्गलोक प्राप्त किया । राजा दिलीप पितरों के उद्धार के विषय में किसी निश्चय पर न पहुँच कर रोग से पीड़ित हो मृत्यु को प्राप्त हो गये । धर्मात्मा महाराज भगीरथ को कोई संतान नहीं थी । वे प्रजा और राज्य की रक्षा का भार मन्त्रियों पर रख कर गङ्गाजी को पृथ्वी पर उतारने के प्रयत्न में लग गये और गोकर्ण तीर्थ में बड़ी भारी तपस्या करने लगे । वे अपनी दोनों भुजायें उठाकर पंचाग्नि का सेवन करते और इन्द्रियों को वश में रखकर एक-एक महीने पर आहार ग्रहण करते थे । इस प्रकार घोर तपस्या में लगे हुये महाराज भगीरथ को एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये । इससे प्रजा के स्वामी ब्रह्माजी उन पर बहुत प्रसन्न हुये तथा उनसे वरदान माँगने के लिये कहा । भगीरथ ने कहा - भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो सगर के सभी पुत्रों को मेरे हाथ से गङ्गाजी का जल प्राप्त हो । .... देव मैं संतति के लिये भी आपसे प्रार्थना करता हूँ । हमारे कुल की परम्परा कभी नष्ट न हो । तब ब्रह्मा ने भगीरथ को मनोवांछित वर प्रदान करते हुये उनसे कहा कि वे हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री हेमवती गङ्गाजी को धारण करने के लिये शंकर जी को तैयार करें क्योंकि गङ्गाजी का वेग

पृथ्वी नहीं सह सकेगी । भगवान् ब्रह्माजी ने गङ्गाजी से भी भगीरथ पर अनुग्रह करने के लिये कहा ।

इसी काण्ड के सर्ग 43 में भगीरथ की तपस्या से संतुष्ट हुये भगवान् शंकर का गङ्गा को अपने सिर पर धारण करके बिन्दुसरोवर में छोड़ने, गङ्गाजी के सात धाराओं में विभक्त होने और भगीरथ के साथ जाकर उनके पितरों का उद्धार करने की कथा का वर्णन है । तदनुसार ब्रह्माजी के निर्देश पर राजा भगीरथ केवल अँगूठे के अग्रभाग को टिकाये हुये खड़े होकर एक वर्ष भगवान् शंकर की उपासना में लगे रहे। तब शंकरजी ने प्रसन्न होकर भगीरथ को आश्वासन दिया कि वे गङ्गा को धारण करेंगे ।

श्रीशंकर जी की स्वीकृति मिल जाने पर हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजी, जिनके चरणों में सारा संसार मस्तक झुकाता है, बहुत बड़ा रूप धारण करके अपने वेग को दुःसह बनाकर आकाश से भगवान् शंकर के शोभायमान मस्तक पर गिरीं । उस समय परम दुर्धर गङ्गादेवी ने सोचा था कि मैं अपने प्रखर वेग से भगवान् शंकर को लेकर पाताल में घुस जाऊँगी । पर जब भगवान् शंकर के हिमालयरूपी जटामण्डल की गुफा में गिरि तो फिर वे उसी में भ्रमित होकर रह गयी और किसी भी प्रकार पृथ्वी पर नहीं जा सकीं । वे बहुत वर्षों तक शिव के जटाजूट में ही भटकती रहीं । गङ्गा को शिव की जटा से मुक्त कराने के लिये भगीरथ जी को फिर भारी तपस्या करनी पड़ी । उनकी तपस्या से संतुष्ट हुये शिव ने गङ्गाजी को बिन्दुसरोवर में ले जाकर छोड़ दिया । वहाँ छूटते ही गङ्गाजी की सात धारायें हो गयीं ।

ह्लादनी, पावनी और नलिनी - ये कल्याणमय जल से सुशोभित गङ्गा की तीन मंगलमयी धारायें पूर्व दिशा की ओर चली गयीं । सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु - ये तीन धारायें पश्चिम की ओर प्रवाहित हुयीं। उनकी अपेक्षा जो सातवीं धारा थी वह महाराज भगीरथ के रथ

के पीछे-पीछे चलने लगी । उस समय भूतल निवासी ऋषि और गन्धर्व यह सोचकर कि भगवान् शंकर के मस्तक से गिरा हुआ वह जल बहुत पवित्र है, उसमें आचमन करने लगे । जो शापभ्रष्ट होकर आकाश से पृथ्वी पर आ गये थे वे गङ्गा के जल में स्नान करके निष्पाप हो गये तथा उस जल से पाप धुल जाने के कारण पुनः शुभपुण्य से संयुक्त हो आकाश में पहुँचकर अपने लोकों को पा गये । प्रकाशमान जल के सम्पर्क से आनन्दित हुये सम्पूर्ण जगत् को सदा के लिये ही बड़ी प्रसन्नता हुयी । सब लोग गङ्गा में स्नान करके पापहीन हो गये । जिस ओर भगीरथ जाते उसी ओर समस्त पापों का नाश करने वाली सरिताओं में श्रेष्ठ यशस्विनी गङ्गा भी जाती थीं -

तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः ।
भवांगपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः ॥
शापात् प्रपतिता ये च गगनाद् वसुधातलम् ।
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः ॥
धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः ।
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान् प्रतिपेदिरे ॥
मुमुदे मुदितो लोकस्तेन तोयेन भास्वता ।
कृताभिषेको गङ्गायां वभूव गतकल्मषाः ॥

- वाल्मीकि रामायण 1/43/26-29

उस समय मार्ग में अद्भुत पराक्रमी महामना राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे । गङ्गाजी अपने जल प्रवाह में उनके यज्ञ मण्डप को बहा ले गयीं। राजा जह्नु इसे गङ्गाजी का गर्व समझकर कुपित हो उठे । फिर तो उन्होंने गङ्गाजी के उस समस्त जल को पी लिया । तब देवता, गन्धर्व तथा ऋषि अत्यन्त विस्मित होकर महात्मा जह्नु की स्तुति करने लगे । उन्होंने गङ्गाजी को उस महात्मा नरेश की कथा बता दी। इस पर प्रसन्न होकर महात्मा जह्नु ने गङ्गाजी को पुनः प्रकट कर दिया इसीलिये गङ्गा जह्नु की

पुत्री जाह्नवी कहलाती है । फिर गङ्गा भगीरथ के रथ का अनुसरण करती हुयी समुद्र तक जा पहुँची और राजा भगीरथ के पितरों के उद्धाररूपी कार्य की सिद्धि के लिये रसातल में गयी । तदनन्तर गङ्गा के उस उत्तम जल ने सगर-पुत्रों की उस भस्मराशि को आप्लावित कर दिया और वे सभी राजकुमार निष्पाप होकर स्वर्ग में पहुँच गये ।

बालकाण्ड के 42वें सर्ग में ब्रह्माजी का भगीरथ की प्रशंसा करते हुये उन्हें गङ्गाजल से पितरों के तर्पण की आज्ञा देना और भगीरथ का अपने पितरों का तर्पण करके अपने नगर वापस लौटने का तथा गङ्गा के उपाख्यान की महिमा का वर्णन है । तद्नुसार ब्रह्माजी ने भगीरथ से कहा कि सगर के साठ हजार पुत्रों का उन्होंने उद्धार कर दिया तथा जब तक सागर का जल मौजूद रहेगा तब तक सगर के पुत्र देवताओं की भाँति स्वर्गलोक में रहेंगे । गङ्गा भगीरथ की ज्येष्ठ पुत्री होकर रहेंगी तथा उनके नाम पर भागीरथी नाम से जगत् में विख्यात होंगी । त्रिपथगा, दिव्या और भागीरथी - इन तीनों नामों से गङ्गा की प्रसिद्धि होगी । गङ्गा आकाश, पृथ्वी और पाताल तीनों को पवित्र करती हुयी गमन करती हैं इसीलिये त्रिपथगा मानी गयी हैं —

गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च ।
त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता ॥[4]

ब्रह्माजी ने कहा कि गङ्गा का जल सदा ही स्नान के योग्य है । भगीरथ तुम स्वयं भी इसमें स्नान करो और पवित्र होकर पुण्य फल प्राप्त करो ।

प्लावयस्व त्वमात्मानं नरोत्तम सदोचिते ।
सलिले पुरुषश्रेष्ठ शुचिः पुण्यफलो भव ॥[5]

ऐसा कहकर सर्वलोक पितामह महायशस्वी देवेश्वर ब्रह्माजी देवलोक को लौट गये । गङ्गावतरण के उपाख्यान का उपसंहार करते हुये विश्वामित्रजी भगवान् श्रीराम से कहते हैं - यह गङ्गावतरण का उपाख्यान

आयु बढ़ाने वाला है । धन, यश, आयु, पुत्र और स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला है । जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा दूसरे वर्ण के लोगों को भी यह कथा सुनाता है, उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न होते हैं । ककुत्स्थकुलभूषण ! जो इसका श्रवण करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और आयु की वृद्धि और क्रीर्ति का विस्तार होता है ।

वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में पुनः गङ्गा का उल्लेख इसके 50वें सर्ग में होता है जब भगवान् वनवास के लिये अपनी यात्रा में गङ्गा तट पर पहुँच कर रात्रि में निवास करते हैं और वहाँ निषाद्राज गुह उनका सत्कार करते हैं । तदनुसार - कोसलदेश से आगे बढ़ने पर धैर्यवानों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी मध्यमार्ग से ऐसे राज्य में होकर निकले, जो सुख-सुविधा से युक्त, धन-धान्य से सम्पन्न, कमनीय उद्यानों से व्याप्त तथा सामन्त नरेशों के उपभोग में आने वाला था । उस राज्य में श्रीरघुनाथ जी ने त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गङ्गा का दर्शन किया, जो शीतल जल से भरी हुयी, सेवारों से रहित तथा रमणीीया थीं । बहुत से महर्षि उनका सेवन करते थे । उनके तट पर थोड़ी दूर पर बहुत से सुन्दर आश्रम बने थे, जो उन देवनदी की शोभा बढ़ाते थे । समय-समय पर हर्ष भरी अप्सरायें भी उतरकर उनके जलकुण्ड का सेवन करती हैं । वे गङ्गा सब कल्मष क्षीण करने वाली हैं । देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उन शिवस्वरूपा भागीरथी की शोभा बढ़ाते हैं । नागों और गन्धर्वों की पत्नियाँ उनके जल का सदा सेवन करती हैं । गङ्गा के दोनों तटों पर देवताओं के सैकड़ों पर्वतीय क्रीड़ा स्थल है । उनके किनारे देवताओं के बहुत से उद्यान भी हैं । वे देवताओं की क्रीड़ा के लिये आकाश में भी विद्यमान हैं और वहाँ देवपद्मिनी के रूप में विख्यात हैं। प्रस्तरखण्डों से गङ्गा के जल के टकराने का जो शब्द होता है, वही मानों गङ्गा का अट्टहास है । जल से जो फेन प्रकट होता है वही उस दिव्य

नदी का हास है । कहीं तो उनका जल वेणी के आकार का है और कहीं वे भँवरों से सुशोभित होती हैं । कहीं उनका जल निश्चल और गहरा है। कहीं वे महान् वेग से व्याप्त हैं । कहीं उनके जल से मृदंग आदि के समान घोष प्रकट होता है और कहीं वज्रपात आदि के समान भयंकर शब्द सुनाई पड़ता है । ... जिनके आवर्त लहरों से व्याप्त थे उन गङ्गाजी का दर्शन करके महारथी श्रीराम ने सुमन्त से कहा - सूत ! आज हमलोग यहीं रहेंगे । जिनका जल देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, सर्पों, पशुओं तथा पक्षियों के लिये भी समादरणीय हैं उन कल्याणस्वरूपा, सरिताओं में श्रेष्ठ गङ्गाजी का भी मुझे यहाँ से दर्शन होता रहेगा —

मध्येन मुदितं स्फीतं रम्योद्यानसमाकुलम् ।
राज्यं भोज्यं नरेन्द्राणां ययौ धृतिमतां वरः ॥
तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् ।
ददर्श राघवो गङ्गां रम्यामृषिनिषेविताम् ॥
आश्रमैरविदूरस्थैः श्रीमद्भिः समलंकृताम् ।
कालेऽप्सरोभिर्हृष्टाभिः सेविताम्भोह्रदां शिवाम् ॥
देवदानवगन्धर्वैः किंनरैरुपशोभिताम् ।
नागगन्धर्वपत्नीभिः सेवितां सततं शिवाम् ॥
देवक्रीडशताकीर्णां देवोद्यानयुतां नदीम् ।
देवार्थमाकाशगतां विख्यातां देवपद्मिनीम् ॥
जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम् ।
क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम् ॥
क्वचिदस्तिमितगम्भीरां क्वचिद्वेगसमाकुलम् ।
क्वचिद्गंभीरनिर्घोषां क्वचिद् भैरवनिःस्वनाम् ॥[6]
व्यपेतमलसंघातां मणिनिर्मलदर्शनाम् ।
दिशागजैर्वनगजैर्मत्तैश्च वरवारणैः ॥
तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः ।

सुमन्त्रमब्रवीत् सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥[8]
प्रेक्षामि सरितां श्रेष्ठां सम्मान्यसलिलां शिवाम् ।
देवमानवगन्धर्वमृगपन्नगपक्षिणाम् ॥[9]

अयोध्या काण्ड के 52वें सर्ग में श्रीराम की आज्ञा से गुह का नाव माँगने, श्रीराम का सुमन्त को समझा-बुझाकर अयोध्या लौटाने, फिर तीनों का नाव पर बैठना, सीता की गङ्गाजी से प्रार्थना आदि का वर्णन है । तदनुसार श्रीराम की आज्ञा से निषादराज गुह नाव प्रस्तुत करते हुये हाथ जोड़ कर कहता है - देव ! यह नौका उपस्थित है । बताइये इस समय आपकी और क्या सेवा करुँ ? देवकुमार के समान तेजस्वी तथा उत्तम व्रत का पालन करने वाले श्रीराम ! समुद्रगामिनी नदी को पार करने के लिये आपकी सेवा में यह नाव आ गयी है । अब आप इस पर शीघ्र आरुढ़ होइये । इसके बाद श्रीराम लक्ष्मण और सीता सहित गङ्गा तट पर आते हैं और सुमन्त को समझा-बुझाकर वापस लौटा देते हैं । फिर नाव पर आरुढ़ होकर श्रीराम शास्त्रविधि के अनुसार आचमन करके सीता के साथ प्रसन्नचित्त होकर गङ्गाजी को प्रणाम करते हैं । महारथी लक्ष्मण भी उन्हें मस्तक झुकाते हैं । भागीरथी की बीच धारा में पहुँचकर सती साध्वी विदेहनन्दिनी सीताजी हाथ जोड़ कर गङ्गाजी से यह प्रार्थना करती हैं - देवि गङ्गे ! ये परम बुद्धिमान् महाराजा दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये वन जा रहे हैं। ये आपसे सुरक्षित होकर पिता की आज्ञा का पालन कर सकें ऐसी कृपा कीजिये । वन में पूरे चौदह वर्षों तक निवास करके ये मेरे तथा अपने भाई के साथ पुनः अयोध्या पुरी को लौटेंगे । सौभाग्यशालिनी देवी गङ्गे! उस समय वन से पुनः कुशलपूर्वक लौटने पर सम्पूर्ण मनोरथों से सम्पन्न हुयी मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपका पूजन करुँगी । स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों मार्गों पर विचरने वाली देवी ! तुम यहाँ से ब्रह्मलोक तक फैली हुयी हो और इस लोक में समुद्रराज की पत्नी के रूप

में दिखायी देती हो । शोभाशालिनी देवी ! पुरुष सिंह श्रीराम जब पुनः वन से सकुशल लौटकर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे तब मैं सीता पुनः आपको मस्तक झुकाऊँगी और आपकी स्तुति करुँगी । इतना ही नहीं मैं आपकी प्रिय करने की इच्छा से ब्राह्मणों को एक लाख गौएँ, बहुत से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न प्रदान करुँगी । देवी ! पुनः अयोध्यापुरी में लौटने पर मैं सहस्त्रों घड़े मधु एवं मधुपर्क से भी आपकी पूजा करुँगी। आप मुझ पर प्रसन्न हों । आपके किनारे जो-जो देवता, तीर्थ और मन्दिर हैं उन सबका मैं पूजन करुँगी । निष्पाप गङ्गे ! ये महाबाहु पापरहित मेरे पतिदेव मेरे तथा अपने भाई के साथ वनवास से लौटकर पुनः अयोध्या नगरी में प्रवेश करें । किनारे पहुँचकर शत्रुओं को संताप देने वाले नरश्रेष्ठ श्रीराम ने नाव छोड़ दी और भाई लक्ष्मण तथा विदेहनन्दिनी के साथ आगे को प्रस्थान किया ।

मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता ।
वैदेही प्रांजलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः ।
चर्तुदश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ।
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धिनी ।
त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकं समक्षसे ।
भार्या चोदधिराजस्य लोकंऽस्मिन् सम्प्रदृश्यसे ।
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ।
गवां शतसहस्त्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्य प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ।

सुराघट सहस्त्रेण मांसभूतौदनेन च ।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता ।
यानि त्वत्तीरवासीनि दैवतानि च सन्ति हि ।
तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ।
पुनरेव महाबाहुर्मया भ्रात्रा च संगतः ।
अयोध्यां वनवासात् तु प्रविशत्वनघोऽनघे ।।[10]

इसके बाद गङ्गा का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के सर्ग 80 में होता है जहाँ भरतजी श्रीराम को ही राज्य का उत्तराधिकारी बताकर उन्हें लौटा लाने के लिये चलने के निमित्त व्यवस्था करने के लिये सबको आज्ञा देते हैं तथा अयोध्या से गङ्गातट तक सुरम्य शिखर और कूप आदि से युक्त सुखद राजमार्ग का निर्माण कराते हैं । फिर 89वें सर्ग में भरत का सेना सहित गङ्गापार करके भारद्वाज के आश्रम पर जाने का वर्णन है । इसके बाद वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के 46वें सर्ग में लक्ष्मण का सीताजी को रथ पर बिठाकर उन्हें वन में छोड़ने के लिये ले आने तथा गङ्गाजी के तट पर पहुँचने का वर्णन है । इसके बाद इसी काण्ड के 47वें, 48वें एवं 49वें सर्ग में भी गङ्गाजी का उल्लेख मात्र हुआ है । इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण में गङ्गाजी अपनी यात्रा पूरी करती हैं ।



पंचम अध्याय

गोस्वामी तुलसीदास जी के वाङ्मय में गङ्गा

गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन का सम्पूर्ण सर्जनात्मक यज्ञ माँ गङ्गा के तट पर ही हुआ था । उन्होंने विनयपत्रिका में लिखा भी —

तुलसी तव नीर-तीर विहरत रघुबंस बीर ।

स्वाभाविक ही है कि तुलसी काव्य में गङ्गा को पर्याप्त स्थान मिला है । हम सबसे पहले उनकी लोकप्रसिद्ध कृति रामचरितमानस में गङ्गा के माहात्म्य का अनुशीलन करेंगे फिर एक-एक करके उनके सभी प्रमुख रचनाओं में गङ्गा की खोज करेंगे ।

रामचरितमानस में गङ्गा -

मानस में गङ्गा का प्रवेश बालकाण्ड के दूसरे दोहे के सातवीं अर्धाली से ही हो जाता है । संत समाज का वर्णन करते हुये तुलसीदास जी कहते हैं कि संत समाज मुद मंगलमय है, जो जगत् में चलता-फिरता प्रयागराज है । मुद का अर्थ है आनन्द और मंगल का अर्थ है कल्याण। कल्याण आनन्दमय हो यह आवश्यक नहीं । कड़वी दवा भी कलयाणकारी होती है पर आनन्दायक नहीं । कठोर तपस्या भी कलयाणकारी अर्थात् मंगलकारी होती है पर मुद नहीं । किन्तु साधु समाज तो मुद और मंगल अर्थात् आनन्द और कल्याण दोनों को देने वाला है क्योंकि यहाँ सकल मुद मंगल मूला गङ्गा भक्तिरूप में निरंतर प्रवाहित जो होती रहती हैं —

मुद मंगलमय संत समाजू । जिमि जग जंगम तीरथ राजू ।
रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ।।[1]

यहाँ गङ्गा की तुलना भक्ति से की गई है क्योंकि भक्ति जहाँ **'अनुपम सुख मूला'** होने के कारण मुद है वहीं जीव का आत्यन्तिक

हित करने के कारण मंगलकारी है । गङ्गा भी स्नान-पान करते समय जहाँ शरीर को शीतलता प्रदान कर मुद का अनुभव कराती है वहीं जीव के सभी पापों का मोचन करके उसका मंगल भी करती है ।

इसके बाद बालकाण्ड के ही दोहा पाँच के आठवीं अर्धाली में पुनः गङ्गाजी का नाम आया है । यहाँ तुलसीदास जी साधु और असाधु की तुलना सुधा और सुरा से करते हुये कहते हैं कि दोनों की उत्पत्ति समुद्र से हुयी पर दोनों के स्वभाव विपरीत हो गये । इसी संदर्भ आगे वे साधु की उपमा सुधा, सुधाकर और सुरसरि से देते हुये असाधु की उपमा गरल (विष) अनल (अग्नि) ओर कलिमल सरि (कर्मनाशा) से देते हैं और कहते हैं कि भले और बुरे दोनों अपने-अपने सुयश और अपयश की प्राप्ति करते हैं —

भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू।

इसके बाद बालकाण्ड के दोहा 6 के 8वीं अर्धाली में भी गङ्गा का उल्लेख आता है । प्रकरण है - गोस्वामी जी कह रहे हैं कि भले और बुरे सभी एक ही स्रोत अर्थात् ब्रह्माजी से उत्पन्न हैं, लेकिन गुण-दोष के आधार पर वेदों ने उन्हें पृथक् कर दिया है । वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की सृष्टि गुण और अवगुण से संयुक्त है । दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत, सुधा, जीवन और मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव और जगदीश, धनी-दरिद्र, रंक-राजा, काशी-मगध, सुरसरि-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण और कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-विराग ये सब ब्रह्म सृष्टि में पाये जाते हैं । सभी एक ही स्रोत से उत्पन्न हैं पर वेदशास्त्रों ने गुण-दोष का विभाग कर दिया है —

भलेउ पोंच सब बिधि उपजाये। गनि गुन दोष बेद बिलगाये।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।।

सुख दुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहरु मीचू।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष विभागा।।[3]

उपरोक्त **'कासी मग सुरसरि क्रमनासा'** में काशी और सुरसरि को एक कोटि में तथा मगह और कर्मनाशा को एक कोटि में रखा गया है । काशी मुक्ति देती है - **काश्यां मरणान्मुक्तिः** और गङ्गा मुक्ति और भुक्ति दोनों देती हैं —

धर्मार्थकामरूपाणां फलरूपे निरंजने
सर्वलोकानुग्रहार्थ प्रवर्तेत महोत्तमे ।
गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ।।

आगे तुलसीदास जी इस प्रकरण को पूरा करते हुये कहते हैं कि—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ।।[5]

अर्थात् इस जड़-चेतन और गुण दोषमय विश्व को ब्रह्मा ने रचा है। संतरूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ग्रहण करते हैं।

इसके बाद गङ्गा का उल्लेख करते हुये कवि कहते हैं —

मंगलकरनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ।।[6]

अर्थात् कविता नदी की गति टेढ़ी है जैसे पावन जल वाली गङ्गा की गति है । राम कथा अयोध्या से प्रारम्भ होकर मिथिला गयी, फिर अयोध्या आयी, वहाँ से फिर चित्रकूट, फिर केकय देश, फिर अयोध्या, फिर चित्रकूट इत्यादि से समुद्र से मिलती हुयी लंका और वहाँ से पुनः अयोध्या लौटी । इसी तरह गङ्गा जी भी पहाड़ों पर इधर-उधर बलखाती

मैदानी भाग में आयी । यहाँ भी वे कहीं दक्षिणवाहिनी, कहीं उत्तरवाहिनी तो कहीं पूरबवाहिनी होती हुयी सागर में मिल जाती हैं । जैसे गङ्गाजी प्रवाहरूपा हैं वैसे ही रामकथा भी प्रवाहरूप है । गङ्गाजी टेढ़ी हैं तो राम कथा की चाल भी टेढ़ी है । गङ्गा का जल ब्रह्माण्ड में सबसे पवित्र हैं तो राम कथा भी ब्रह्माण्ड में सबसे पवित्र कथा है । गङ्गा और राम-कथा दोनों ही पापों का नाश करके मुक्ति-भुक्ति प्रदायिनी हैं । जैसे गङ्गा की पवित्रता के आगे उनके बहाव का टेढ़ापन नहीं दिखता है उसी प्रकार रामकथा की पवित्रता के आगे कवियों की कविता की कमी और टेढ़ापन कोई नहीं देखता है ।

बालकाण्ड के दोहा 14 के 9वीं अर्धाली में गोस्वामीजी गङ्गा का उल्लेख यश काव्य और ऐश्वर्य की सार्थकता एवं उद्देश्य बताने के लिये बड़े ही सुन्दर रूप से करते हैं —

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

- राचरितमानस 1/14/9

अर्थात् कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य वहीं अच्छे हैं जो गङ्गाजी की तरह सबको हितकर हों । विष्णुपुराण में गङ्गा को भगवान् विष्णु की कीर्ति कहा गया है । इतिहास में गङ्गा राजर्षि भगीरथ की कीर्ति हैं । गङ्गा की उत्पत्ति जहाँ हमें भगवान् वामन के विराट् रूप का स्मरण कराती हैं वहीं भगीरथ के कठोर तप का भी स्मरण हो आता है । गङ्गा भगवान् विष्णु की विभूति और भगीरथ की कीर्ति हैं । लेकिन गङ्गा केवल वैष्णवों या भगीरथ के पितरों का ही उद्धार नहीं करती हैं, वरन् जड़-चेतन सबका कल्याण करती हैं । हरिद्वार से लेकर गङ्गासागर तक के चार लाख वर्गमील के अपने मैदानी भाग में तथा उसके ऊपर के पहाड़ी भागों में गङ्गा न केवल मनुष्य मात्र के वरन् पशु-पक्षी वनस्पति सबके जीवन का आधार हैं । क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिक्ख, क्या इसाई, यह गङ्गाजी हैं सबकी माई । मुसलमान शायर नजीर बनारसी गङ्गा के प्रति

अपनी श्रद्धा एवं अकीदत को प्रकट करते हुये कहते हैं —

मैनें तो नमाजे भी पढ़ीं हैं अक्सर

गङ्गा तेरे पानी में वजू करके ।

तुलसीदास जी कहते हैं कीर्ति, भूति और काव्य गङ्गा की तरह ही समभाव और सर्वभूत हिते रताः होना चाहिये । जो किसी एक वर्ग या जाति को उकसाये दूसरे को हतोत्साहित करे वह काव्य नहीं काव्य-कलंक है । दिनकर जी की एक कविता काव्य और कीर्ति के इसी उद्देश्य की तरफ संकेत करती है —

चाहे जो भी फसल उगा ले तूँ जल धार बहाता चल ।

चमक उठे चाहे जिसका घर तू मुक्त प्रकाश लुटाता चल ।

रोक न अपने अंतर का वह वेग किसी आशंका से ।

मन में उठे भाव जो उनको, गीत बनाकर गाता चल ।

महाभारत के अनुसार तो धर्म भी वही सच्चा है जो दूसरे धर्मों का बाधक न हो और जो धर्म दूसरे धर्मों का बाधक हो वह धर्म नहीं कुधर्म है —

धर्मं यो बाधते धर्मं न सः धर्मः कुधर्म तत् ।

अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ॥[7]

उक्त अर्धाली में तुलसी गङ्गा को पूरी भारतीय संस्कृति के अग्रदूत के रूप में प्रस्तुत करते हुये और अपने विशाल लोकनायकत्व का परिचय देते हुये कीर्ति, ऐश्वर्य एवं काव्य को गङ्गा की तरह ही सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय होने की प्रार्थना करते हैं ।

बालकाण्ड के 15वें दोहे के पहली एवं दूसरी अर्धाली में तुलसीदास जी काव्य की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती एवं पुण्य की अधिष्ठात्री देवी गङ्गा को एक पंक्ति में रखकर वंदना करते हुये कहते हैं कि अब मैं शारदा एवं गङ्गाजी की वन्दना करता हूँ । दोनों के चरित्र पवित्र और मनोहर हैं । गङ्गा में स्नान करने एवं जल पीने से पाप दूर

हो जाते हैं तो दूसरी देवी अर्थात् भगवद्कथारूपी शारदा देवी के कहने सुनने से अविद्या और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं । गङ्गा और सरस्वती दोनों की एक पंक्ति में वन्दना करने का कारण यह भी है कि दोनों का सम्बन्ध ब्रह्माजी से है - सरस्वती ब्रह्मा के सदन में रहती हैं तो गङ्गा उनके निकट सदा उनके कमण्डलु में रहती हैं । फिर ब्रह्मवैवर्त पुराण में गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी तीनों को भगवान् विष्णु की भार्या कहा गया है —

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि ।।[8]

सीता के रूप में लक्ष्मी की वन्दना तो गोस्वामी जी पहले भी कर चुके हैं और आगे भी करेंगे यहाँ सरस्वती और गङ्गा की भी वन्दना करके भगवान् विष्णु की तीनों पत्नियों की वन्दना कर दी क्योंकि भगवान् राम विष्णु के अवतार भी हैं यथा —

पुनि बन्दऊँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।।[9]

बालकाण्ड के 32वें दोहे के 14वीं अर्धाली में पुनः गङ्गा का नाम आता है —

सेवक मन मानस मराल से। पावन गङ्ग तरंग माल से।

प्रकरण रामचरित एवं राम-नाम के माहात्म्य वर्णन का है । गोस्वामी जी कहते हैं कि भगवान् श्रीराम का चरित्र सेवक के मनरूपी मानसरोवर के लिये हंस के समान हैं तथा बाह्याभ्यान्तर तथा लोक-परलोक के जीवन की पवित्रता के लिये श्रीगङ्गा जी के लहरों के समूह के समान है । जैसे गङ्गाजी की तरंगें अनन्त हैं वैसे ही रामचरित भी अनन्त है —

जथा अनन्त राम भगवाना । तथा कथा कीरत गुन गाना ।

जैसे गङ्गाजी की प्रत्येक लहर पवित्र है वैसे ही श्रीरामजी का प्रत्येक गुनगान पवित्र है ।

बालकाण्ड के 40वें दोहे की पहली अर्धाली में गङ्गा निम्न रूप में फिर आती हैं —

राम भगति सुर सरितहिं जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई।।

प्रकरण चल रहा है श्रीराम की सुकीर्ति व माहात्म्य वर्णन का । राम की सुकीर्ति को पावन सरिता सरयू का रूपक देकर गोस्वामी जी बड़े ही काव्यात्मक ढंग से उसका माहात्म्य प्रस्तुत करते हुये कहते हैं - सुमति ही भूमि है और अगाध हृदय ही गहरा जल है, वेद पुराण समुद्र हैं और साधु मेघ हैं । ये साधु राम सुयशरूपी उत्तम, मीठे, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं । ये जो सगुण लीला का विस्तार से वर्णन करते हैं क्योंकि कथा तो सगुण की होगी, जिसकी कथा हो वह निर्गुण कैसे हो सकता है और जो निर्गुण हो उसकी कथा कैसे हो सकती है? वहीं राम-सुयश जल की निर्मलता है जो हृदयरूपी थल में भावरूपी जल की मलिनता को दूर करती है । वर्णनातीत प्रेमाभक्ति ही इस जल की मधुरता और मीठापन है । राम सुयशरूपी जल सुकृतरूपी धान को हितकर हैं और रामभक्तों का तो यह कथा वर्षारूपी जल जीवन ही है। साधुरूपी मेघों द्वारा बरसाया हुआ राम कथारूपी जल अत्यन्त पावन एवं सुहावन है और मेधारूपी धरणी (अर्थात् धारण करने वाली बुद्धि-धृति) पर होता हुआ श्रवणरूपी मार्ग से सिमट कर और वेगवती हुआ। यहाँ मेधामहिं से तात्पर्य बुद्धि के सम्भरण क्षेत्र से है । जैसे नदियों का संभरण क्षेत्र होता है । जहाँ तक भूमि पर गिरा हुआ जल नदी की तरफ आता है । यहाँ भी जहाँ तक व्यक्ति की श्रवण क्षमता है वहाँ तक उसका मेधामहिं अर्थात् उसकी बुद्धि का धारण क्षेत्र है और इस धारण क्षेत्र में होने वाली कोई भी शाब्दिक हलचल उसके श्रवण मार्ग से होकर उसके अन्तःकरण तक पहुँचती है । इसीलिये यहाँ गोस्वामीजी ने श्रवणरन्ध्र से पहले ही साधुओं के मुखरूपी मेघ से गिरने वाले रामसुयशरूपी जल को मेधा महिगत कहा है । फिर तो मेधा महि के धारण क्षेत्र से होता हुआ

'सिमटि-सिमटि जल भरहि तलावा' के न्याय से श्रवणमार्ग से होता हुआ राम सुयशरूपी जल सुन्दर मानस में भरा और सुन्दर थल पाकर अर्थात् धृति के द्वारा स्थिर हुआ । फिर पुराना होकर अर्थात् अभ्यास से ईश-भजन का स्वभाव बनकर सुन्दर रुचिकारक और शीतल (तीनों तापों को शान्त करने वाला) और सुखदायी (भुक्ति-मुक्ति प्रदायी) हुआ । अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर संवाद जो बुद्धि ने विचार कर रचे हैं वे ही इस सुन्दर पवित्र मानस सर (मानसरोवर) के चार मनोहर घाट हैं । कथा संवाद के माध्यम से आगे बढ़ती हैं । पुराणों में भी कथा की यही शैली है - यथा सूत शौनक, शुकदेव-परिक्षित, नारद-व्यास, वैशम्पायन और मुनिगण आदि । मानस में भी गोस्वामीजी ने इसी संवाद शैली के माध्यम से अपनी कथा प्रस्तुत की है । यहाँ चार प्रसिद्ध संवाद हैं - प्रथम संवाद तो गोस्वामी तुलसीदास जी का उनके पाठकों से है, फिर द्वितीय संवाद के रूप में गोस्वामीजी ने अपना संवाद याज्ञवल्क्यजी और भारद्वाजजी के संवाद से मिलाया - 'यथा **कहौं जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संवाद'**, फिर तृतीय संवाद के रूप में याज्ञवल्क्यजी ने अपना संवाद शिव-पार्वती-संवाद से मिलाया यथा - **'कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद'**, फिर शिवजी ने अपना संवाद भुशुण्डिजी-गरुड़ संवाद से मिलाया । यथा - **'सो संवाद उदार जेहि विधि भा आगे कहब'** ।

भगवान् श्रीराम की निगुर्णरूप की अगाधल अर्थात् जिसकी थाह न पायी जा सके उस जल की अगाधता है । भाव यह है कि **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** के न्याय से श्रीराम का निर्गुणरूप मन, वाणी का विषय न होने के कारण अगाध है । इस मानस सर में अर्थात् भक्त के हृदयरूपी मानस-सरोवर में जो ज़ल भरा है वह श्रीराम-जानकी का यश रूपी जल हैं जो अमृत के समान हैं अर्थात् जीव को जल, मृत्यु के आवर्त से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्रदान करने वाला है ।

साहित्य सौष्ठव के लिये और कथा को सरस बनाने के लिये जो काव्यमय उपमायें दी गई हैं वे ही मन को इस सरोवर में अवगाहन के लिये ललचाने और रमाने वाली लहरों के विलास हैं । जो काव्य शैली के रूप में चौपाइयाँ प्रयुक्त हैं वही इस सरोवर में घनी फैली हुई पुरइनें हैं अर्थात् कमल के पत्ते हैं और कविता की युक्तियाँ उज्ज्वल मोतियों की सुन्दर सीपियाँ हैं । काव्य की अन्य शैलियाँ जैसे छन्द, सोरठा, सुन्दर-सुन्दर दोहे ही इस मानस सर के सुन्दर-सुन्दर कमलों के समूह हैं । सुन्दर और अनुपम अर्थ, सुन्दर-सुन्दर भाव और प्राञ्जल भाषा ही इन कमलों के पराग, मकरंद और सुगन्ध हैं ।

इस सरोवर में इसके काव्य रस एवं भाव रस के मकरन्द का पान करने के लिये सुकृत पुंज सुन्दर भ्रमरों की पंक्ति हैं । भाव यह है कि जैसे कमल के बीच उसकी पंखुड़ियों में गुप्त पराग और पराग में गुप्त मकरन्द होते हैं, उसी तरह इस मानस सर के छन्द, सोरठा, दोहेरूपी कमल के भीतर ही भावरूपी पराग और रसरूपी मकरन्द छिपे हुये हैं । यह भाव और रस सामान्य भवरों की पहुँच से बाहर हैं । यहाँ तक तो कोई सुकृतपुंज वाला भ्रमर ही पहुँच सकता है यथा —

अति खल जे विषयी बक कागा ।
एहि सर निकट न जाहिं अभागा ।।[10]

ज्ञान, वैराग्य और विचार अर्थात् विवेक ही इस सरोवर के मराल हैं । ..... गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसे मानसरोवर तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है तथा बिना युक्ति और साधन के नहीं पहुँचा जा सकता उसी तरह इस रामचरित मानसरोवर तक भी पहुँचना अत्यन्त कठिन है और जिनके पास श्रद्धा का सम्बल और संतो का साथ नहीं है तथा जिन्हें भगवान् श्रीराम के चरणों में प्रीति नहीं है वे कभी भी इस रामचरितमानस सर तक नहीं पहुँच सकते ।

जैसे बड़ी-बड़ी झीलों से वर्ष भर जलप्रदायी नदियाँ निकलती हैं

उसी तरह से इस हृदयरूपी मानसरोवर में प्रभु की भक्ति के प्रति उमंग और उत्साह भर जाने से वह भगवत् प्रेम का उमंग और उत्साह कविता सरिता के रूप में बह चला । जिसमें राम के विमल यश का जल परिपूर्ण है । इस नदी का नाम सरयू है तथा यह सभी मंगलों का मूल है । यह नदी लोक और वेदमतों के मंजुल कूल के बीच प्रवाहित है। यह सुमानसनंदनि अर्थात् इश्वरानुरक्त मन से निःसृत सुमानसनन्दन नदी पवित्र हैं तथा कलि के पापरूपी तिनकों और वृक्षों को उखाड़ फेकने वाली है । विषयी, साधक और सिद्ध ये तीन प्रकार के श्रोता ही इस नदी के किनारे के पुरवें, ग्राम और नगर हैं । भाव यह है कि यह नदी अरण्य में बहने वाली नहीं वरन् लोक में प्रवाहित होने वाली है । संत सभा ही इस नदी के तट की सभी मंगलों की मूल अयोध्या है ।

तुलसी ने रूपकों का जो इतना सुन्दर आयोजन प्रस्तुत किया उसका प्रयोजन है माँ गङ्गा । यह पूरा आयोजन जहाँ जाके कृत्य-कृत्य होता है वहाँ हैं रामभक्ति का मूतिमंतस्वरूप माँ गङ्गा —

रामभगतिसुरसरितहि जाई, मिली सुकीरतिसरजुसुहाई ।

यहाँ एक प्रश्न उठना बहुत ही स्वाभाविक है कि श्री सरयू जी का आविर्भाव सृष्टि के आदि में हुआ । इक्ष्वांकु महाराज के समय में श्री अवध के लिये सरयूजी का आना पाया जाता है और गङ्गाजी की इनके बहुत पीछे इक्ष्वांकु की उन्नीसवीं पीढ़ी में भगीरथजी लाये तो सरयू का गङ्गा में मिलना कैसे कहा गया ?

इस बारे में शास्त्रकारों की जो युक्ति है वह इस प्रकार है - आनन्द रामयाण, यात्राकाण्ड सर्ग चार में इस बात का प्रमाण है कि गङ्गाजी ने ब्रह्माजी से वर माँग लिया था कि कोई भी नदी क्यों न हो, जिससे हमारा संगम हो वह हमारे संगम के आगे हमारे ही नाम से प्रसिद्ध हो, इस कारण से भी सरयू से संगम होने पर सरयू का नाम गङ्गाजी हुआ। यथा —

वरदानात्कलौ शम्भोर्गंगा ख्यातिं गमिष्यति ।

अग्रे सागरपर्यन्तमेनां गङ्गां वदन्ति हि ।
तव पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी ।
इमां तु नेत्रसंभूतां किमद्याग्रे वदाम्यहम् ।
कोटिवर्षसहस्रैश्च कोटिवर्षशतैरपि ।
महिमा सरयूनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै क्षमः ॥[12]

इस वरदान का कारण यह कहा जाता है कि सरयू-सागर-संगम से कुछ दूर पर कपिलजी का आश्रम था । सरयूजी से यह प्रार्थना की गयी की आप अपनी धारा वहाँ ले जाकर सगर पुत्रों को मुक्त करें । पर सरयूजी ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया था कि उनका आर्विभाव अयोध्या के निमित्त था और वे अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगी । तब गङ्गाजी ने यह शर्त रखी कि सरयू संगम के बाद सरयू की धारा का नाम गङ्गा ही पड़े तभी मैं सहस्र धारा होकर सगर पुत्रों को कृतार्थ करूँगी । अतएव उनको यह वर मिला कि किसी भी संगम से आगे तुम्हारा ही नाम चलेगा । सरयू ने भी गङ्गा की यह हठ मान ली ।

लेकिन यहाँ एक बात और कही जा सकती हैं कि सरयू गङ्गा में अपने को विलोडित कर कुछ खोती नहीं हैं वरन् कुछ और ही महिमामंडित हो जाती है ठीक उसी तरह सुकीर्ति यदि भक्ति में परिणत हो जाये तो धन-धन्य हो जाती है । भागवत के अनुसार भी —

धर्मो सुनिष्ठितः पुंसः विष्वक्सेनकथासु यः
नोत्पादयति यदि रतिं श्रममेव हि केवलम् ॥

अर्थात् यदि व्यक्ति द्वारा अच्छी तरह से सुनिष्ठित धर्म, ईश्वर प्रेम में नहीं बदलता है तो वह मात्र श्रम ही है ।

फिर बालकाण्ड के 40वें दोहे के दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं अर्धाली में इस रामकथा के रूपक को आगे बढ़ाते हुये गोस्वामी जी लिखते हैं —

सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।

जुग विच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा।

त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिन्धु समुहानी।

मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही।।[13]

अर्थात् राम सुकीर्तिरूपी जल से भरी हुयी रामभक्तिरूपी गङ्गा आगे प्रवाहित होती हुयी रामस्वरूप सिन्धु की ओर महासंगम के लिये प्रयाण करती हैं । यहाँ गङ्गा को त्रिमुहानी कहा क्योंकि इसमें भाई लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी का पवित्र यश जो युद्ध में प्रकट हुआ मानो वही महानद सोन का इस रामभक्ति गङ्गा में महामिलन है। देव धुनि अर्थात् देवनदी गङ्गाजी सरयू और सोने के बीच फैली ऐसे ही सुहावनी लगती हैं जैसे ज्ञान और वैराग्य से संयुक्त भक्ति सुशोभित होती है । यथा —

श्रुतिसम्मत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

फिर यह दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों तापों का नाश करने वाली त्रिमुहानी अर्थात् सरयू और शोण के साथ संयुक्त गङ्गाजी रामस्वरूप सिन्धु की ओर प्रवाहित हुयी अर्थात् जैसे गङ्गा सरयू और शोण दोनों को सागर से मिला देती हैं वैसे ही भक्ति की धारा भी ज्ञान और वैराग्य को परमात्मा से एकीभूत कर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तथा विरक्त, वैराग्य और विषय की त्रिपुटी को समाप्त कर देती हैं । भाव यह है कि जैसे सभी नदियाँ जो अकेले सागर तक पहुँचने में अक्षम हैं, गङ्गा में अपने को एकीभूत कर सागरसंगम को प्राप्त कर लेती हैं उसी प्रकार समस्त साधनायें भक्ति का हाथ पकड़कर ब्रह्म को प्राप्त कर लेती हैं । आगे तुलसीदास जी कहते हैं कि रामसुयशरूपी सरयू नदी का मूलस्थान साधक का अन्तःकरण है और इसका आत्यान्तिक विकास रामभक्ति में हैं अर्थात् प्रस्तुत रूपक के माध्यम से भक्ति का क्रमिक विकास दिखाया गया है - प्रथम भक्ति, सतसंग, तत्फलस्वरूप रामकथा में रति, फिर श्रेष्ठ जनों के चरणों में भक्ति, फिर उनके द्वारा श्रुत रामकथा का अनुगान । फिर रामनाम में अनुरक्ति और भगवान् में दृढ़ विश्वास । फिर दम, शील

और धर्मानुसार जीवन जीना तथा निरन्तर सत्कर्मों में रति तत्परिणाम स्वरूप समूची सृष्टि को ही सिया राममय देखना और धर्मपूर्ण ढंग से जीविकोपार्जन करते हुये यथालाभ संतुष्टि फिर सरल और निष्कपट अन्तःकरण की प्राप्ति । इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति का प्रादुर्भाव अन्तःकरण में होकर उसका पूर्ण विकास भी अन्तःकरण में ही होता है। गोस्वामी जी यहाँ कहते हैं कि सभी सत्कर्मों की और सुयश की अन्तःकरणोत्पन्न सरयूरूपी वृत्ति ने ईश्वर भक्तिरूपी गङ्गा में मिलकर सागररूपी ब्रह्म संगम को सुनिश्चित कर लिया । रामभक्ति गङ्गा श्रवण मात्र से ही सुजनों का मन पवित्र कर देने वाली है ।

इसके बाद तो बालकाण्ड के दोहा 40 से लेकर दोहा 43 तक रामचरितमानस में गङ्गाचरितमानस दिया गया है । पूरी रामकथा को गङ्गाजी के रूपक के माध्यम से गोस्वामी जी ने बालकाण्ड में ही प्रस्तुत कर दिया है । गङ्गा को यह गरिमा वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों, महाभारत और रामायण में से किसी में भी नहीं मिली है जो गरिमा गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस में माँ को प्रदान किया है । पूरा रामचरितमानस रूपक के माध्यम से गङ्गा में पिरो दिया गया है । पाठक आगे का विवरण पढ़कर स्वयं ही निर्णय कर लें ।

भगवती गङ्गा के माध्यम से रामकथा के रूपक को आगे बढ़ाते हुये कहीं रूपक तो कही उत्प्रेक्षा और उपमा के माध्यम से गोस्वामी जी कहते हैं कि मानस के बीच-बीच में जो विचित्र-विचित्र कथाओं के प्रकरण हैं वे ही मानों नदी के किनारे के आस-पास के वन-बाग हैं । मानस में केवल रामकथा ही नहीं, वरन् सती-त्याग, शिव-विवाह, मनु-शतरूपा, नारदमोह, प्रतापभानु आदि की भी कथायें हैं । यही इस कथा-सरित के किनारे के बाग-वन हैं । नदी में जलचर भी तो होते हैं । तो जो शिवजी की बारात और उनके विचित्र बाराती हैं वे ही इस देवनदी में जलचर हैं। रघुवर-जन्म पर जो आनन्द और बधाइयाँ हुयीं वे ही भँवर और तरंगों

की मन हरने वाली शोभा हैं । चारों भाईयों के बालचरित इस भक्ति गङ्गा के बहुत रंग के बहुत से कमल हैं । महाराज दशरथजी तथा रानियों के सुकृत भ्रमर हैं और कुटुम्बियों के सुकृत जलपक्षी हैं । श्री सीताजी के स्वयंवर की जो कथा है वह इस सुहावनी रामकथा गङ्गा की सुन्दर छवि है जो उसमें छा रही है । आपस में किये गये कथा विषय में पटु और विवेकपूर्ण प्रश्न ही नाव है और कथा व्यासों के माध्यम से उन प्रश्नों के विवेकपूर्ण उत्तर उस नाव के चतुर केवट हैं । इस विमल कथा को सुनकर फिर आपस में उसका अनुकथन ही इस कथा-सरित के तीर्थयात्री हैं । परशुराम जी का क्रोध ही इस कथा मन्दाकिनी की घोर धारा है तथा भगवान् राम के धर्मसम्मत विनयपूर्ण वाणी ही इस धार की भयावहता को कम करने वाले तटबन्ध हैं । ..... कैकेयी की कुमति ही इन घाटों पर लग जाने वाली काई है और सारे उत्पातों का शमन करने वाला भरत का चरित ही इस कथा गङ्गा के किनारे होने वाले जप यज्ञ हैं । ..... इसी तरह से कथा गङ्गा का रूपक 43वें दोहे पर जाकर समाप्त होता है जो इस प्रकार है —

मतिअनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाइ ।।[14]

भाव यह है कि बिना इस आध्यात्मिक गङ्गा के जल में अवगाहन के गोस्वामी जी भी रामकथा कहने का साहस नहीं बटोर पाये । जब सबकी स्तुति करके वे थक गये तब गङ्गा माँ की शरण में आये और अपनी बुद्धि के अनुसार इस उत्तम जल के गुणसमूह को विचार कर और उसमें अपने मन को स्नान कराकर तथा जिस गङ्गा माँ को देखकर सहज ही भगवान् शिव और उनकी लघु-बहन पार्वती जी की याद हो आये उनका स्मरण कर श्रीरामचरित की सुन्दर कथा कहने को प्रवृत्त हुये । कुछ लोग और विशेष करके मानस पीयूष के सम्पादक श्री अंजनी नन्दनशरण जी इस पूरी कथा के रूपक को सरयू पर घटाते हैं पर यह

उचित नहीं, क्योंकि उपरोक्त सभी रूपकों का वर्णन वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ सरयू और शोण दोनों ही गङ्गा में आत्मार्पण कर देती हैं । फिर भक्ति गङ्गा का उदर तो इतना बड़ा है कि उसमें सम्पूर्ण रामचरित आ जाता है । फिर आगे भी रामकथा की उपमा गङ्गा से दी गई है —

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गङ्गा।।[15]

जैसे गङ्गा में सभी नदियों का जल होता है उसी प्रकार इस कथा गङ्गा में **मिली सुकीरति सरजु सुहाई** के अलावा **बिच-बिच कथा बिचित्र बिभागा** अर्थात् विविध कथाओं के भी स्रोत आ मिले हैं जो सरयू में नहीं है ।

इसके बाद बालकाण्ड के 40वें दोहे से भारद्वाज ऋषि के प्रयाग स्थित आश्रम का वर्णन होता है । तदनुसार प्रयाग में भारद्वाज ऋषि रहते हैं जिनका श्रीराम के चरणों में अत्यन्त अनुराग है । वे तपस्वी हैं, शम, दम और दया के आगार हैं और परमार्थ मार्ग के परम सुजान अर्थात् आचार्य हैं । माघ महीने में जब सूर्य मकर राशि पर आते हैं तब प्रयाग के देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यादि सब झुण्ड के झुण्ड आते हैं और सभी आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं । वेणी माधव जी के चरण कमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं । श्री भारद्वाज जी का आश्रम अत्यन्त पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को भाने वाला है । वहाँ सब ऋषि मुनियों का सत्संग होता है तथा वे सब तीर्थराज प्रयाग में स्नान को जाते हैं । प्रातःकाल उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और आपस में एक दूसरे से भगवान् के गुणों की कथा कहते हैं ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं राम पद अति अनुरागा।
तापस सम दमं दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथ पतिहिं आव सब कोई।
देव दनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी।

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखयबटु हरषहिं गाता।[16]

***   *   *   *   *   *   ***

तहाँ होई मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।

मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा।[17]

ब्रह्म निरूपन धर्म बिधि बरनहिं तत्व विभाग।

कहहिं भगति भगवंत के संजुत ज्ञान विराग।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निजनिज आश्रम जाहीं।[18]

कहना नहीं होगा कि यहाँ उपरोक्त रूप में गङ्गा की महिमा का ही वर्णन है । प्रयागराज का माहात्म्य ही गङ्गा, यमुना और सरस्वती के संगम का कारण है ।

बालकाण्ड के ही 69वें दोहे की सातवीं और आठवीं अर्धाली में गङ्गाजी का उल्लेख है । प्रकरण शिव-पार्वती विवाह का है । नारदजी पहले पार्वती के भाग्य में प्रदत्त पति के अवगुणों की चर्चा करते हैं फिर कहते हैं कि इस कन्या के वर में जो-जो दोष हैं वे सब शिव में हैं और भगवान् समर्थ हैं तथा समर्थ में दोष भी गुण हो जाते हैं । उदाहरण देते समय वे गङ्गाजी का उल्लेख करते हुये कहते हैं —

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई ।

सुरसरि कोहु अपुनीत न कहई ।

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाई ।

रवि पावक सुरसरि की नाई ।

अर्थात् गङ्गाजी में शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर उन्हें कोई भी अपवित्र नहीं कहता है । अतः जो सामर्थ्यवान् हैं उन्हें सूर्य, अग्नि और गङ्गाजी की तरह ही दोष नहीं लगता है ।

फिर दोहा 70 के पहली एवं दूसरी अर्धाली में पुनः इसी प्रकरण में गङ्गाजी का उल्लेख करते हुये नारदजी हिमवान से कहते हैं —

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना।

सुरसरि मिलें सो पावन जैसे। ईस अनीसहिं अंतरु तैसे।

भाव यह है कि यदि वारुणी गङ्गाजल से बनाई जाये तो भी संत उसका पान नहीं करेंगे क्योंकि वहाँ गङ्गाजल अविरल और असीम नहीं ससीम हो गया है पर वही अविरल प्रवाहित गङ्गा में शराब की नदी बहा दी जाये तो भी गङ्गा अपवित्र नहीं होंगी । ईश्वर और जीव में भी इतना ही अन्तर है । जीव बोतल में बंद गङ्गाजल की तरह है तो ईश्वर अविरल उन्मुक्त प्रवाहित गङ्गाजल की तरह । तत्वतः एक होते हुये भी दोनों में सामर्थ्य का अंतर है । यहाँ गङ्गा के वक्ष पर सैकड़ों बाँध बनाकर उनकी धारा को अवरुद्ध करने वाले सत्तामदमत्त राजनीतिज्ञों से कहना चाहूँगा कि वे गङ्गा को बाँधकर और उसकी उन्मुक्तता और अविरलता को अवरुद्ध कर न केवल गङ्गा की वरन् पूरी भारतीय संस्कृति की अस्मिता का ही रावण की तरह अपहरण कर रहे हैं ।

बालकाण्ड के 106वें दोहे में भगवान् शिव के विग्रह का वर्णन करते हुये गङ्गा का उल्लेख निम्न रूप में हुआ है —

जटा मुकुट सुर सरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकण्ठ लावन्यनिधि सोह बाल बिधु भाल ॥

- रामचरितमानस बालकाण्ड 106

अर्थात् भगवान् शिव जटा का मुकुट धारण किये हुये हैं और देव नदी गङ्गा उनकी जटाओं में शोभायमान हैं ।

फिर बालकाण्ड के 112वें दोहे की सातवीं अर्धाली में गङ्गा रामकथा के लिये उपमान बनकर आयीं हैं । भगवान् शिव से माता पार्वती श्रीराम के ब्रह्म तत्त्व में जिज्ञासा प्रकट करते हुये रघुपति कथा सुनाने की प्रार्थना करती हैं जिस पर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर कहते हैं —

धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम समान नहिं कोऊ उपकारी।
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गङ्गा।

अर्थात् हे गिरिराजकुमारी ! तुम धन्य हो । तुम्हारे समान कोई भी उपकारी नहीं है क्योंकि तुमने समूचे विश्व का कल्याण करने वाला प्रश्न पूछा है । तुमने श्रीरामकथा विषयक प्रश्न पूछे हैं जो सम्पूर्ण लोकों को पावन करने के लिये गङ्गा के समान है ।

इसके बाद बालकाण्ड के दोहा 211वें के छन्द में भगवती गङ्गा का उल्लेख अहिल्योद्धार प्रकरण के अन्तर्गत हुआ है । यहाँ गङ्गा के विष्णुपदी होने की तरफ गोस्वामी तुलसीदासजी संकेत करते हैं ।

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी।।

इसके बाद 212वें दोहे की पहली और दूसरी अर्धाली में गङ्गा का उल्लेख है । प्रकरण है — अहिल्योद्धार के उपरान्त भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण का जनकपुर की तरफ प्रस्थान । रास्ते में उन्हें गङ्गाजी के दर्शन होते हैं, जो जगत् को पवित्र करने वाली हैं । विश्वामित्र श्रीराम लक्ष्मण को गङ्गावतरण की सभी कथा विस्तार से सुनाते हैं, फिर भगवान् श्रीराम गङ्गाजी में ऋषियों के साथ स्नान करते हैं तथा ब्राह्मणों को बहुत सा दान देते हैं —

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जगपावनि गङ्गा।
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। त्रिबिध दान महिदेवन्हि पाए।

बालकाण्ड के 324वें दोहे के छन्द के 6वीं पंक्ति में गङ्गाजी को भगवान् श्रीराम के चरणकमलों का मकरन्द कहा गया है । जनकजी अपनी पत्नी सुनयना के साथ द्वाराचार के समय अपने दामाद भगवान् श्रीराम के चरणों का प्रक्षालन कर रहे हैं । गोस्वामीजी उनके भाग्य की सराहना करते हुये कहते हैं कि जो चरणकमल सदैव भगवान् शिव के हृदयरूपी मानसरोवर में विराजते हैं, जिनका सच्चे मन से स्मरण करने पर मन के सभी कल्मष भाग जाते हैं, जिन चरणों का स्पर्श करके पातिव्रत धर्म से गिरकर पतित हुयी अहल्या तर गयी और जिन

चरणकमल के मकरंद गङ्गाजी को शिवजी सदैव अपने शीश पर धारण करते हैं, आज उन्हीं चरणों को जनक जी पखार रहे हैं और उनके इस सौभाग्य पर चारों तरफ उनकी जय-जयकार हो रही है —

जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं ।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ।
जे परसि मुनिबनिता लहीं गति रही जो पातकमई ।
मकरंदु जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ।

रामचरित मानस के बालकाण्ड के बाद इस कालजयी नानापुराण निगमागम सम्मत ग्रन्थ के दूसरे सोपान अयोध्याकाण्ड में भी गङ्गाजी का पर्याप्त उल्लेख हुआ है । इस सोपान के मंगलाचरण में ही गङ्गा शिव के शीश पर विराजमान हैं ।

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवपगा मस्तके ।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ।

- रामचरितमानस 2/मंगलाचरणश्लोक

अयोध्याकाण्ड के 43वें दोहे की आठवीं अर्धाली में गङ्गाजी का उल्लेख निम्नरूप में होता है —

रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये।

अयोध्याकाण्ड के 69वें दोहे के आठवीं अर्धाली में गङ्गा आशीर्वाद बनकर प्रकट हुयी हैं । प्रकरण है वनगमन का । भगवती सीता अपनी सासु कौशल्या का चरणस्पर्श कर वन के लिये विदा हो रही हैं । कातर माँ कुछ भी करने में अपने को बेबस पाकर अपनी पुत्रवधू पर आशीर्वाद की वर्षा करते हुये कहती हैं —

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गङ्ग जमुन जलधारा।

- 2/68/8)

गोस्वामी जी की मानस की यह अर्धाली प्रत्येक हिन्दू विवाह में वधू को आशीर्वादित करते हुये पढ़ी जाती है । निश्चित रूप से प्रत्येक हिन्दू माँ विशेषकर उत्तर भारत की हिन्दू माँ अपनी बेटी को ससुराल इसी आशीर्वाद के साथ भेजती है । मानस की लोकमानस में यही सम्प्रेषणीयता ही तो तुलसी को महाकवि, महान् संत से महान् लोकनायक बना देती है और सहज ही उन्हें बुद्ध और आदि शंकराचार्य जी की पंक्ति में ला खड़ा करती है ।

रामवनगमन के ही प्रकरण में गङ्गा का उल्लेख 86वें दोहे की 1 से 7वीं अर्धाली में होता है । सीता और सचिव सुमन्त के साथ दोनों भाई श्रृंगवेरपुर पहुँचते हैं । वहाँ भगवान् राम ने जैसे ही गङ्गा का दर्शन किया रथ से उतर गये और विशेष प्रसन्नता से भरे हुये अपने पूर्वजों की थाती गङ्गा को दण्डवत् प्रणाम किया । फिर लक्ष्मण, सीता एवं सचिव सुमन्त ने भी प्रणाम किया और गङ्गा के दर्शन कर भगवान् राम सबके साथ अत्यन्त सुख प्राप्त किये । भगवान् श्रीराम लक्ष्मण, सीता और सचिव सुमन्त को गङ्गा का माहात्म्य सुनाते हुये कहते हैं कि गङ्गा सभी मुद और मंगल को प्रदान करने वाली हैं । यह सभी सुखों को प्रदान करने वाली तथा सभी प्रकार के कष्टों को हरने वाली हैं । इस प्रकार करोड़ों कथा प्रसंगो को कहते हुये भगवान् श्रीराम गङ्गा के विमल तरंगों का दर्शन कर रहे हैं । सचिव सुमन्त, अनुज लक्ष्मण एवं प्रिया सीता को श्रीराम इस प्रकार देवनदी गङ्गा की महिमा सुना रहे हैं । फिर भगवान् ने गङ्गा में स्नान किया जिससे उनका पंथ-श्रम चला गया, फिर गङ्गा का अत्यन्त पवित्र जल पीते ही उनका मन मुदित हो गया इस प्रकार

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेर पुर पहुँचे जाई।
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी।
लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुख पायउ रामा।
गङ्ग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गङ्ग तरंगा।
सचिवहिं अनुजहिं प्रियहिं सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई।
मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पिअत मुदित मन भयऊ।

इसके बाद बड़ा ही कारुणिक प्रसंग के बीच गङ्गा का उल्लेख होता है । भगवान् राम सुमन्त की सभी प्रार्थनाओं को अस्वीकार करते हुये उन्हें वापस लौटा देते हैं और फिर गङ्गा के तीर पर आकर खड़े हो जाते हैं —

बरबस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आए।

- रामचरितमानस 2/100/1

फिर मानस का सबसे सुन्दर, भक्तिप्रवण, भावप्रवण प्रकरण केवट-प्रसंग आता है । भगवान् राम नाव माँगते हैं केवट नहीं लाता है। परब्रह्म राम आज मुर्तिमंत भक्ति का प्रतीक गङ्गा के तट पर एक हठी भक्त केवट का मनौवल कर रहे हैं । केवट अकड़ता जा रहा है । भगवान् राम झुकते जा रहे हैं । केवट शर्त पर शर्त लगा रहा है और प्रभु स्वीकार करते जा रहे हैं । केवट की अटपटी बातों से उन्हें ऐसी गुदगुदाहट होती है कि वे ठठाकर हँस पड़ते हैं । प्रभु के चरणकमल से उत्पन्न गङ्गा भक्त और भगवान् के इस अनोखे प्रेमालाप की मूकदर्शक बनी हुयी हैं । इस प्रसंग में गङ्गाजी को प्रस्तुत करते हुये गोस्वामी जी लिखते हैं —

पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहमति करषी।[19]

श्रीरघुनाथ जी के चरण-नख को देखकर अर्थात् अपना उत्पत्ति स्थान जानकर और यह समझकर कि बिछड़े हुये चरण का स्पर्श होगा, गङ्गाजी प्रसन्न हुईं पर प्रभु के बचनों को सुनकर मोह ने बुद्धि को आकर्षित कर लिया । भाव यह है कि जब प्रभु ही नरलीला कर रहे हो तो उसमें इतनी स्वाभाविकता आ ही जाती है कि ब्रह्मा और शिव की भी बुद्धि मोहग्रस्त होकर भ्रमित हो जाती है । गङ्गाजी भी प्रभु की इसी

नरलीला में व्यामोहित हो गईं और सोचने लगीं कि कहीं ये कोई सामान्य जन तो नहीं । भक्त के सामने भगवान् झुक गये और भक्त की शर्तों पर अपना पैर धुलवाकर वे गङ्गा पार उतरते हैं ।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।[20]

फिर प्रभु श्रीराम गङ्गाजी में स्नान करते हैं तथा भगवान् शिव के पार्थिव लिंग की पूजा कर उन्हें प्रणाम करते हैं —

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा।

फिर बहुत ही भाव प्रवण दृश्य उपस्थित होता है । युग-युग से सामान्य नारियों की तरह ही सीताजी भी अपना आँचल फैलाकर गङ्गा मईया से अपने सुहाग एवं देवर की कुशलता के लिये प्रार्थना करती हैं। यहाँ सीता उन सभी नारियों का प्रतिनिधित्त्व करती हैं जो कालक्रम का अतिक्रमण कर सतयुग से कलियुग पर्यन्त माँ गङ्गा के सामने आँचल फैलाकर योग-क्षेम की भीख माँगती रही हैं । सीताजी गङ्गाजी से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हुयी कहती हैं कि हे माँ ! मेरा मनोरथ पूर्ण करना ताकि मैं अपने सुहाग एवं देवर के साथ पुनः आकर तुम्हारी पूजा कर सकूँ । सीताजी के इस प्रेमरस से सनी हुयी वाणी को सुनकर गङ्गा के जल से श्रेष्ठ वाणी स्फुटित हुयी । उस श्रेष्ठ देववाणी ने श्रीसीताजी को सम्बोधित करते हुये कहा - हे श्रीराम की प्रिया सीते ! सुनो ! तुम्हारी महिमा, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा प्रताप संसार में कौन नहीं जानता है ? तुम्हारी कृपा दृष्टि से सामान्य जन लोकपाल हो जाते हैं । आठों सिद्धियाँ हाथ जोड़कर तुम्हारी सेवा में खड़ी रहती हैं । तुमने मेरे सामने इतनी बड़ी विनम्रता दिखाकर और मुझ पर कृपाकर मुझे बड़प्पन ही दिया है। फिर भी मैं अपनी वाणी को सफल और कृतकृत्य करने के लिये तुम्हें अवश्य आशीर्वादित करूँगी । तुम अपने प्राणनाथ पति एवं देवर के साथ कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी । तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूरी होंगी तथा तुम्हारा सुयश पूरे विश्व में फैलेगा । गङ्गा के इस मंगलमूल

वाणी को सुनकर तथा गङ्गा को अपने पर कृपालु जान कर सीताजी प्रमुदित हो गयीं —

सियँ सुरसरिहि कहेउ करजोरी। मातु मनोरथ पुरउब मोरी।
पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी।
सुनि सिय बिनय प्रेमरस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी।
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही ।
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ।
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्ह मोहि दीन्हि बड़ाई।
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा।
प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।
पूजहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ ।
गङ्ग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला।[23]

फिर भगवान् श्रीराम श्रीगणेशजी एवं आशुतोष भगवान् शिव का स्मरण कर तथा गङ्गा माता को शीश झुकाकर प्रणाम कर सखा निषादगुह, भाई लक्ष्मण और प्रिया सीता के साथ वन के लिये प्रस्थान किये —

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ।[24]

इसके बाद प्रभु श्रीराम तीर्थराज प्रयाग में पदार्पण करते हैं । भगवान् तीर्थराज का दर्शन करते हैं । तीर्थराज तीर्थों के राजा हैं । अतः राजा के साथ राजा के अंग होने चाहिये, अतएव सावयव रूपकालंकार के द्वारा तीर्थराज के सभी अंगो का गोस्वामीजी वर्णन करते हैं । रघुकुल श्रेष्ठ प्रभु श्रीरामजी ने प्रातःकाल की सब क्रियायें करके तीर्थराज प्रयाग का जाकर दर्शन किया । तीर्थराज अपने सभी अंगों के साथ भगवान् श्रीराम को दर्शन दे रहे हैं । तीर्थराज का मन्त्री 'सत्य' है, 'श्रद्धा' प्यारी स्त्री है और वेणीमाधव सरीखा भलाई करने वाला मित्र है । चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से भण्डार भरा-पूरा है । वहाँ का पुण्य स्थल

ही अत्यन्त सुन्दर देश अर्थात् राजधानी है । वहाँ की पुण्य भूमि ही सुन्दर मजबूत और दुर्गम किला है जिसे शत्रु स्वप्न में भी नहीं पा सकते। सब तीर्थ, प्रयागराज की श्रेष्ठ वीरों की सेना हैं जो पाप की सेना का दलन करने में प्रवीण है दक्ष है । गङ्गा, यमुना और सरस्वती का संगम ही उसका अत्यन्त शोभायमान सिंहासन है । अक्षयवट छत्र है जो मुनियों के मन को लुभा रहा है । यमुनाजी और गङ्गाजी की तरंगे चँवर हैं जिन्हें देखकर दुःख, दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं । पुण्यात्मा और पवित्र साधु उनकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं । समस्त वेद पुराण ही तीर्थराज प्रयाग के दरबार के भाटवृंद हैं जो निरन्तर उनका निर्मल यश गा रहे हैं —

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई।
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी।
चारि पदारथ भरा भँडारु। पुन्य प्रदेस देस अति चारु।
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा।
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलषु अनीक दलन रनधीरा।
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनमोहा।
चँवर जमुन अरु गङ्ग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा।[25]
सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
बंदी वेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम।[26]

सुखसागर प्रभु श्रीराम तीर्थराज का यह वैभव देखकर अत्यन्त ही मुदित हुए । सखा गुह, प्रियासीता एवं अनुज लक्ष्मण से प्रभु स्वयं श्रीमुख से तीर्थराज की महिमा का माहात्म्य कहने लगे । फिर उन्होंने वेणीमाधव का दर्शन किया जिनका स्मरण करने मात्र से ही सभी मंगलों की प्राप्ति हो जाती है । फिर प्रभु गङ्गा, यमुना और सरस्वती के संगम में अर्थात् त्रिवेणी में स्नान करके भारद्वाज के आश्रम में आए —

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।

अस तीरथ पति देख सुहावा। सुखसागर रघुबर सुख पावा।
कहि सिय लखनहिं सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथ राज बड़ाई।
करि प्रणाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।
एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथा बिधि तीरथदेवा।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दण्डवत मुनि उर लाए।

- वहीं 2/106/1-7

मानस के दूसरे सोपान अयोध्याकाण्ड में आगे चलकर भगवती गङ्गा का उल्लेख 131वें दोहे के छठवीं अर्धाली में होता है जहाँ मंदाकिनी नदी का परिचय देते हुये गोस्वामी जी उसे गङ्गा की ही एक धारा बतलाते हैं तथा पुराणोक्त कथा की तरफ संकेत करते हुये कहते हैं कि अतिप्रिया अनुसूयाजी ने गङ्गाजी की यह धारा अपने तपबल से विन्ध्य की उपत्यका में प्रवाहित की —

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि-प्रिया निज तप बल आनी।
सुरसरि धार नाम मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।

- वही 2/131/5-6

भगवान् राम चित्रकूट में पर्णशाला बनाकर प्रवास कर रहे हैं । भगवान् श्रीराम के प्रवास करने से चित्रकूट की महिमा अत्यन्त बढ़ गई है । हाथी, सिंह, बंदर, शूकर और हिरन वैर को छोड़कर सब एक साथ विचरते हैं । जहाँ तक संसार में देवताओं के वन हैं वे सब श्रीरामजी के वन को अर्थात् जिस वन में भगवान् प्रवास कर रहे हैं, देखकर ललचाते हुये उसकी भाग्य की सराहना करते हैं । गङ्गा, सरस्वती, सूर्यकुमारी, नर्मदा, गोदावरी आदि बड़ी-बड़ी महिमामयी नदियाँ और सभी प्रकार के तालाब, समुद्र, नद, मंदाकिनी की बड़ाई कर रहे हैं -

बिवुध बिपिन जहँ लगि जगमाहीं। देखि राम बनु सकल सिहाहीं।
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकल सुता गोदावरि धन्या।[27]

फिर गङ्गाजी का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के 189वें दोहे के दूसरी और तीसरी अर्धाली में हुआ है । प्रकरण है - भरतजी पूरे अयोध्या के समाज और सुरक्षा हेतु सेना लेकर भगवान् श्रीराम को वापस लौटा लाने के लिये चित्रकूट की तरफ प्रयाणरत हैं। जब वे शृंगवेरपुर पहुँचते हैं तो निषादराज गुह को उनपर संदेह हो जाता है कि भरतजी सेना लेकर श्रीरामजी को मारने वन में जा रहे हैं । फिर तो वे अपने निषाद योद्धाओं को युद्ध के लिये ललकारते हुये कहते हैं, साथियों रणसज्जा से सुसज्जित होकर सभी घाटों को रोक लो । सभी मरने के लिये तैयार हो जाओ । भरतजी के समक्ष युद्ध करना है और जीते जी उन्हें गङ्गा पार नहीं करने देना है । पुण्य के सारे सुन्दर अवसर उपस्थित हो गये हैं । एक तो युद्ध में मृत्यु, दूसरे गङ्गाजी का तट एवं तीसरे भगवान् श्रीरामजी का हेतु । भरत जैसे महापुरुष और हम जैसे नीच, ऐसी मृत्यु तो बड़े भाग्य से मिलती है —

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा।
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ।
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छन भंगु सरीरा।
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़े भाग अस पाइऊ मीचू।[28]

आगे 193वें दोहे के 7वीं अर्धाली में भगवान् श्रीराम की तुलना गोस्वामीजी गङ्गा से करते हैं । प्रकरण है भरत और निषादगुह के मिलन का । वशिष्ठजी भरत से कहते हैं कि रामसखा निषादगुह प्रणाम कर रहा है । फिर क्या था रामसखा शब्द सुनते ही भरतजी रथ से उतर कर दोनों भुजायें फैलाये निषादराज की तरफ दौड़ते हैं । निषादराज अपना गाँव जाति और नाम बतलाकर दूर से ही पृथ्वी पर मस्तक झुका कर प्रणाम करते हैं । भरतजी ने निषादराज को भूमि से उठाकर गले से लगा लिया मानो लक्ष्मण कुमार से ही भेंट हो गयी हो । तुलसीदास जी कहते हैं कि निषादराज को यह सौभाग्य इसीलिये प्राप्त हुआ क्योंकि उन्हें श्रीराम ने

अंक में भर लिया था। उनकी वर्णगत छुद्रता इसी कारण से एक पल में धुल कर निर्मल हो गयी जैसे कर्मनाशा का जल यदि गङ्गाजी में मिल जाये तो तुरंत ही पुण्यदायक गङ्गाजल हो जाता है —

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को काहु सीस नहि धरई।

- वही 2/194/7

फिर गङ्गा का उल्लेख 196वें दोहे के तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं अर्धाली में हुआ है । प्रकरण है भरतजी सारी सेना और समाज के साथ गङ्गाजी का दर्शन करते हैं । जिस घाट पर भरतजी खड़े हुये उसे रामघाट कह कर प्रणाम किया और इतने प्रसन्न हुये मानो भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों । सभी अयोध्यावासी माँ गङ्गा को प्रणाम कर रहे हैं और ब्रह्ममय वारि को देखकर अति प्रसन्न हो रहे हैं। फिर सभी माँ गङ्गा के ब्रह्मद्रव में स्नान कर भगवान् श्रीराम चन्द्र के चरणों में आत्यान्तिक प्रीति की याचना कर रहे हैं । भरतजी ने माँ गङ्गा को सम्बोधित करके कहा — माँ गङ्गे तेरी मिट्टी सभी सुखों को प्रदान करने वाली कामधेनु है । हे माँ ! मैं हाथ जोड़कर तुझसे यही वर माँग रहा हूँ मुझे माता सीता एवं प्रभु श्रीराम के चरणों में सहज स्वार्थरहित प्रेम का वरदान दे दो । फिर सभी माताओं को गङ्गा में स्नान करा कर भरतजी वहाँ से प्रयाण करते हैं —

एहिबिधि भरत सेनु सब संगा। दीखि जाइ जग पावनि गङ्गा।
रामघाट कह कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।
करहिं प्रणाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी।
भरत कहेउ सुरसरि तब रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू।
जोरिपानि बर माँगउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।
एहि विधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाई।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ।।

इसके आगे दोहा 202 में भरतजी के प्रयाग प्रवेश का वर्णन है-

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ।

विधिपूर्वक सितासित गङ्गा यमुना के संगम में स्नान किये —

सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने।[29]

यहाँ गोस्वामीजी द्वारा प्रयुक्त 'सितासित' शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह अर्धाली हमें ऋग्वेद के नदीसूक्त के खिलमन्त्र की याद दिला देती है —

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।

भाव यह है कि जो लोग सित (गङ्गा) और असित (यमुना) के संगम पर स्नान करते हैं, वे स्वर्ग को उड़ते हैं और जो धीर लोग तपस्या करते-करते वहाँ शरीर त्याग करते हैं वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

गङ्गा यमुना के संगम में यमुना की श्याम और गङ्गा की धवल लहरों के हिलोरों की शोभा देखते हुये पुलकित होकर भरतजी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। फिर तीर्थराज के माहात्म्य का स्मरण करते हैं जो सकल कामप्रद हैं । राजा के सामने जैसे याचक हाथ फ़ैलाता है वैसे ही भरतजी जो स्वयं क्षत्रिय हैं —

क्षत्रियोऽसि क्षतातत्राता बाहुवीर्योपजीविता ।

आज क्षात्र धर्म छोड़कर भीख माँगते हैं और कहते हैं कि मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँग रहा हूँ क्योंकि आर्त व्यक्ति कोई भी कुकर्म कर सकता है । हे दानियों में सुन्दर कीर्ति वाले तीर्थराज ! ऐसा विचार कर इस याचक की याचना को सफल करें । मुझे धन नहीं चाहिये, धर्म नहीं चाहिये, विश्व का सकल काम नहीं चाहिये, मोक्ष भी नहीं चाहिये । मुझे जन्म-जन्मान्तर तक भगवान् श्रीराम के चरणों में भक्ति चाहिये । धन्य हैं भरत ! आपने तो तीर्थराज को भी धन्य कर दिया । जो तीर्थराज को

भी पवित्र कर सके, जो तीर्थराज का भी तीर्थराज है, जिसकी महिमा तीर्थराज की तरह ही अनन्त है —

भरत महा महिमा सुनु रानी, जानहि राम न सकहिं बखानी।

आज तीर्थराज में खड़ा होकर तीर्थराज को गरिमा प्रदान कर रहा है । भरतजी अपनी याचना में आगे कहते हैं, भले ही राम मुझे कुटिल जाने, समाज हमें गुरु और स्वामी का विश्वासघाती द्रोही समझे, मुझे यश नहीं चाहिये, बस सीता-राम के चरणों में मेरी प्रीति नित्य-प्रति बढ़ती रहे । मेरा प्रेम चातक जैसा हो । बादल कभी भी चातक को याद नहीं करता और जब चातक जल की याचना करता है तो वह पत्थर और वज्रपात करता है, पर यदि चातक की बादल से याचना घट जाये तो इस ब्रह्माण्ड में प्रेम की मर्यादा ही टूट जाये, चातक की 'रटनि' बने रहने और नित्य बढ़ने में ही कल्याण है । जैसे स्वर्ण को तपाने से उसमें मालिन्य नहीं और चमक आ जाती है, उसी प्रकार मेरी भक्ति प्रभु श्रीराम के चरणों में बढ़ती रहे चाहे यह विश्व मेरे कितना भी प्रतिकूल क्यों न हो जाये ।

भला सीता और भरत जैसे याचक हो तो गङ्गा और त्रिवेनी का हृदय क्यों नहीं द्रवीभूत हो जाये । जैसे सीताजी की याचना पर गङ्गाजी बोल पड़ी आज भरत की याचना से धन्य-धन्य हुये त्रिवेणी का हृदय भी डोल उठा और त्रिवेणी के हृदय से मृदुल विमल वाणी स्फुटित हुयी-हे तात भरत ! तुम पूर्णरूपेण साधु हो । तुम्हारा राम के चरणों में अगाध प्रेम है । तुम व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हो, तुम्हारे समान प्रभु राम को इस विश्व में दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है । त्रिवेणी जी का यह आशीर्वाद सुन भरत का तन-मन पुलकित हो गया —

देखत स्यामल धवल हिलोरे। पुलक सरीर भरत कर जोरे।
सकल कामप्रद तीरथ राऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ।
माँगऊ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काहन करइ कुकरमू।

अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी।
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहऊँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।
जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ सुर साहिब द्रोही।
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ।
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई।
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें।
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मुदु बानि सुमंगल देनी।
तात भरत तुम सब विधि साधू। रामचरन अनुराग अगाधू।
बादिगलानि करहु मन माहीं। तुम सम रामहि कोउ प्रियनाही।
तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल।

- वहीं दोहा 204-205

फिर भरतजी तीर्थराज में स्नान कर तथा सभी मुनियों को शीश झुकाकर प्रणाम कर तथा उनसे आज्ञा ले आगे चित्रकूट की तरफ प्रस्थान किये —

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा, नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा।
रिषि आयसु असीस सिर राखी । करि दंडवत बिनय बहुभाखी।
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें।[30]

चित्रकूट में भरत समाज सहित पहुँच गये हैं । शिष्टाचारपूर्वक मिलन कार्यक्रम चल रहा है । सबसे पहले गुरु चरणों में दोनो भाई राम-लक्ष्मण प्रणाम करते हैं । फिर वशिष्ठ जी और निषादराज का अद्भुत और स्तुत्य मिलन होता है । श्रीराम का वसिष्ठ के साथ मिलन पर नहीं, बल्कि वसिष्ठजी का केवट के साथ मिलन पर देवता पुष्प वृष्टि करते हैं। स्यात् हमारा हिन्दू समाज रामचरित मानस के इस स्थल से कुछ सीख

पाता । एक आँकड़े के अनुसार आज चार सौ हिन्दू प्रतिदिन धर्मान्तरण कर रहे हैं । अपने समाज को गलित कुष्ट हो गया है । धीरे-धीरे इसका अंग रोज-रोज गल-गल कर गिर रहा है । यदि हम अपने समाज के इन गिरते हुये गलित घावों पर वसिष्ठ और निषाद के मिलन का रसायन लगायें तो हमारा समाज पुनः स्वस्थ होकर अपने अतीत की गरिमा और शक्ति प्राप्त कर सकता है । सबके साथ मिलते हुये भगवान् गुरु-पत्नी अरुन्धती जी एवं उनके साथ पधारी हुयी मुनियों की पत्नियों एवं ब्राह्मणों की पत्नियों को गङ्गा और पार्वती की तरह सम्मान देते हुये प्रणाम करते हैं —

गुरुतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं।
गङ्ग गौरि सम सब सनमानी। देहि असीस मुदित मृदु बानीं।

- वही 2/244/1-2

इसके बाद गङ्गाजी का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के 287वें दोहे के दूसरी एवं तीसरी अर्धाली में होता है । प्रकरण है, सीताजी अपनी माता के साथ चित्रकूट में अपने परिजनों से एवं पिताजी से मिलती हैं । जनकजी जब सीता को तापस वेष में देखते हैं तो दुःख की जगह उनके मन में परितुष्टि एवं गर्व का भाव भर जाता है । उनका सीना दुःख से सिकुड़ता नहीं है गर्व से चौड़ा हो जाता है । वे बोल उठते हैं हे पुत्रि! तूने दोनों कुल ससुराल और मायके को पवित्र कर दिया । तुम्हारे धवल सुयश को आज पूरा विश्व गा रहा है । फिर जनक जी अपनी बेटी की कीर्ति की तुलना गङ्गाजी से करते हैं जो स्वाभाविक ही है क्योंकि जब पवित्रता की बात चलेगी तो केवल और केवल गङ्गा की बात होगी । जनकजी कह रहे हैं कि जैसे गङ्गा अपने दोनों किनारे पे अवगाहन करने वालों को पवित्र बनाती हैं और उन्हें तार देती है वैसे ही पुत्री तुमने भी अपने से जुड़े निमिवंश और रघुवंश को पवित्र कर दिया । तुमने तो गङ्गा की भी कीर्ति को जीत लिया क्योंकि गङ्गा तो एक देश से आबद्ध

हैं पर तेरी कीर्ति को कोई देश नहीं बाँध सकता । वह तो देश की सीमाओं को तोड़ कर करोड़ों ब्रह्माण्डों में गमन कर रही है । गङ्गा ने तो पृथ्वी पर तीन ही बड़े तीर्थ बनाये हैं अर्थात् केवल हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर ये ही तीन महान तीर्थ बनायें हैं —

गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागर संगमे ।

- मत्स्य पु. 106/54

प्रश्न है यहाँ काशी क्यों छूट गया ? तो उत्तर है कि काशी की महिमा शिव से है गङ्गा से नहीं) पर बेटी तुम्हारी कीर्ति गङ्गा तो अपने तट को छूने वाले सभी साधुओं को इन तीनों तीर्थों की तरह ही महान् बना दिया है । यद्यपि पिता जनक स्नेह के वशीभूत हैं फिर भी वे अतिशयोक्ति नहीं सत्य ही कह रहे हैं पर धन्य है सीताजी का शील जो यह सत्य सुनकर भी सकुचा गईं कि पिता गङ्गा माँ से मेरी तुलना ही नहीं कर रहे हैं वरन् उनसे भी महान् बता रहे । याद आ रही है विवेकानन्द जी की वह ऋषिवाणी सीताजी को अपवित्र कहना सीताजी का अपमान है । सीताजी पवित्र ही नहीं वरन् मूर्तमंत पवित्रता हैं।

तापस वेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोष बिसेषी।
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।
गङ्ग अवनि थल तीनि बड़ेरे। यहि किये साधु समाज घनेरे।
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि महि मनहु समानी।[31]

भगवती गङ्गा का उल्लेख रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में भी है। सीता सहित अयोध्या वापस लौटते समय विमान से ही गङ्गा दर्शन होता है । भगवान् श्रीराम सीताजी से गङ्गा मइया को प्रणाम करने का निर्देश देते हैं मानो उन्हें याद दिला रहे हों कि यह जो मैं तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ सकुशल अयोध्या लौट रहा हूँ यहाँ भगवती गङ्गा का ही आशीर्वाद है —

पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रणाम करु सीता ।[32]

प्रभु का विमान पहले प्रयाग में उतरता है वहाँ भरद्वाज का आतिथ्य स्वीकार कर प्रभु विमान से ही गङ्गा के उस पार शृंगवेरपुर आते हैं । माँ सीता को अपनी प्रार्थना और विनय तथा गङ्गा से की गयी प्रार्थना याद है । माँ ने माँ की, भगवती ने भगवती की, आद्याशक्ति ने आद्याशक्ति की पूजा की और माँ गङ्गा के चरणों में अपना शीश रख दिया । माँ तेरा आशीर्वाद अनमोल है । मैं ही नहीं, जाने कितनी मातायें अपने आँचल फैलाकर अपने बेटों की, कितनी सुहागिनें अपने सिंदूर की, कितने मानव संताने तेरे तट पर करबद्ध अपने पितरों के कल्याण की भीख माँगेंगे । तेरे तट पर प्रार्थना के पुष्प और याचना के दीप लिये खड़ी होने वाली हर नारी सीता ही होगी । माँ तेरे आशीर्वाद का भण्डार तो अक्षय है । ऐसे ही सबकी मनोकामना पूरी करते रहना । माँ के चरणों पर लोटते हुये भगवती सीता ने शायद कुछ यही भाव रखे होंगे जिसे तुलसी ने मात्र कुछ शब्दों में समेटा है । माँ की हर उच्छरित लहर इस पृथ्वीवासियों के लिये तो आशीर्वाद ही है । माँ ने पुनः आशीर्वाद की वर्षा करते हुये कहा हे सुन्दरी सीते ! जग में तेरा अहिवात अभंग और सनातन होगा । अब **जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः** तो इस आशीर्वाद का अर्थ क्या हुआ ? तो इस आशीर्वाद का इतना ही अर्थ है कि जो स्त्री सुहागन मरती है अर्थात् पति के आगे उसकी मृत्यु होती है, उसका अहिवात अभंग है । माँ गङ्गा का ऐसा प्रताप है कि सच्चे मन से जो भी सुहागन माँ से आँचल फैला अपने अहिवात की भीख माँगे तो वह विधवा हो ही नहीं सकती —

सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो।।
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।
दीन्हि असीस हरषि मन गङ्गा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा।।[33]

उत्तरकाण्ड के रुद्राष्टक में फिर गङ्गाजी आयी हैं —

स्फुरन्मौली कल्लोलनी चारु गङ्गा, लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।

- 7/108 रुद्राष्टाक

शिव की जटा में चारु गङ्गा किल्लोल करती हुयी स्फुरित हो रही हैं। अपने भूगोल में यदि हम शिव के स्वरूप का दर्शन करना चाहें तो समाधिस्थ पर्वतराज की हिमाच्छादित चोटियाँ ही मूर्तमन्त शिव हैं। उनके हिमनद से स्रावित हिमालय की द्रवीभूत करुणा ही गङ्गा है और हिमालय की उपत्यका में घने जंगलों की श्यामता (जिसे आज के क्रूर मानव जाति ने लगभग समाप्त कर दिया है) शिव की जटायें हैं। महाभारत में आया है कि शिव ने आकाश से उतरती गङ्गा को हरिद्वार में धारण किया। अतः हिमालय की ऊँचाइयों में बहती गङ्गा ही मन्दाकिनी या आकाश गङ्गा है। हरिद्वार से सागर तक की गङ्गा भागीरथी अर्थात् पृथ्वी तक की गङ्गा है। फिर महाभारत में ही आया है कि भगीरथ के पुरखों को तारने के लिये गङ्गा ने पाताल में प्रवेश किया अर्थात् समुद्र की गोद में अपनी ससुराल में बैठी गङ्गा कुलवधू की तरह असूर्यपश्या पाताल गङ्गा हैं।

फिर उत्तरकाण्ड के 127वें दोहे की पाँचवीं अर्धाली में पुनः गङ्गा प्रकट होती हैं। प्रकरण है — भुशुण्डि-गरुड़ संवाद का। भुशुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं कि वह देश धन्य है जहाँ से होकर गङ्गा बहती है और वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्म का अनुसरण करती है —

धन्य देस सो जहँ सुरसरि, धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।[34]

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड (27/69) में आया है कि गङ्गा के तट पर सभी काल शुभ हैं, सभी देश शुभ हैं और सभी लोग दान ग्रहण करने योग्य हैं। गङ्गा को और पतिव्रता स्त्री को एक ही अर्धाली में रख कर तुलसीदास जी यह संदेश देना चाहते हैं कि गङ्गा और पतिव्रता स्त्री एक समान हैं। पुराणों में स्वयं गङ्गाजी का कथन है कि मैं जितना एक पतिव्रता को देखकर प्रसन्न होती हूँ उतना जप-तप और पूजनादि से भी

नहीं प्रसन्न होती हूँ ।[35]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानस जो नाना पुराण-निगम-आगमसम्मत है, उसमें भी गङ्गा को बड़ी श्रद्धा, सम्मान के साथ प्रस्तुत किया गया है एवं उन्हें भक्तिगङ्गा के रूपक से मानस के सर्वोच्च सम्मान से विभूषित किया गया है ।

विनयपत्रिका में गङ्गा -

दो सौ उन्यासी पदों की यह पत्रिका तुलसी का आत्मनिवेदन है जो हमारे सामने उनका आध्यात्मिक पक्ष प्रस्तुत करती है । रामचरितमानस यदि तुलसी का लोक पक्ष है तो विनयपत्रिका आध्यात्मिक पक्ष । वास्तव में तुलसी की स्वान्तः सुखाय रचना रामचरितमानस नहीं वरन् विनय पत्रिका है । रामचरितमानस की भाषा अवधी है तो विनय पत्रिका की भाषा ब्रज है । विनय पत्रिका में गोस्वामी ज़ी सबसे पहले गणेश जी की स्तुति एक पद में करते हैं, फिर दूसरे में भगवान् सूर्य की । फिर तीसरे पद से लेकर चौदहवें पद तक कुल बारह पदों में भगवान् शिव से विनय करते हैं । फिर 15वें एवं 16वें पदों में देवी स्तुति है और 17वें से लेकर 20वें पद अर्थात् कुल चार पदों में गङ्गा की स्तुति करते हैं । इसी तरह विनय पत्रिका में यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, श्रीसीता जी, प्रभु श्रीराम जी, श्रीराम नाम की स्तुति विनय के पदों द्वारा करते हैं । गोस्वामीजी स्तुति चाहे जिसकी भी करें पर सबसे रामचरण रति ही माँगते हैं । यही विनयपत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता है ।

विनयपत्रिका में गङ्गा की स्तुति बड़े ही भावप्रवणता के साथ गोस्वामीजी कर रहे हैं । विनय पत्रिका के 17वें पद में वे गङ्गा से श्रीराम भक्ति कैसे माँग रहे हैं यह उन्हीं के शब्दों में द्रष्टव्य है —

जय जय भगीरथ नन्दिनि, मुनि-चय-चकोर चन्दिनि,
नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि जय जह्नु बालिका ।

विष्णु-पद सरोजजासि, ईस-सीस पर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥ 1 ॥
बिमल-बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,
भँवर बर विभंगतर तरंग-मालिका ।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भंजन भवभार, भक्ति-कल्पथालिका ॥ 2॥
निजतटबासी बिहंग, जल-थल-चर पसु-पतंग,
कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर-तीर सुमिरत रघुबंस बीर,
विचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥ 3 ॥

इसी तरह 18वें पद में वे गङ्गा को जगद्खिल-पावनी तो 19वें में त्रिविध तापों को हरने वाली कहते हैं । 20वें पद में 'सगर सुवन साँसति समनि, जलनिधि जलभरनि' कह कर पुराणोंक्त कथाओं की तरफ निर्देश करते हैं । गंगा की जलधार की तरह ही अपनी बानी को भी पूज्य स्तुत्य एवं श्रेष्ठ बनाने की प्रार्थना करते हैं । माँगने का भी यह कितना उदात्त दृष्टिकोण है ? क्या हमने गङ्गा से कभी भी अपने जीवन को उनकी जलधारा की तरह ही लोकहित में प्रहवमान, निष्पाप और निर्मल बनाने की प्रार्थना की है —

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पाताल-धरनि ।
सुर-नर-मुनि-नाग-सिद्ध-सुजन मंगल करनि ॥ 1 ॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि ।
सगर सुवन साँसति-समनि, जलनिधि जलभरनि ॥ 2 ॥
महिमा की अवधि करसि बहु बिधि हरि-हरनि ।
तुलसी करु बानि बिमल, बिमल बारि बरनि ॥ 3 ॥

उपरोक्त पद की विशेषता यह है कि उसमें तुलसीदास जी विष्णु के चरणकमलों से उत्पन्न होने, ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने और शिव की

जटा में सुशोभित होने का गङ्गा का सौभाग्य नहीं मान रहे हैं, वरन इन तीनों महादेवों का सौभाग्य मान रहे हैं, जो गङ्गा से येन-केन प्रकारेण जुड़ कर माहात्म्य और बड़प्पन की सीमा को छू लिये । पद्माकर जी ने भी गङ्गा को विधि के कमण्डलु की सिद्धि एवं भगवान् विष्णु के पद का प्रताप तथा भगवान् शिव के जटा में रहकर उनकी पापनाशिनी शक्ति कहा है, पूरा कवित्त द्रष्टव्य है -

विधि के कमण्डलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरिपद पंकज प्रताप की लहर हैं ।
कहै परमाकर गिरीस़ सीस मंडल के,
मुंडन की माल तत्काल अघहर हैं ।
भूपति भगीरथ के रथ का सुपुण्य पथ,
जह्नु जप जोग फलै की फहरु है ।
क्षेम की दहर गङ्ग ! रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जम जाल को जहर है ।

<u>कवितावली में गङ्गा-</u>

कवितावली के अयोध्याकाण्ड में केवट के पाद प्राक्षालन प्रकरण के अन्तर्गत गङ्गा का उल्लेख हुआ है । भगवान् श्रीराम गङ्गातट पर खड़े होकर केवट से नाव की याचना कर रहे हैं । भक्तिभाव से विह्वल तुलसी की भावधारा गङ्गा से समान ही प्रवाहित हो उठती है -

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिलकन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े ।
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े ।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारें ह्वै ठाढ़े ।।

(कवि. अयो.5)

द्रवीभूत भक्ति गङ्गा के तट पर खड़े ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीराम की भक्तवत्सलता पर गोस्वामी जी न्यौछावर हैं । तीनों लोकों को

मनोवांछित काम प्रदान करने वाले प्रभु आज एक हठीले भक्त को इतना मान दे रहें हैं कि अपने सारे माहात्म्य को विस्मृत कर गङ्गा-पार जाने के लिये नाव माँग रहे हैं । तुलसी की काव्यमयी भाव सरिता प्रवाहित हो उठती है । वे कहते हैं कि जिसके नाम ने संसाररूपी अपार नदी में डूबते हुये अजामिल जैसे करोड़ों पापियों का उद्धार कर दिया और जिसके स्मरणमात्र से सुमेरु के समान पर्वत बालू के कण के समान और समुद्र अजाखुर के समान हो जाता है, जिनके चरणकमल से बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली गङ्गा प्रकट हुयी हैं, वे सामर्थ्यवान प्रभु आज इस नदी को पार करने के लिये नाँव माँग रहे हैं ।

प्रभु अंत में भक्त के आगे झुक जाते हैं । **'सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई'** पर भक्त को भगवान् की यह भगवत्ता की अकड़ के साथ झुकना भाता नहीं है । वह कहता है कि आपने अपने चरणों को बड़ा दुर्लभ बना डाला है । योगी, संन्यासी एवं तपस्वी के पास तो कर्म की पुण्य की पूँजी होती है, वे उसे लुटाकर आपका चरण प्राप्त करते हैं, पर मेरे जैसा भक्त इतना महँगा सौदा नहीं कर पायेगा । इसलिये आज मैं आपके चरणों को भक्तों के लिये सुलभ और सस्ता बना देना चाहता हूँ । घुमा-फिरा कर नहीं, सीधे-सीधे अपने मुख से कहिये कि, मेरा चरण धोओ । प्रभु श्रीराम भक्त के हठ को स्वीकार कर लेते हैं और कहते हैं —

बेगि आनु जल पाँय पखारु। होत बिलम्ब उतारिअ पारु।

फिर क्या था ? भक्त काठ के कठौता में गङ्गाजल लेकर सपरिवार परम सौभाग्य महोत्सव मनाते हुये प्रभु के चरण को प्रक्षालित करने लगता है । उसकी भावधारा गोस्वामी जी के शब्दों में बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त होती है —

जिन्हको पुनीत बारि धारैं सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहैं गाइकै ।

जिन्हको जोगीन्द्र मुनि बृंद देव देह दमि,
करत बिविध जोग-जप मनु लाइकै ।
तुलसी जिन्हकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लेवाइकै ।
तेई पाय पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनो कै ह्वेहौन हँसाइ कै ।

केवट आज अपने भाग्य पर मुग्ध है । वह सोच रहा है कि कौन कहता है परमात्मा दुर्लभ है । अरे थोड़ा सा प्रेम दो और उसे बेमोल खरीद लो । परमात्मा से सस्ता तो इस सृष्टि में कुछ भी नहीं है । पर है क्या कि -

साँची प्रीति विषय माया सूँ, हरि भगति सूँ हासीं ।
कहै कबीर प्रेम नहि उपज्या, अंत पड़ै जम फाँसी ।

हमें प्रेम परमात्मा से तो है नहीं, संसार से है । जैसे हम घर का पैसा बाजार में रखकर बाजार का सामान घर में लाते हैं और यत्न से रखते हैं, वैसे ही परमात्मा को अपने हृदय और घर दोनों से बाहर कर मंदिर में बिठा देते हैं और उनकी पूजा के बदले सांसारिक काम्य वस्तुओं को अपने घर में सजाते हैं तो परमात्मा मिले कैसे ? केवट का यह प्रकरण दिखाता है कि यदि परमात्मा से प्रेम हो तो उससे सस्ता कुछ भी नहीं है । अभिभूत है केवट, वह सोच रहा है कि जिनके चरणों की धोवन को ब्रह्माण्ड की सबसे पवित्र और अनमोल वस्तु समझकर भगवान् शिव अपने शीश पर धारण करते हैं, जिन गङ्गाजी के यश का वेद गा-गाकर वर्णन करते हैं, जिन चरणों के लिये योगीश्वर, मुनिगण और देवता लोग देह का दमन कर, मन लगा कर अनेक प्रकार के योग और जप करते हैं, जिन चरणों की धूलि का स्पर्श कर अहल्या तर गयी और गौतम जी गौने के समान अपनी स्त्री को लिवाकर घर चले गये, उन्हीं चरणों को पाकर बिना उन्हें धोये मैं अपनी मजूरी नहीं खोऊँगा

और न अपनी हँसी कराऊँगा । कवितावली के अयोध्याकाण्ड में पद सं. 5,6,7,8,9 और 10 में भगवती गंगा की प्रस्तुति बड़े ही मनोरम ढंग से हुई है ।

गोस्वामीजी कवितावली के उत्तरकाण्ड में तीर्थराज की सुषमा का बड़े ही सुन्दर ढंग से उत्प्रेक्षा के माध्यम से चित्रण करते हैं —

देव कहैं अपनी-अपना, अवलोकन तीरथराजु चलोरे।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलोरे।
सोहै सितासित को मिलबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।

- कवितसवली उत्तरकाण्ड 144

गङ्गा-यमुना के संगम का कितना सुन्दर चित्रण है । देवतागण आपस में बातें करते हैं कि चलो तीर्थराज प्रयाग का दर्शन करने चलें। तीर्थराज का दर्शन करने मात्र से बड़े-बड़े अपराध मिट जाते हैं, वहाँ साधु समाज नित्य स्नान करते हैं पर विशेष आकर्षण है गङ्गा-यमुना का संगम, यमुना के श्यामल पृष्ठ पर उछरती हुयी गङ्गा की धवल लहरें ऐसी लगती हैं मानों कामधेनु के शुक्लवर्ण मनोहर बछड़े हरी-हरी घास चर रहे हों ।

इसके बाद उत्तरकाण्ड के 145वें, 146वें, 147वें पदों में गोस्वामी जी गङ्गा माहात्म्य का वर्णन करते हैं —

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चलें झगरैं सुर नारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साजु बिरंचि रचैं तुलसी, जे महातम जान निहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गङ्ग! तरंग तिहारे।।[145]

भाव यह है कि जिस मनुष्य ने गङ्गा स्नान के लिये जाने का विचार मात्र कर लिया उसके करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार हो गया । ऐसे महामना, शुभ संकल्पी पुरुष का वरण करने के लिये देवांगनायें

आपस में झगड़ने लगती हैं । भाव यह है कि वह व्यक्ति स्वर्ग तो निश्चित ही जायेगा और मात्र स्वर्ग ही नहीं जायेगा वहाँ देवताओं में श्रेष्ठतम होगा । फिर ऐसे पुरुष की वधू बनने के लिये देवांगनायें पहले से ही होड़ में पड़ी हैं । देवराज उस व्यक्ति को स्वर्ग लाने के लिये स्वयं विमान सजाने लगते हैं । स्वर्ग में आने पर उस पुण्यात्मा की आरती उतारने के लिये ब्रह्माजी पूजा की थाली सजाने लगाते हैं । गोस्वामी जी कहते हैं कि गङ्गाजी का दर्शन होते ही दर्शनार्थी के घर में विष्णुलोक में नींव पड़ जाती है अर्थात् उसका विष्णुलोक में जाना निश्चित हो जाता है —

ब्रह्म जो व्यापकु वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान गुनी को।
जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, साहेबु, दीन-दुनी को।
सोइ भयो द्रव रूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीत सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनी को ।[146]

पुराणों में गङ्गा को ब्रह्मद्रवी कहा गया है । ब्रह्मवैवर्त पुराणानुसार गङ्गा राधाकृष्ण का द्रवीभूत स्वरूप है । तुलसी यही भाव उपरोक्त कवित्त में बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करते हैं । गोस्वामी जी के अनुसार जिस ब्रह्म को वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिसके गुण की थाह ज्ञानीजन और सरस्वती भी नहीं पा सकती हैं, जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाले हैं, जो ब्रह्मा, शिव और मुनिजनों के स्वामी हैं, वही ब्रह्म का रूप धारण कर गङ्गाजी बन गये हैं । फिर गोस्वामी जी आग्रहपूर्वक कहते हैं -अरे मनुष्य ! तू इस बात पर विश्वास कर गङ्गाजल ही क्यों नहीं पीता है ?

बारि तीहारो निहारि मुरारि भएँ परसे पद पापु लहौंगो ।
ईसु ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो ।
बरु बारहि बार सरीर धरौ, रघुबीर को ह्वै तव तीर गहौगो ।
भागीरथी ! विनवों कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौगो।[147]

यहाँ गङ्गा के माहात्म्य का अद्भुत वर्णन है । गङ्गा अनन्त फलप्रदात्री

हैं । वे अपने दर्शन करने वाले को विष्णु और शिव का भी पद प्रदान करने की सामर्थ्य रखती हैं । गोस्वामी जी कहते हैं - हे गङ्गे तुम्हारे जल के दर्शन के प्रभाव से यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणों से तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मुझे पाप लगेगा । भाव यह है कि तुम्हारा जल विष्णु भगवान् के चरणों सा है और यदि मैं विष्णु बन गया तो तुम्हारा स्थान मेरे चरणों में हो जायेगा और यदि मैं महादेव हो गया तो तुझे सिर पर धारण करने से मुझे महादेव की बराबरी करने का बड़ा भारी अपराध लगेगा । इसलिये मुझे भले ही बारम्बार शरीर धारण करना पड़े पर मैं तो श्रीरघुनाथ जी का दास होकर तुम्हारे तीर पर वास करना चाहता हूँ ।

इस तरह हम देखते हैं कि कवितावली में गोस्वामी जी ने गङ्गा की पुराणोक्त सम्पूर्ण माहात्म्य कविता के तीन चार पदों में ही समेट कर गागर में सागर भर दिया है। कवितावली के अतिरिक्त गीतावली और दोहावली तथा रामलला नहछू में भी गङ्गा का उल्लेख है । गीतावली के बालकाण्ड के 52वें पद में एक पंक्ति में गङ्गा का उल्लेख है —

तुलसीदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ।

फिर 55वें पद में कुछ इसी आशय की एक पंक्ति है —

बूझत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि निज कुल कथा सुनाई ।

फिर बालकाण्ड के ही 58वें पद में गङ्गा निम्नरूप में एक पंक्ति में प्रकट होती है —

परसि जो पाँय पुनीत सुरसरि सोहै तीनि अवनी ।
तुलसीदास तेहि चरनरेनु की महिमा कहे मति कवनी ।

यहाँ गङ्गा को त्रिपथगा के रूप में याद किया गया है ।

दोहावली में भी दोहा 68, 327 और 383 में गङ्गा का उल्लेख है —

तुलसी रामहि परिहरें निपट हानि सुन ओझ ।
सुरसरि गत सोइ सलिल सुरा सरिस गङ्गोझ ।[68]

भाव यह है कि अरे विद्वज्जन सुनो ! श्रीरामजी को छोड़ देने से अत्यन्त हानि होती है । श्रीगङ्गाजी का वही जल श्रीगङ्गाजी से अलग हो जाने पर मदिरा के समान हो जाता है यथा —

गङ्गाया निःसृतं तोयं पुनर्गंगा न गच्छति ।
तत्तोयं मदिरातुल्ये पीत्वां चान्द्रायणं चरेत् ॥

दोहा 326 में गङ्गा निम्नरूप में आती है -

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहि निंदहिं सुरसरि बारि ॥[326]

तुलसीदासजी कहते हैं कि बैर और प्रेम दोनों चारों आखों से अन्धे होते हैं । भाव यह है कि ये अन्तर्दृष्टि और बाह्यदृष्टि दोनों से रहित होते हैं । इन्हें उचित अनुचित का भी ज्ञान नहीं होता है । जैसे सेवड़ा (वाममार्गी साधक) शराब का आदर करते हैं और पवित्र गङ्गाजल की निन्दा करते हैं ।

ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग ।
स्वान सरावग के कहें लघुता लहै न गङ्ग ॥[383]

भाव यह है कि जिन श्रीगङ्गाजी की निर्मल और तरल तरंगे भगवान् शंकर के मस्तक पर शोभा पाती हैं, उन गङ्गाजी की महिमा कुत्ते और जैनियों की निन्दा से कम नहीं हो जाती है । इसी तरह नीच की निन्दा से उत्तम पुरुषों का कुछ नहीं घटता है ।

इसी तरह दोहा 498 में इस संदर्भ से कि ऐश्वर्य पाकर व्यक्ति कैसे बिगड़ जाते हैं और निडर हो जाते हैं, इसका उल्लेख करते हैं —

तुलसी तोरत तीर तरु बक हित हंस बिडारि ।
विगत नलिन अति मलिन जल सुरसरिहू बढ़िआरि ॥[498]

अर्थात् गङ्गाजी बढ़ जाने पर अपने किनारों के वृक्षों को तोड़ डालती हैं, बगुलों के लिए हंसों को भगा देती हैं, कमल और भौरों से रहित और मलिन जल वाली हो जाती है ।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त रामलला नहछू जो तुलसीदास जी की पहली रचना मानी जाती है उसमें भी गङ्गा का वर्णन है । वह तो वैवाहिक संस्कार का ग्रन्थ है और सनातन धर्मावलम्बी संस्कार और उत्सव बिना गङ्गा, गौ, तुलसी, गणेश के पूरा कैसे हो सकता है —

आले हि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो ।
मोती झालरि लागि चहुँ दिसि झूलन हो ।
गंङ्गाजल कर कलस तौ तुरित मगाइये हो ।
जुवतिन्ह मंगल गाई राम अन्हवाइय हो ।

इसी तरह वैरवै रामायण 21, 24, हनुमान बाहुक पद 17, पद 42 में गङ्गा का उल्लेख है । हनुमान बाहुक के 42वें पद में तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं रामचन्द्र जी का दास कहलाकर संसार में जीवित रहूँ और मरने के लिये काशी तथा गङ्गाजल अर्थात् सुरसरि तीर है, ऐसे स्थान में मेरे दोनों हाथों में लड्डू है । मेरे मरने के बाद मेरे बच्चे भी शोक नहीं करेंगे क्योंकि वे हैं ही नहीं । सब लोग मुझे झूठा सच्चा राम का ही दास कहते हैं और मेरे मन में भी इस बात का गर्व है कि मैं रामचन्द्र जी को छोड़कर और किसी का भक्त नहीं हूँ । शरीर की भारी पीड़ा से विकल हो रहा हूँ जिसे रघुनाथजी के बिना कौन दूर कर सकता है —

जिओं जग जानकी जीवन को कहाइ जन,
मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को ।
तुलसी के दुँहूँ हाथ मोदक है ऐसे ठाउँ,
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको ।
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को न हरिको ।
भारी पीर दुसह सरीरतें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूर करि को ।[42]

तुलसीदास के भव्य लोकपावन जीवन की संध्या इस पद में

अभिव्यंजित है । तुलसीदास जी को बड़ा भरोसा है कि उनकी मृत्यु काशी में गङ्गा तट पर होगी ।

समर मरनु अरु सुरसरितीरा, राम काज छनभंगु सरीरा ।

प्रत्येक सनातनी हिन्दू इसी तरह की मृत्यु चाहता है जहाँ इस लोक से तारने वाली तीनों शक्तियाँ - काशी, गङ्गा और तारकमंत्र राम नाम एक साथ हो । तुलसीदास कह रहे हैं कि मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं अर्थात् जो काशी में गङ्गातट पर रहकर रामभक्ति में रत होते हैं उनके लोक और परलोक दोनों धन्य हो जाते हैं ।

इसी प्रकार कृष्ण गीतावली एवं रामाज्ञा प्रश्न में भी प्रसंगवश गङ्गा का उल्लेख हो गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी वाङ्मय में भी गङ्गा अपने पूरे वैभव, शोभा एवं माहात्म्य के साथ प्रवाहित हैं ।



षष्टम् अध्याय

विदेशी विद्वानों की दृष्टि में गङ्गा

वैसे तो गङ्गा ब्रह्माण्ड नदी है । यह केवल पृथ्वी की ही नदी नहीं, यह तो त्रिपथगा है, आकाश गङ्गा या मन्दाकिनी । पृथ्वी पर की गङ्गा भागीरथी और पाताल गङ्गा भोगावती । यही गङ्गा गोलोक में विरजा बनकर बह रही हैं और ब्रह्मद्रव बनकर सम्पूर्ण ज्ञात-अज्ञात ब्रह्माण्ड को अपनी गोद में ले उसे प्राण ऊर्जा प्रदान कर रही है । गङ्गा ब्रह्मा के कमण्डलु में रहती हैं । ब्रह्मा सर्जनात्मक शक्ति के अधिष्ठाता हैं । बिना शक्तिमान के शक्ति नहीं और बिना शक्ति के शक्तिमान नहीं । गङ्गा ब्रह्मा की सर्जना शक्ति हैं । गङ्गा की सर्जनात्मक शक्ति धरती पर भी देखी जा सकती है । लगभग चार लाख वर्गमील का गङ्गा का उपजाऊ कछार गङ्गा की सर्जनात्मक शक्ति का भव्य उदाहरण है । गङ्गा का सम्बन्ध विष्णु भगवान् से है । गङ्गा उनके चरणों से निःसृत हैं । विष्णु भगवान् पोषण के देवता हैं । पूरे विश्व का भरण-पोषण भगवान् विष्णु करते हैं। गङ्गा उनकी पोषण शक्ति का नाम है । गङ्गा की पोषण शक्ति इस पृथ्वी पर भी द्रष्टव्य है । गङ्गा का अत्यन्त उपजाऊ मैदानी भाग देश तो क्या विश्व का सबसे जन शंकुल प्रान्त है । करोड़ों-करोड़ों जीवों का भरण-पोषण माँ गङ्गा द्वारा मिट्टी को प्रदत्त उर्वरा शक्ति के द्वारा हो रहा है । गङ्गा का सम्बन्ध शिव से भी है । शिव संहार के देवता हैं, गङ्गा उनकी संहारक शक्ति हैं । बिना संहार के सृजन नहीं, बिना सुषुप्ति के जागरण नहीं, बिना मृत्यु के जीवन नहीं, अतः शिव की संहारक शक्ति होने के कारण गङ्गा सृजन, निर्माण, जागरण एवं जीवन की धात्री हैं । ब्रह्मा रजोगुण के अधिष्ठाता, विष्णु सत्त्व गुण के अधिष्ठाता और शिव

तमोगुण के अधिष्ठाता हैं । गङ्गा इन तीनों से जुड़ी हैं । अतः गङ्गा रजोगुण, सत्त्व गुण और तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी हैं । तीनों गुणों की अधिष्ठात्री देवी का नाम मूल प्रकृति है । वेदान्त में यही ब्रह्म की माया है । अतः गङ्गा मूलप्रकृति और महामाया है । लक्ष्मी का सम्बन्ध विष्णु से है, सरस्वती का सम्बन्ध ब्रह्मा से है और दुर्गा या पार्वती का सम्बन्ध शिव से है परन्तु देवी गङ्गा का सम्बन्ध तीनों से है । अतः गङ्गा ही पुराणोक्त आद्याशक्ति हैं । ये समूचे दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड को अपनी गोद में लिये हुये हैं तभी तो जब भगवान् वामन ने विराट् बनकर समूचे ब्रह्माण्ड को नापने के लिये अपना पाद उठाया तो उससे ब्रह्माण्ड कटाह फट गया और उसके बाहर उसके चारों तरफ भरा गङ्गाजल उसके फटने से रिसने लगा । यही ब्रह्माण्डेतर गङ्गा का ब्रह्माण्ड में अवतरण है । अतः गङ्गा को ब्रह्माण्डेतर एवं ब्रह्माण्डीय द्रव या नदी कहना अतिशयोक्ति नहीं है पर इस निबन्ध का शीर्षक विश्वनदी गङ्गा मात्र इसीलिये रखा गया है कि हमारी धरती पर भारत के बाहर के यात्री और इतिहासकार गङ्गा को किस दृष्टि से देखते हैं, इसका हम आपसे परिचय करायेंगे ।

हमने अब तक देखा कि गङ्गा कैसे वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों से होती हुयी पुराणों तक बही हैं । महाभारत, वाल्मीकीय रामायण एवं गोस्वामी जी के रामचरितमानस में भी गङ्गा के विपुल विस्तार एवं माहात्म्य का हमने दर्शन किया । आइये अब हम कुछ विदेशी इतिहासकारों एवं यात्रियों के वर्णन में एवं विश्व संस्कृति में गङ्गा का दर्शन करें ।

भारत सभ्यता के उषाकाल से ही पूरे विश्व के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है । इसकी साँस्कृतिक, धार्मिक एवं भौतिक समृद्धता दूर-दूर देशों, अलग-अलग धर्मों, प्रजातियों एवं संस्कृतियों के लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करती रही है । इसके तटों पर बसे अत्यन्त ही समृद्ध एवं धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, साँस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं व्यापारिक

महत्त्व के नगर हरिद्वार, कन्नौज, प्रयाग (इलाहाबाद), वाराणसी, पाटलिपुत्र (पटना) और अत्याधुनिक शहर कोलकाता, विदेशी यात्रियों को अपनी तरफ खींचते रहे हैं । भारत में आने वाले किसी भी धार्मिक और ऐतिहासिक यात्री का यात्रा विवरण बिना गङ्गा के पूरा ही नहीं हुआ है।

सबसे पहले हंम मेगस्थनीज से प्रारम्भ करंते हैं । यह विदेशी यात्री पश्चिम एशिया के शासक सेल्यूकस के राजदूत के रूप में 302 ई. पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में आया था । इसके विवरणों में हमें गङ्गा की पवित्रता का उल्लेख मिलता है । वह लिखता है - 'हिन्दू वर्षा के देवता जीअस (इन्द्र), गङ्गा नदी एवं स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा करते हैं ।'

ग्रीक और रोमन इन दोनों सभ्यताओं में गङ्गा की पहचान है एवं दूसरी शताब्दी के आस-पास गङ्गा को विश्व की सबसे पवित्र एवं बड़ी नदी माना जाता था । उस समय का प्रसिद्ध भूगोलविद स्ट्रेबो (जिसका भूगोल उस समय काफी प्रामाणिक माना जाता था) कहता है - 'वास्तव में गङ्गा तीनों महाद्वीपों में ज्ञात सभी नदियों से बड़ी नदी है । एरिअन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ - 'एनाबोसिस ऑफ एलेक्जन्डर' में लिखता है- 'यद्यपि एक साथ जोड़कर भी यूरोपीय नदियों के जल के आयतन की तुलना भारत की एक साधारण नदी से नहीं की जा सकती और उन नदियों में जो सबसे बड़ी नदी गङ्गा है (जो मिश्र में बहने वाली नदी नील एवं यूरोप में बहने वाली डानुबी (Danube) से भी बड़ी है) उससे तो बिल्कुल नहीं की जा सकती ।'

टालेमी ने (जो ग्रीक का प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् एवं भूगोलवेत्ता था) यात्रियों के विवरण एवं सूचना पर विभिन्न देशों का अलग-अलग नक्शा तैयार किया था । उसने भारत के नक्शे में हिमालय से निकलकर दक्षिणपूर्व से समुद्र तक बहने वाली नदी गङ्गा का चित्रण किया है । उसने गङ्गा को 'इन्डियन इन्ट्रा गङ्गेम' और 'इन्डियन एक्स्ट्रा गङ्गेम' के

रूप में बाँटकर गङ्गा का चित्रण किया है । उसने पश्चिमी गङ्गा का 'इन्ट्रागङ्गेम' (भीतरी गङ्गा) और पूर्वी प्रान्त में बहने वाली गङ्गा का 'एक्स्ट्रा गङ्गेम' (बाहरी गङ्गा) के रूप में चित्रण किया है । बाद के भूगोलवेत्ताओं एवं नक्शानवीसों ने 18वीं सदी के मध्य तक गङ्गा के लिये टालेमी के ही द्वारा दिये शब्दों का प्रयोग किया है ।

रोमन इतिहासकार प्लीनी (Pliny) (जिसका कार्यकाल 23-79 ईसवी सन् तक रहा है) लिखता है - 'कुछ लोग कहते हैं कि नील की तरह ही यह नदी अज्ञात स्रोत से निकलती है और ठीक उसी की तरह जिस क्षेत्र से होकर बहती है उस देश को सींचती है जबकि कुछ दूसरे लोगों के अनुसार यह नदी सीथिन पर्वतमाला से निकलती है । दूसरों के विवरण के अनुसार यह अपने स्रोत से अचानक ही भीषण गर्जना के साथ फूट पड़ती है और ढालुओं, पहाड़ियों से टकराती हुयी जैसे ही मैदानी भाग में पहुँचती है एक झील का रूप धारण कर लेती है । फिर वहाँ से यह मंथर गति से आगे बढ़ती है । यह कहीं भी आठ मील या सौस्टेडियम से कम चौड़ी नहीं है और इसकी कम से कम गहराई बीस फैथम है ।'

रोम का सबसे बड़ा कवि वर्जिल (जो 70 ई.पू. से लेकर 19 ई.पू. तक पृथ्वी पर रहा) गङ्गा को अपने काव्य में उपमा के रूप में प्रस्तुत करता है । उसके लिये गङ्गा शान्ति की देवी हैं । वह अपने प्रसिद्ध काव्य आनेड (Aeneid) में लिखता है - गङ्गा की शान्त सप्त धाराओं की तरह गर्व से शान्ति की तरफ बढ़ते हुये 'Like Ganges with his seven calm streams proudly rising through the silence.'

यह गङ्गा रोम के ही दूसरे प्रसिद्ध कवि ओविड (जिसका जीवन फलक 43-ई.पू. से 17 ई. सन् तक का था) के द्वारा भी उल्लिखित है । कवि सिकन्दर के बारे में लिखते हुये गङ्गा का उल्लेख करता है- 'Whose conquests through the orient are renowned. Where twainy

India is by Ganges bound.' अर्थात् जिसकी विजयगाथायें पूरब से भारत तक प्रसिद्ध हैं, जो देश गंगा द्वारा दो भागों में विभाजित है ।

एक दूसरा ग्रीक कवि डायोनिसिअस पेरीगेटीज (Dionysios Periegetes) तीसरी शताब्दी में अपनी कविता में गङ्गा का उल्लेख करते हुये कहता है -

Then again, heard by the fair - flowing Ganges is wondrous spat of holy ground greatlly honoured. अर्थात् गङ्गा की पवित्र निर्मल प्रवाह वाली भूमि अत्यन्त पवित्र एवं अत्यधिक सुपूजित हैं ।

मध्ययुग का यूरोपियन कवि डान्टे 14वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में रचित अपनी डिवाइन कामेडी में गङ्गा को (Oriental Sapphire) ओरियेन्टल सेफायर अर्थात् पूरब की मणि कहता है ।

प्रसिद्ध इटैलियन शिल्पकार जी. बर्नीनी ने (Gianlorenzo Bernini) जिसका जीवन फलक 1598 से 1680 तक का था रोम के पीजा नैवोना के केन्द्र में चार नदियों की मूर्तियों का एक फौवारा बनायां है । इसमें विश्व की चार सबसे महत्त्वपूर्ण नदियों का मानवीकरण कर मूर्ति बनायी गयी है । वे चारों नदियाँ हैं - डानूबी, नील, गङ्गा और रियो डी ला प्लाटा । चूँकि रोमन हमेशा से नदियों को पुरुष रूप से ही चित्रित करते हैं । अतः गङ्गा भी पुरुष रूप में ही चित्रित है ।

चीनी यात्री ह्वेनसांग (जो हर्षवर्धन के शासन काल में 630 ई. में भारत आया था) अपने यात्रा विवरणों में गङ्गा एवं उसके किनारे का जीवन, धार्मिक विश्वास एवं उनकी परम्परायें एवं रीति-रिवाजों पर विस्तार से वर्णन करता है । यह एक बौद्ध यात्री था जो भारत में अन्य चीनी बौद्ध यात्रियों की तरह जो प्रायः पाँचवीं से सातवीं शताब्दी में भारत में बौद्ध तीर्थ स्थलों को देखने के लिये आये, सबसे प्रसिद्ध तीर्थ यात्री था । यह पन्द्रह वर्षों (ईसवी सन् 645) तक भारत में रुका रहा तथा हर्षवर्धन के राज्य में भी आठ वर्षों तक रहा । ह्वेनसांग अपने उम्र

के 26वें वर्ष में भारत आया । उसने ताशकन्द, समरकन्द, बलख एवं कांधार से होते हुये भारत में प्रवेश किया था । दो वर्ष उसने कश्मीर में बिताये फिर वह गङ्गा के ऊपरी मैदानी भाग में 633 ई. में आया । गङ्गा से अपने प्रथम साक्षात्कार में उसने हिन्दुओं के मन में इस नदी के प्रति अपार श्रद्धा एवं सम्मान का दर्शन किया । वह अपने यात्रा विवरणों में लिखता है - 'नदी का जल समुद्र के जल की तरह नीला है और उसकी लहरें भी समुद्र की तरह ही विशाल है । ..... नदी के जल का स्वाद मीठा और आनन्दायक है । इसके दोनों किनारे पर फैले बालू बड़े ही महीन कणों वाले हैं । इस देश के इतिहास में यह नदी एक पवित्र नदी मानी जाती है जो सभी पापों को दूर भगा देती है । जो अपने जीवन से थक गये हैं वे यदि इस नदी के तट पर अपने प्राण त्यागते हैं तो वे स्वर्ग में पैदा होकर अपार प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । यदि किसी मरे हुये व्यक्ति की अस्थियाँ इस नदी के जल में डाल दी जाती हैं तो वह बुरे रास्ते पर अर्थात् नरक में नहीं पड़ता है ।'

ह्वेनसांग प्रयाग में गङ्गा-यमुना के संगम पर उस समय के लोगों द्वारा किये जा रहे कठोर तपस्या एवं व्रत का अपनी समझ एवं दृष्टिकोण के अनुसार वर्णन करते हुये कहता है - कुछ लोग गङ्गा के बीच में बड़ा सा लट्ठ गाड़ देते हैं । जब सूर्यास्त का समय होता है वे तुरन्त ही इस लट्ठ पर चढ़ जाते हैं और इससे बाँये हाथ और बाँये पैर चिपकाकर वे आश्चर्यजनक रूप से एक पैर एवं एक हाथ हवा में सूर्य की तरफ फैला देते हैं और अपनी आँखे सूर्य पर जमा लेते हैं । जब सूर्य ढल जाता है और रात्रि हो जाती है तब वे अपने-अपने लट्ठ से उतर आते हैं । कई दर्जन लोग प्रतिदिन ये कष्टदायक तपस्या करते हैं । वे आशा करते हैं कि इस क्रिया से उन्हें जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जायेगा । बहुत से लोग इस तपश्चर्या को कई वर्षों से करते आ रहे हैं । उसने यह भी लिखा है कि लोग बहुत दूर-दूर से यहाँ संगम पर आते हैं और कई दिनों

तक भूखे रहकर अपने प्राण त्याग देते हैं । यहाँ तक कि आस-पास के जंगलों से बन्दर और बारहसिंगे यहाँ इकट्ठे होते हैं, उनमें से बहुत तो इसमें स्नान करते हैं और चले जाते हैं और कुछ तो उपवास करते हैं और अपने जीवन का अन्त कर देते हैं ।

चूँकि ह्वेनसांग एक बौद्ध था अतः उसने हिन्दुओं की भक्ति-भावपूर्ण तपस्या को ठीक से न समझ सकने के कारण कुछ उपहासात्मक ढंग से इसका वर्णन किया है । वह तो एक बौद्ध भिक्षु आर्यदेव का उल्लेख भी करता है जो तीसरी शताब्दी में इस अन्धविश्वास को जनता के बीच में खड़ा होकर घोर विरोध करता है । एक धर्म वाले को दूसरे धर्म वाले के धार्मिक कृत्य समझ में न आये यह बात तो समझ में आती है पर एक धर्म के अनुयायी द्वारा दूसरे धर्म के अनुयायियों के कृत्यों को अन्धविश्वास घोषित कर देना यह बात समझ में नहीं आती । वास्तव में किसी धार्मिक कृत्य के पीछे उस धर्म के अनुयायियों की श्रद्धा और विश्वास ही कारण होता है । आलोचक कृत्य तो देखता है पर उसके पीछे के श्रद्धा और विश्वास को नहीं देखता और उस कृत्य को अन्धविश्वास घोषित कर देता है । यदि ईश्वर कहीं है तो वह किसी कृत्य से नहीं श्रद्धा और विश्वास से ही पकड़ में आ सकता है । हाँ, इतना अवश्य है कि श्रद्धा और विश्वास की अभिव्यक्ति के अलग-अलग तरीके हो सकते हैं । जब आदमी हँसता और रोता भी अपनी भाषा में है तो फिर श्रद्धा और विश्वास प्रकट करने के अपने-अपने तरीके क्यों नहीं हो सकते हैं । अतः एक दूसरे के धर्म की आलोचना करने वालों को महाभारत के वन पर्व का यह श्लोक अवश्य पढ़ लेना चाहिये —

धर्मं यो बाधते धर्मः न स धर्म कुधर्मतत् ।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्म सत्य विक्रमः ॥

अबू रिहान अल्बेरुनी (जो कि एक विदेशी यात्री था और मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ 11वीं सदी में उत्तर पश्चिम भारत में प्रवेश

किया) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक तारीख-उल-हिन्द में 11वीं सदी के भारत का बड़ा ही सटीक राजनीतिक एवं साँस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करता है । उसने गङ्गावतरण का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह बिल्कुल पुराणों के अनुसार हैं । बस अन्तर इतना ही है कि वह गङ्गा को पुरुष रूप में वर्णित करता है । वह लिखता है - अब महादेव ने गङ्गा को दृढ़ता से पकड़कर अपने मस्तक पर धारण कर लिया । जब गङ्गा एकदम नहीं हिल सका तब वह बहुत रुष्ट हुआ और उसने जोर से शोर मचाया पर महादेव उसे दृढ़ता से जकड़े रहे ।' इसके बाद वह वर्णन करता है कि कैसे राजा भगीरथ शिवजी से गङ्गा को स्वतन्त्र कराकर वहाँ ले गये जहाँ उनके पूर्वजों की हड्डियाँ पड़ी थी और फिर उन्हें वे शाप से मुक्त कर सके ।

अल्बेरुनी हिन्दुओं द्वारा अपने मृतकों की हड्डियों एवं राख को गङ्गा में फेंकने का भी वर्णन करता है । ह्वेनसांग की तरह ही अल्बेरुनी भी गङ्गा-यमुना के संगम पर हिन्दुओं द्वारा किये जाने वाले अनेक पीड़ादायक धार्मिक कृत्यों का वर्णन करता है ।

वास्तव में ऋग्वेद के नदी सूक्त के खिल् मन्त्र में इतना अवश्य आया है कि जो सितासित नदियों के (गङ्गा-यमुना के संगम में) संगम में स्नान करते हैं, वे स्वर्ग को उड़ते हैं और जो लोग यहाँ प्राण त्याग करते हैं उन्हें अमृतत्त्व की अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है —

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृत्वं भजन्ते ॥

बहुत सम्भव है कि धर्म को व्यवसाय में बदलने वाले कुछ चतुर-चालाक लोग जिन्हें तुलसी ने मानस में धिक्कारते हुये कहा है —

बेचहिं बेद धर्म दुहि लेहीं, पिसुन पराइ पाप कहि देहीं ।

जनसामान्य को इस मन्त्र की गलत व्याख्या करके नाना प्रकार के यातनापूर्ण कृत्यों द्वारा संगम तट पर प्राण त्यागने के लिए उकसाते रहे हों पर न तो उपरोक्त मन्त्र का यह अर्थ है और ना ही हमारी भारतीय

संस्कृति में इस तरह के कष्टपूर्ण कृत्यों की प्रशंसा है । वरन् इस प्रकार के कृत्यों को तो गीता आसुरीकृत्य कहती है —

अशास्त्रविहतं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान् ॥

- श्रीमद्भगवद्गीता 17/4-5

अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध आचरणों द्वारा शरीर सुखाना एवं भगवान् के अंशरूप जीवात्मा को उटपटांग कर्मों द्वारा कष्ट देना राक्षसी स्वभाव है ।

मुस्लिम यात्री इब्नबतूता 1333 में भारत आता है और 14 वर्षों तक यहीं ठहरता है । मुहम्मद तुगलक ने इसे गाजी की उपाधि से विभूषित भी किया था । वह लिखता है - 'लोग गङ्गा में स्वेच्छा से जल समाधि लेते थे । इसके बाद वह यह भी लिखता है कि लोग इस नदी तक तीर्थयात्रा करने जाते थे, अपने मृतकों की हड्डियाँ एवं राख इसमें फेंकते थे और वे कहते थे कि यह स्वर्ग की नदी है । वह आगे लिखता है कि जब कोई हिन्दू इस नदी में डूबने आता है तब अपने साथ के लोगों से कहता है कि यह मत सोचना कि मैं किसी सांसारिक कारणों से या किसी पाप के प्रायश्चित करने के लिए इस नदी में डूब रहा हूँ, मेरा उद्देश्य तो केवल कूसय (श्रीकृष्ण) तक पहुँचना है जो कि उनकी भाषा में ईश्वर का नाम है । फिर वे अपने को जल में डुबा देते हैं और जब वे मर जाते हैं तब उसके साथ के लोग उसे बाहर निकाल कर जला देते हैं और फिर उसकी राख उसी नदी में फेंक देते हैं ।'

इब्नबतूता वह पहला इतिहासकार है जो इस बात पर प्रकाश डालता है कि गङ्गा का पानी मुस्लिमों द्वारा भी प्रयुक्त होता था । यद्यपि उनके मन में इस नदी के प्रति कोई श्रद्धा का भाव नहीं रहता था । डाक

विभाग के बारे में वर्णन करते हुये वह लिखता है - 'कैसे पत्र इस विशाल देश में भी एक कोने से दूसरे कोने तक शीघ्रता से पहुँचाये जाते हैं जैसे कि सुल्तान के लिए पीने का पानी । जब वे दौलताबाद में प्रवास करते हैं गङ्गा नदी से जल लाया जाता है । बाद के ऐतिहासिक यात्रियों द्वारा भी मुगल शासकों द्वारा गङ्गाजी के जल पान की परम्परा का वर्णन मिलता है ।

15वीं शताब्दी तक आते-आते यूरोप के बहुत से यात्री भारत की तरफ आना शुरू कर देते हैं क्योंकि उन्होंने इस देश की सम्पन्नता की कहानियाँ सुन रखी थी । इन यात्रियों में - थामसरोज, विलयम फिन्च, थामस कोरियट, एडवर्ड टेरी, जीन बैपाटीस्ट, टेवेर्नियर, फ्रांकियस वर्नियर और निकोल मुनाकी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

पहला अंग्रेज जिसने भारत की यात्रा की वह राल्फफिन्च था जिसने 1583 से 1591 के बीच में भारत की यात्रा की थी । वह लिखता है - 'लागों में गङ्गाजल के प्रति बड़े ही सम्मान की भावना है। लोग गङ्गा का जल दूर-दूर तक ढोकर ले जाते हैं और यदि उनके पास पीने के लिये पर्याप्त गङ्गाजल नहीं होता है तो वे अपने ऊपर थोड़ा छिड़क लेते हैं और फिर अपने को पवित्र समझ लेते हैं ।'

निकोलस विदिंगटन (1612 से 1616 तक भारत भ्रमण किया) गङ्गाजल के बारे में लिखता है - 'गङ्गा का जल काँवर द्वारा सैकड़ों मील दूर-दूर तक ले जाया जाता है और चूँकि वे विश्वस्त हैं कि यह न तो कभी सड़ेगा और चाहे जितने लम्बे समय तक रखा जाये इसमें किसी प्रकार के कोई कीड़े नहीं पड़ेंगे ।'

थामस कोरियट जो भारत में 1612 से 1617 तक भ्रमण किया और जो फारसी भी जानता था, जहाँगीर के दरबार में उसने अपना परिचय प्रस्तुत करते हुये कहा - 'भारत आने के उसके प्रमुख कारणों में से प्रथम कारण यह है कि मैं हजूर का ईश्वरीय चेहरा देखना चाहता था,

जिसके यश की चर्चा पूरे यूरोप में और इस्लामिक देशों में गूँज रही है और दूसरा कारण यह है कि मैं प्रसिद्ध नदी गङ्गा का दर्शन करने आया हूँ जो कि संसार की सभी नदियों में अग्रणी एवं उनका सरदार है ।

भारत आने वाले यूरोपीय यात्री एवं इतिहासकार इस बात की प्रभूत चर्चा करते हैं कि मुगल बादशाह एवं मुस्लिम सरदार और सामान्य मुस्लिम जन भी केवल गङ्गा का जल पीते हैं और इसे खाना पकाने के प्रयोग में भी लाते हैं । इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे इस नदी के प्रति पवित्रता या श्रद्धा का भाव रखते हैं पर वे यह विश्वास अवश्य रखते हैं कि इसके जल में कुछ खास गुण हैं जिसमें से सबसे प्रमुख है इसकी मधुरता, आनन्दायक स्वाद तथा किसी भी प्रकार के हानिकारक कीटाणुओं का अभाव चाहे इसे जितने लम्बे समय तक रखा जाये ।

आइने अकबरी में अकबर द्वारा गङ्गाजल को महत्त्व देने का बड़ा ही जीवन्त चित्रण प्रस्तुत है - 'जहाँपनाह गङ्गाजल को जीवन का स्रोत एवं ईश्वरीय जल कहते हैं और गङ्गा की देख-रेख के लिये इस विभाग का काम कुछ खास लोगों को सौंप रखा है । वे भले ही गङ्गाजल ज्यादा न पीते हों पर इस विषय पर बहुत ध्यान देते हैं । घर पर एवं यात्रा में दोनों जगहों पर वे गङ्गाजल ही पीते हैं । कुछ बहुत ही विश्वसनीय लोग गङ्गा के तट पर नियुक्त किये गये हैं जो मुहरबन्द पात्र में जल को बन्द करते हैं । जब दरबार आगरा और फतेहपुर में होता है तो गङ्गाजल सारन जिले से आता है, लेकिन जब जहाँपनाह पंजाब में होते हैं तो गङ्गाजल हरिद्वार से आता है । पंजाब में रहने पर खाना पकाने के लिये या तो वर्षा का जल प्रयुक्त होता है या यमुना और चनाब के जल में थोड़ा गङ्गाजल मिलाकर प्रयुक्त होता है ।

फ्रांकियस वर्नियर जो कि फ्रांसीसी चिकित्सक एवं यात्री था तथा वह औरंगजेब के शासन काल में 1656 और 1668 के बीच भारत आया था, लिखता है - 'महान् मुगल बादशाह दिल्ली और आगरा में

तीन हजार सुन्दर घोड़े, आठ सौ या नौ सौ हाथी, कुर्सियाँ और मोढ़े, रसोई के सामान, गङ्गाजल और अन्य सभी प्रकार के सामान जो डेरा के लिए आवश्यक थे, आपातकाल के लिए रखते थे ।'

इंग्लैण्ड के सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राजतिलक समारोह में जयपुर के राजा सवाई माधो सिंह द्वितीय 160 से.मी. और 248 से.मी. की परिधि के छःसौ सोलह किग्रा. वजन के शुद्ध चाँदी के दो घड़ों में हर की पैड़ी हरिद्वार से गङ्गाजल ले गये थे । ये घड़े राजा माधो सिंह द्वितीय के मृत्यु के बाद 1922 में सिटी पैलेस के गोदाम में मुहर बन्द कर रख दिये गये थे । जब 1962 में खोले गये तो एक घड़े में एक तिहाई गङ्गाजल मिला जो 40 वर्षों के अन्तराल के बाद भी एकदम स्वच्छ और जीवाणुरहित था । ब्रिटिश मासिक पत्रिका 'गुडहेल्थ' में सी. आई. नेलसन ने लिखा है कि टेम्स नदी का रखा हुआ पानी बासी हो गया, किन्तु गङ्गाजल वैसा ही ताजा निकला । मैकगिल विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने अपने प्रयोगों में पाया कि गङ्गाजल में कीटाणु तीन या चार घन्टे में स्वयं मर जाते हैं । रुड़की विश्वविद्यालय के डॉ. डी. एस. भार्गव ने अध्ययन कर प्रमाणित किया है कि गङ्गा में ऐसे वैक्टीरिया और रसायन होते हैं (वैक्टीरियोफाज) जो उसमें मिलने वाले प्रदूषण और रोगकारी तत्वों को व्यर्थ कर देते हैं । गङ्गाजल में दुनिया के सभी स्रोतों से प्राप्त जल से ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गङ्गा केवल भारत की ही नहीं वरन् विश्व एवं ब्रह्माण्ड की नदी भी है । यह स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरी हैं **'गाम् गता'** पृथ्वी की तरफ आने के कारण ही इसे गङ्गा कहते हैं । गम् धातु का संस्कृत में अर्थ होता है जाना । सतत् गतिशील होने से ही पृथ्वी को गो कहते हैं और पृथ्वी पर उतरी इस नदी को गङ्गा । भारतीयों के लिए तो गङ्गाजल शुद्ध जल का पर्याय ही बन गया है । वे विवाह-बारात में केवल जल नहीं गङ्गाजल परोसते हैं । हमारे पुराणों के अनुसार समुद्र

से मिलने वाली सतत् गमनशील प्रत्येक नदी गङ्गा है । मार्कण्डेय पुराण का कथन है - **'सर्वा गङ्गा समुद्रगाः'** । बँगला भाषा में सभी नदियों को गाङ्ग कहते हैं । सिंघल में भी गङ्गा का अर्थ नदी मात्र है । चीनी भाषा का लांग या क्यांग शब्द इसी गाङ्ग भाषा का चीनी रूपान्तरण मात्र है । इसी तरह इण्डोचीन में सुंग इसी कांग का ही रूपान्तरण है । वहाँ मेंसुंग का अर्थ है माँ गङ्गा ।



सप्तम अध्याय

लोकगीतों में गङ्गा

लोकगीत एक सामासिक पद है जिसका अर्थ है - लोक का गीत। व्युत्पत्ति की दृष्टि से लोक शब्द संस्कृति के 'लोक दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है । 'लोकदर्शने' धातु से अभिप्राय है 'देखना' । इस धातु का लट् लकार में अन्य पुरुष एकवचन रूप लोकते है । इस प्रकार लोक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है - देखने वाला । मानक हिन्दी कोश में भी 'लोक' शब्द का यही व्युत्पत्तिमूलक अर्थ बताया गया है । इस तरह से 'लोक' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है - वह समस्त जनसमुदाय जो देखने की क्रिया करता है ।

अंग्रेजी में 'लोक' शब्द के समानान्तर 'Folk' (फोक) शब्द आता है । 'फोक' शब्द की व्युत्पत्ति एंग्लोसेक्सन शब्द Folk (फोक) से मानी जाती है, जिसका अर्थ है असभ्य और मूढ़ समाज । अतः यह स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द और अंग्रेजी का 'फोक' शब्द एक नहीं है । वहाँ फोक का मतलब है 'असभ्य' और हमारे यहाँ लोक का मतलब है 'देखने वाला समाज' । समाज के सभी लोग कर्ता नहीं होते हैं, समाज का बहुलांश कर्ता के कर्म का आधार बनता है । समाज का बहुलांश कर्ता कम भोक्ता ज्यादा होता है । समाज का बहुलांश इतिहास की प्रत्येक करवट के नीचे दब छुपकर रहता है । वह अपनी नियति का निर्माता स्वयं नहीं होता है, वरन् कुछ लोगों के हाथों में चुपचाप और निर्विरोध अपने को सौंपकर उन्हें अपना भाग्य-विधाता बना देता है । पर समाज की अनुभूतियाँ, पीड़ायें, सुख-दुःख का कोश समाज का यही वर्ग होता है जिसे 'लोक' कहते हैं । इतिहास और अभिजात्य साहित्य नहीं वरन्

लोकसाहित्य ही किसी युग का सच्चा और निर्दोष प्रतिनिधि होता है । यदि हमें किसी युग को समझना है, उसे उसकी सम्पूर्णताओं में महसूस करना है तो हमें उस युग का इतिहास और काव्य नहीं बल्कि लोकसाहित्य का अनुशीलन करना चाहिये ।

'लोक' शब्द का प्रयोग भारतीय वाङ्मय में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा है - वेदों से लेकर मानस के **'लोकवेद मति मंजुलकूला'** तक, 'लोक' शब्द के प्रयोग की परम्परा अक्षुण्ण है । वेदों, उपनिषदों, संस्कृत-वैयाकरण पाणिनी की अष्टाध्यायी, वररुचि के वार्तिकों, पतंजलि के महाभाष्य, आचार्य भरत मुनि के नाट्य शास्त्र, महाभारत आदि में 'लोक' शब्द का प्रयोग स्थान, लोक विशेष से लेकर जनसामान्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, वरन् गाँवों और नगरों में फैली हुयी समूची जनता है, जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है । ये लोग नगर के परिष्कृत रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं ।

व्याकरण के अनुबन्धों से मुक्त, सभ्यता की छौंक से विमुक्त, मानव मन की सुख-दुःख भरी संवेदनाओं का सहज प्रस्फुटन हीं लोकगीत है ।

सान्ध्यगीत की भूमिका में महादेवी लोकगीत को परिभाषित करते हुये कहती हैं - 'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है और उस गीत में जब सहज चेतना जुड़ जाती है तो वह लोकगीत बन जाता है । लोकगीत गगनचुम्बी हिमश्रेणियों के बीच में एक ऐसा सजल

आलोकोज्ज्वल मेघखण्ड है जो न तो इनके टूट-टूटकर गिरने वाली शिलाखण्डों से दबता है और न इन श्रेणियों की सीमाओं में आबद्ध होकर ससीम बनता है, प्रत्युत् उन चोटियों का शृंगार करता है और संगीत लहरी के प्रत्येक स्पन्दन-कम्पन के साथ उड़कर उस विशालता के कोने-कोने को मादकता का सागर प्रस्तुत करता है ।'

डॉ. यदुनाथ सरकार लोकगीत की विशेषतायें बतलाते हुये कहते हैं - 'प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्दविन्यास की सादगी, विश्वव्यापी मर्मस्पर्शी प्राकृतिक मनोव्यथा, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, क्रीड़ास्थली एवं देश-काल का स्थूल अंकन साहित्यिक कृत्रिमताओं के न्यूनातिन्यून प्रयोग का सर्वथा बहिष्कार सच्चे लोकगीत की ये नितान्त आवश्यकतायें हैं ।'

हिन्दी साहित्य की भूमिका में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं - 'लोकगीत के एक-एक बूँद के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धायें और खण्डिताएँ न्यौछावर की जा सकती हैं क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से विभूषित होने पर भी निष्प्राण हैं । ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्रविशेष की मुखापेक्षी भर भी नहीं हैं, ये अपने आप में परिपूर्ण हैं ।'

लोकगीत के बीज तो हमारी सभ्यता के शुरुआत में ही पड़ते हैं । वेदों में पद्य या गीत अर्थ में 'गाथा' तथा उसके गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलता है । गृहसूत्र में विवाह, सीमन्तोन्नयन तथा यज्ञादि के अवसर पर गाथायें गायी जाती थीं। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषा का बोलबाला था । लोकगीतों की उन्नति भी उस समय बड़े जोर-शोर से हुयी । राजघल या शाकवाहन द्वारा संग्रहीत गाथा सप्तशती से विदित होता है कि उस समय लोकगीत और बजाने की प्रथा थी । रामायण और महाभारत तथा

श्रीमद्भागवत में भी श्रीराम और श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर गीत गाने की प्रथा का उल्लेख है । संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, ढेकी चलाना, खेती निराना, चरखा भरना आदि समय में झुण्ड में होकर गीत गाये जाने का उल्लेख है । बारहवीं सदी की एक कबायलि बिज्जला ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का बड़ा ही मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है -

विलासमसृणोल्लसन् मुसललोलदोः कन्दली ।
परस्पर परिस्खलद् वलयनिः स्वगेद्बन्धुराः ॥
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोरः स्थल् ।
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलभगण्डनी गीतयः ॥

अर्थात् स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-साथ गीत भी गा रही हैं । मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खन-खनकर रही हैं । उनके वक्ष स्थल हिल रहे हैं । मीठी हुँकार की आवाज तथा चूड़ियों की खनक से मिलकर उनके गीत विचित्र आनन्द पैदा कर रहे हैं ।

कालीदास ने भी धान की खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोकगीतों के गाने का उल्लेख किया है-

इक्षुच्छायानिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्योजगुर्यशः ॥

- रघुवंश महाकाव्य 4/20

तुलसीदास के रामायण में भी लोकगीतों की छटा देखते ही बनती है -

गावाहि मंगल मंजुल बानी ।
सुनि कलरव कल कंठ लजानी ॥ (व.298)

*   *   *   *

नारिवृन्द सुर सेवत जानी । लागी देन गारि मृदु बानी ।

सर जार्ज ग्रिपर्सन ने 1886 ई. में 'सम भोजपुरी फोकसांग' में

भोजपुरी बिरहा, जतसार, सोहर आदि गीतों का उल्लेख किया है ।

गङ्गा मात्र नदी नहीं हैं, वे लोक और वेद के मंजुल कूलों के बीच प्रवाहित पूरी की पूरी द्रवरूपा भारतीय संस्कृति हैं । गङ्गा का जल मात्र जल नहीं है, वरन् वह हमारे पूर्वजों के तप, प्रायश्चित्त, हास-परिहास, सुख-दुःख, आशा-निराशा, आँसू-मुस्कान, जय-पराजय, उत्थान-पतन का द्रवीभूत प्रवाह है । जब हम गङ्गा का स्पर्श करते हैं तब अपने लक्ष्य-लक्ष्य पूर्वजों के आशीर्वाद, स्नेह, वात्सल्य, शुभांशा, मिन्नतें, प्रार्थनायें एवं उनकी आत्मा का स्पर्श करते हैं । लोग नहीं रहे तो क्या ? उनकी प्रार्थनायें आज भी गङ्गा की उर्मियों में उभर रही हैं और अपनी भावी पीढ़ियों को गङ्गा के माध्यम से अपना आशीर्वाद सम्प्रेषित कर रही हैं-

गङ्गा वर्तमान के नाम अतीत की पाती है,
कौन कहता है कि यह नदी है ?
यह तो पूरी भारतीय संस्कृति की थाती है ।
एक मासूम बच्चे की तरह उतर कर तो देखो गङ्गा में,
आप पाओगे-यह भारत माता की दूध भरी छाती है ।
ऋतुयें आती हैं, जाती हैं सूरज उगता और डूब जाता हैं,
बदलता है मौसम, उम्रका घट भी बूँद-बूँद रीत जाता हैं ।
लोग जीते है मरते हैं,
पर गङ्गा तो इन सबके बीच चुप-चाप बहती है,
ये वो माँ है जो अपने बच्चों को कभी नहीं छोड़ती है ।
जन्म से मृत्यु तक उछाह से बधाह तक,
जीवन के हर पहलू में हमारे साथ रहती है ।
एक समय ऐसा आता है जब एक माँ भी,
मरे हुए बच्चे को अपनी गोदी से उतार देती है,
तब यह गङ्गा माँ उसे अपनी गोदी में ले
भवसागर पार उतार देती है ।

लोक जीवन में गङ्गा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । जन्म से लेकर मृत्यु तक ऐसा कोई भी संस्कार नहीं हैं जो गङ्गाजल के बिना पूरा हो । लोकमानस में गङ्गा एक नदी नहीं वरन् परिवार के एक सदस्य की तरह रची-पची है । केवल पुराणों और काव्यों में ही नहीं लोकगीतों में भी गङ्गा की उत्पत्ति के गीत बड़ी ही मधुरता और सहजता से गाये जाते हैं —

झोरी में से कढ़ले भभूति महादेव पुड़िया बनाइ लेले ।
लेजा ए भगीरथ अपन अस्थाने ।
सिव के बचनिया ए भगीरथ नाही पतिअइले ।
बन्हली पुड़ियवा ए भगीरथ, खोलि बलु दीहले ।
उड़सहु बनिया रे देउरी दोकनिया ।
एहि मुंहे चलली ए बनिया भागीरथी गङ्गा ।

गङ्गा नहाने से पाप कट जाते हैं । इस भाव का एक लोकगीत देखें-

गङ्गा नहइला से पाप कटित होइहें, निरमल होइहें देहियां ।
आरे सुन सखिया आ देखे, गङ्गा जी के लहरिया ॥

गङ्गा में देश-देश के यात्री ही नहीं राजे महाराजे भी नहाने आते हैं -

देस देस जत्री अइहें, राजा अइहें नयपलिया ।
आरे सुन सखिया चल देखें, गङ्गा जी के लहरिया ॥

माँ गङ्गा से अपने अहिवात की भीख केवल भगवती सीता जी ही नहीं प्रत्येक सधवा हिन्दू नारी अपना आँचल पसार माँगती आयी है -

लहु ना कवन सुधवा आसीस अंचरा पसारी ।
सबके सुहाग झरीय झुरि जायरे ।
आ माई गङ्गा के सोहाग जनम-जनम अहवात रे ।

लोकगीतों में गङ्गा और यमुना को आपस में बहिन माना गया है-

छोटी-छोटी डड़िया चननवा के ए गङ्गा मइया ।
लागेल बत्तीस हे हरवा आरे ढोरे-ढोरे ।
सूतिल बाडू कि जागल ए बहिना ।
दुअरा ए जमुना बहिना ढाढ़ी ए दुअरा ।

लोक मान्यता के अनुसार भगवान् नारायण गङ्गा और यमुना के बीच में निवास करते हैं । योग शास्त्र में भी इड़ा और पिंगला के बीच में मेरुदण्ड में सुषुम्ना के षट् चक्रों में सभी देवता निवास करते हैं -

तर बहे गङ्गा से जमुना ऊपर मधु पीपर हो ।
की ए जीब तहवां बसेले नारायन, पतुरी उरेहले हो ।
एहि पार गङ्गा ए हरिजी, ओह पार जमुना ।
ताहि बीच रमवले ए हरिजी, निबुआ के गेहिआ ।

कबीर के नाम पर भी एक लोकगीत इसी तरह का प्रचलित है -

कैसे दिन बितिहँ कौनो जतन बताये जइहो ।
एहि पार गङ्गा ओहिपार जमुना
बिचवा मड़ैया एगो हमका छवाये जैहो ।

*** * * * * * ***

कहत कबीर सुन भाई साधो,
बहियाँ पकड़ के हमके रहिया बताये जैहो ।

गङ्गा-यमुना भारतीय लोकमानस की दो आँखें हैं जिसके माध्यम से लोक समाज अपने सुख-दुःख, उछाह-बधाह देखता चला आ रहा है। जब इतने पुल नहीं थे आवागमन के इतने साधन नहीं थे, तब गङ्गा-यमुना की बाढ़ का क्या अर्थ होता था ? एक मार्मिक गीत देखें -

गङ्गा बढ़िअइली, जमुना उतरइली
से कइसे जइबू ना, अपना बाबा के नगरिया
से कइसे जइबू ना ।

त्रिवेणी का माहात्म्य क्या लोकमानस क्या वेद सबमें भरा है -

समुद्र पत्नोः जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
आत्मावबोधेन् विनापि यत्र तनुत्यजां नास्ति शरीर बन्धः ॥

- रघुवंश महाकाव्य 13/58

त्रिवेणी की इस महत्ता को स्वीकार करते हुये भी एक लोकगीत में जनमानस राम नाम भजने के माहात्म्य को त्रिवेणी माहात्म्य से ऊपर बताता है —

राम भजा एम मन, आंउला में का बा ।
गङ्गा हो जमुनवाँ तिरबेनिया मे का बा ॥

लोकगीतों में गङ्गा यमुना शब्द का प्रयोग पवित्रता के रूप में हुआ है —

ए रानी गङ्ग जमुन मोरी माता गरब बोली बोले उ ।
आई गईले जेठ के महिनवा ए भइया ।
लुहिया त अब चलेले झकझोर ।
तपत बाटे सुरुज नाचत बाय दुपहरिया ।
अँगिया उड़ावै चलि चलि पछुआ बयेरिया ।
सुख गइली ताल तलइया नदिया सिकुड़ली ।
हरियर उमरौही घास दरियैं भुकुड़ली ।
डौका (लड़का) जनमले चउआ चनन बेलपात ।
डौकी जनमले गङ्गाजली ।

पुत्र प्राप्ति के लिये गङ्गाजी से विनय करती हुयी स्त्री के भाव एक लोकगीत में देखें —

राजे, गङ्गा किनारे इकतिरिया जु ठाढ़ी अरज करै ।
गङ्गे, एक लहर हमे देउ तौ जामेडूबजैऐ, अरे जामेडूब जैऐ।
कै दुखरी तोय सास ससुर को, कै तेरे पिया परदेस ?
कै दुखरी तोय मात पिता कौ, कै मां जाए वीर, काए दुख डुबि हौं।
ना दुखरी मोय मात पिता को, ना मां जाए वीर

ना ही दुख मोय सास ससुर को नाँय मोरे पिय परदेस ।
सास बहु कहि नाय बोलै, ननद भाभी ना कहैं
नाहो राजे, वे हरिबाँझ कहि टेरै तो छतिया जु फटि गई ।
जाई दुख डूबि हों ।
राजे, लौटि उलटि कर जाउ, लालबिहार होय ।
धनि-धनि गङ्गे तोय धनि ए
तुमने बढ़ायो मेरो मान ।
आदिवासियों की मान्यता के गीत में गङ्गा को देखें —
देवता मनावे बड़ अरे ऋखि रावन
बोलतेहु हुरे हो कोखिनाहिं कछुरे
राजा चढ़ावे चढ़उवा चननबेलपात
रानी चढ़ावे गङ्गाजली
डौका जनमले चढ़ेला चननबेलपात
रानी चढ़ावे गङ्गाजली ।
संस्कार गीत में भी गङ्गाजल जनमानस में रची-पची हैं -
खरही काटी-कुटी मंड़वा छवयबइ मड़वा मे कलसा धरइबई।
ओकरामे भरबई पनियाँ ओकरामे धरबई पनफूलवा ।
गङ्गाजलआनि देबो पुंगीफल धान ।
चउमक बराइदेबो सगरो अँजोर।
लोकमानस में माँ गङ्गा के प्रति लगाव देखें —
हो गङ्गा मैया अगमलहराय
सिव की जटा जूट से निकरीं
पाप और ताप नसाय
एक लहर हमे देहु बरदानी
जुग जुग जीवन फेरि कल्यानी
जो पावै तरि जाये ।

*   *   *   *

पनवा कतरि कतरि भाजी बनावउ
लौंग दिहौं धौवनारि ।
अच्छे अच्छे जेवना बनावौ मोरी कामिनी
हमहूँ जाबै गङ्गा नहाय ।

*   *   *   *

मातु गङ्गा लागि भगीरथ बेहाल ।
कोउ लीपै अगुआ तकोउ पिछवार
भगीरथ लीपै हथ सिव कै दुआर
कोउ माँगै अनधन कोउ धेनुगाय
भगीरथ माँगै गङ्गाजी के धार
आगे-आगे भगीरथ जावें
पाछे-पाछै सुरसरि पसरै ।

*   *   *   *

सोने की थारी में जेवना परोसलों, मोरा जेवन वाला विदेस,
मोरी बारी उमरिया नइहर तरसे ।
झझरे गेडुअवा गङ्गाजल पानी, मोरा पीअनवाला विदेस ।
विदाई गीत में भी गङ्गा जनमानस में छायी हुयी है -
बाबा के रोअले गङ्गा बढ़ि अइली, आम्मा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे, भउजी नयनवों ना कोर।

*   *   *   *   *   *   *

गङ्गा से आँचल पसार कर पुत्र की भीख माँगती हुयी माताओं के भाव देखें —

अँचरा पसारि भीख माँगेले बलकवा के माई ।
हमरा के बालकवा भीख दीं ।
मोरी दुलारी हो मइया, हमरा के बलकवा भीख दीं ।

गङ्गा के नाम का शपथ उठाने की परम्परा भी लोकमानस में पहले से ही चली आ रही है —

जब बहिनी गइली गङ्गा किरियवा हो,
तब गङ्गाजी गइली झुराइ हो राम ।
जब बहिनी गइली सुरुज किरियवा हो
उगल सुरुज गइलै छिपाई हो राम

* * * * * * *

जब रे गउरा अगिनि हाथ कव लो, अगिनि गइली निझाई।
जब रे गउरा गङ्गा बीचे पइठली, गङ्गाजी गइली सुखाई ।
जब रे गउरो सरप हाथ लवली, सरप बइठे फेटा मारि ।

इस तरह हम देखते हैं कि पुराणों की तरह लोक-मानस में भी गंगा का प्रभूत प्रसार है । वे लोक के जीवन में इस तरह रच-पच गई हैं कि प्रत्येक आस्थावान हिन्दू परिवार की सबसे पवित्रतम और पूज्यतम सदस्य बन गई हैं । शादी-विवाह में भी प्रत्येक हिन्दू परिवार पहला निमंत्रण माँ गंगा को ही भेजता है । लोकमानस में गंगा-जल मंगल, पवित्रता और शुभ का पर्याय बन गया है । यहाँ तक कि विवाहोत्सवों में भी जल नहीं, गंगाजल परोसा जाता है । बच्चों के जन्म एवं विवाह में माँ गंगा को पियरी चढ़ाने की प्रथा पूरे भारत के हिन्दू परिवार में सामान्य है । अतः हम कह सकते हैं कि गंगा भारतीय लोकजीवन की प्राणधारा है ।



अष्टम अध्याय

गङ्गा नदी नहीं संस्कृति है

मनुष्य और पशु में अन्तर क्या है ? आहार, निद्रा, भय, मैथुन दोनों तरफ बराबर हैं । शास्त्र कहता है कि मनुष्य के पास पशुओं से एक ही गुण अधिक है जो उसे उनसे अलग कर देता है और वह गुण है धर्म । पर कुछ लोग धर्म शब्द का अर्थ विस्तार कर पशुओं में भी धर्म खोज लेते हैं और यहाँ तक घोषणा कर डालते हैं कि पशु अपने धर्म में मनुष्य से कहीं अधिक पक्के होते हैं । जैसे शेर मर जायेगा लेकिन घास नहीं खायेगा और उधर गाय भी भूखों मर जायेगी पर बगल में पड़ा हुआ मांस नहीं खायेगी । आदमी तो कुछ भी खा लेगा, सामान्य लोगों की क्या बात की जाये विश्वामित्र तक इसके उदाहरण हैं। वास्तव में मनुष्य पशु से यहीं आगे निकल जाता है क्योंकि वह प्रकृति की परवशता की गाँठे खोलना सीख गया है । पशुओं के लिये सारे नियम प्रकृति बनाती है पर मनुष्य अपने लिये स्वयं नियम बनाने लगा है । उसने प्रकृति की पराधीनता का जूता उतार फेंका है । मनुष्य अपने लिये जो नियम बनाता है उसे ही संस्कृति कहते हैं । हमारे यहाँ प्राचीन काल में धर्म और संस्कृति के लिए अलग-अलग शब्द नहीं थे । अतः हम संस्कृति का पुलिंग धर्म और धर्म का स्त्री लिंग संस्कृति कर सकते हैं । जब हमारे शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य के पास धर्म है जो उसे पशुओं से अलग करता है तो इसका अर्थ इतना ही है कि पशुओं के जीवन का लक्ष्य और जीवन शैली का निर्धारण प्रकृति करती है जबकि मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य और शैली का निर्धारण स्वयं करता है ।

अतः हम पशु और मनुष्य में भेद करते हुये कह सकते हैं कि पशु

के पास केवल प्रकृति है जबकि मनुष्य के पास प्रकृति और संस्कृति दोनों हैं और वह प्रकृति के परवश न होकर अपनी संस्कृति द्वारा प्रकृति को वशीभूत करने का प्रयास करता है - **'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय'**। वास्तव में पशु और मनुष्य में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य के पास अतीत होता है, परम्परा होती है, जबकि पशु के पास न तो अतीत है और न ही परम्परा । चूँकि पशु के पास अतीत नहीं है इसीलिये उसके पास भविष्य भी नहीं है, उसके पास केवल वर्तमान होता है । यही कारण है कि पशुओं के सुख और दुःख मनुष्य से कम हैं क्योंकि वे अपने सुख और दुःख दोनों संजोकर रखना नहीं जानते ।

पशुओं के पास सहजात प्रवृत्ति होती है, स्मृति नहीं । स्मृति का ही दूसरा नाम अतीत है । यदि व्यक्ति स्मृतिशून्य हो जाये तो वह अतीत शून्य भी हो जायेगा । जैसे धागों के आपसी ताने-बाने से वस्त्र बनता है उसी तरह व्यक्ति-व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों के ताने-बाने से समाज बनता है और जैसे धागा वस्त्र में समाहित होकर वस्त्र बन जाता है वैसे ही व्यक्ति समाज में समाहित होकर समाज बन जाता है । जैसे व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत स्मृति होती है वैसे ही समाज की सामूहिक स्मृति होती है, जिसमें व्यक्तियों की स्मृतियाँ उसी तरह समाहित होती हैं जैसे वस्त्र में सूत । एक समाज अपने इसी सामूहिक स्मृति या अतीत में अपने सुख-दुःख और अनुभूतियों को जुगाड़ कर रखता है और अनुभूतियाँ ही उस समाज विशेष की संस्कृति होती हैं । अब संस्कृतियों का भी साझा हो सकता है जिससे राष्ट्र बनता है और फिर राष्ट्रों के साझे से विश्व-कुटुम्ब का निर्माण होता है । यही संस्कृतियाँ जब स्थूलतम अभिव्यक्ति लेती हैं तो सभ्यताओं का निर्माण होता है । दुनिया की जितनी भी सभ्यतायें हैं यदि उन्हें सूक्ष्म रूप दे दिया जाये तो वे सब विचारों में बदल जायेंगी । फिर कुतुबमीनार से लेकर पीसा की मीनार तक, ताजमहल से लेकर एम्पायर स्टेट तक सब अपने सूक्ष्म रूप में

विचारों में परिवर्तित हो जायेंगे । विश्व की सभी संस्कृतियाँ और सभ्यतायें केवल विचारों की स्थूल अभिव्यक्ति मात्र हैं ।

पर ये विचार कहाँ से आते हैं ? यदि विचारों के सूत्र पकड़कर हम उनके दूसरे छोर तक पहुँचे तो पायेंगे कि इन सभी विचारों के सूत्र किसी न किसी भाव या इच्छा से जुड़े हैं । बिना भाव के कोई विचार उठ ही नहीं सकते । अतः यदि दुनिया भर के सभी विचारों को हम और सूक्ष्म बना सके तो ये सभी भावों में बदल जायेंगे पर भाव क्या इस जगत् के अन्तिम आधार हैं ? यदि हम भावों की गहराई में जायें तो पायेंगे कि ये सभी भाव जहाँ से उद्‌बुद्ध हो रहे हैं वह आधार है - चेतना । बिना चेतना के कोई भाव उठ ही नहीं सकते । इस तरह से यह निश्चित हो गया कि इस विश्व का अन्तिम आधार चेतना है । पर यह चेतना क्या अनेक है या जैसे सारे विश्व ब्रह्माण्ड का एक ही आकाश है इसी एक आकाश में अनन्त कोटि आकाशगङ्गायें और ज्ञात-अज्ञात ब्रह्माण्ड घूर्णित हो रहे हैं उसी प्रकार एक ही चेतन की अभिव्यक्ति यह समस्त विश्व है ? तो जिस प्रकार से हम घटाकाश, मठाकाश, अलग-अलग राष्ट्रों के आकाश, अलग-अलग ब्रह्माण्डों के आकाश का सामान्यीकरण एक महत् आकाश में कर सकते हैं, जिस प्रकार कुँए, तालाब, झीलों, नदियों और सागरों के जल का सामान्यीकरण विश्वव्याप्य जलतत्त्व में कर सकते हैं उसी प्रकार अलग-अलग सोपानों में अभिव्यक्त चेतना का सामान्यीकरण हम एक अखण्ड चैतन्य में कर सकते हैं ? वही अखण्ड चैतन्य स्थूल होकर भाव, और स्थूल होकर विचार, और अधिक स्थूल होकर कार्य तथा मूर्तमान विश्व-ब्रह्माण्ड में अभिव्यक्त हो रहा है ।

इस तरह से हम देखते हैं कि इस दृश्यमान जगत् का पर्यवसान हम विचार में, विचार का पर्यवसान इच्छा या भाव में, और इच्छा या भाव का पर्यवसान हम एक अखण्ड चैतन्य में कर सकते हैं । वही अखण्ड चेतना इस समूचे दृश्य-अदृश्य जगत् का अधिष्ठान है, वही

ब्रह्म है । वेदों ने उसी को सत् असत्, सदसत्, न सत् न असत् कहा है । उसे ही सम्पूर्ण जगत् का कारण कहा है । उस परमाधिष्ठान में ये सब प्रत्यक्ष दिखने वाला जगत् उत्पन्न होता है, उसी में क्रीड़ा करता है और फिर थककर उसी में विलीन हो जाता है । उसी एकमेवाद्वितीयम् परमाधिष्ठान में सर्वप्रथम इच्छा उत्पन्न हुयी । यहाँ हम इच्छा को भाव भी कह सकते हैं । इच्छा विचार नहीं होती है । हाँ, विचारों की जननी अवश्य होती है । एक इच्छा को पूरी करने के लिये अनेक विचार मन में आते हैं और फिर उन्हीं में से कुछ-एक कार्यरूप में परिणत होते हैं। चेतन में इच्छा का उठना स्वाभाविक ही है । श्रुतियाँ कहती हैं - **तदेक्षत् बहुस्यां प्रजायेय** अर्थात् उस सत् ने ईक्षण किया कि मैं बहुत हो जाऊँ और फिर उसी के संकल्प से यह सब कुछ दृश्य-अदृश्य जगत् उत्पन्न हुआ । आज विज्ञान के पास सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में 'बिग बैंग' या 'महाविस्फोट' नामक सिद्धान्त है पर यह महाविस्फोट क्यों हुआ, इसका कोई समाधानपरक उत्तर उसके पास नहीं है । वास्तव में इस सृष्टि के मूल में अचेतन को स्वीकार कर इस सृष्टि की उत्पत्ति की अन्तिम व्याख्या हो ही नहीं सकती । कोई न कोई 'क्यों' लगा ही रहेगा ।

इस तरह हम देख सकते हैं कि यह पूरा विश्व चिद्विलास है । इस विश्व के पीछे एक अखण्ड, अनन्त चेतना क्रीड़ा कर रही है । यह विराट् जगत् उसी की स्थूलतम अभिव्यक्ति है । चूँकि इस विश्व का कण-कण उसी परमचेतन की अभिव्यक्ति है इसीलिये इस विश्व का कण-कण चेतन है, यहाँ कुछ जड़ तो है ही नहीं । विज्ञान पहले इस जगत् के पीछे जड़ देखता था । अब उसे ऊर्जा दिखाई देने लगी है । ऊर्जा के पीछे वह जा नहीं सकता क्योकि उसकी मशीनी आँखों के नीचे चेतना कभी आ ही नहीं सकती है । इसलिये वह अपनी कूद कूद चुका है और सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को ऊर्जा का ही घनीभूत रूपांतरण बताकर विश्राम कर रहा है । जैसे स्वर्ण से बने सभी आभूषण स्वर्ण ही होते हैं वैसे ही चेतन

के संकल्प से विनिर्मित यह विश्व चेतन ही है । हम चेतना के एक आयाम में जीते हैं, इसीलिये चेतना के दूसरे आयाम में जीने वाली वस्तुयें हमें जड़ लगती हैं । अतः ये नदियाँ, वन, पर्वत, झील, झरने और इन सबको अपनी गोद में लिये यह पृथ्वी सब चेतन ही हैं, भले ही हमारा उनकी चेतना से संवाद नहीं हो पा रहा हो । अतः यह गङ्गा भी चेतन ही हैं, जड़ नहीं ।

जैसे हमें हमारा शरीर तो दिखता है पर इस शरीर में बैठी इस शरीर की अभिमानी चेतना नहीं दिखती है । उसी प्रकार गोमुख से गङ्गासागर तक मचलती हुयी जलराशि जो कि गङ्गा माता का पाञ्चभौतिक शरीर है, दिखती है पर उस शरीर में बैठी उसकी अभिमानी चेतना का हमें अनुभव नहीं होता है । हमारे पूर्वजों ने गङ्गा की उसी चेतना से तादात्म्य किया, फिर हमें बताया कि यह गङ्गा मात्र नदी नहीं, गङ्गा माँ हैं । यह विश्वव्याप्य अखण्ड चैतन्य की ममता और करुणा का अमृतमय प्रवाह हैं । यह हमारे अस्तित्त्व के तीनों स्तरों पर हमारे साथ-साथ बहती है, जैसे कि ममतामयी माँ कदम-कदम पर अपने-अपने बच्चों का ध्यान रखती है । गङ्गा माँ की तीन धारायें पुराण प्रसिद्ध हैं - (1) आकाश गङ्गा या मन्दाकिनी (2) पाताल गङ्गा या भोगावती और (3) भूतल पर बहने वाली गङ्गा या भागीरथी । ये तीनों लोक प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भी होते हैं । व्यक्ति का कारण शरीर एवं उस तल पर जो उसकी चेतना की व्याप्ति है वही उस व्यक्ति के भीतर पाताल लोक है । जो उसका सूक्ष्म शरीर है वही उसका आकाश लोक है और जो उसका स्थूल शरीर है वहीं भूतल लोक है । इन तीनों स्तरों में एक व्यक्ति प्रतिदिन विचरण करता है । निद्रा अवस्था में वह अपने अस्तित्त्व के पाताल लोक में होता है, स्वप्नावस्था में वह आकाश लोक में होता है और जाग्रत-अवस्था में भूलोक में होता है । एक जीव, इन तीनों लोकों या तीनों अवस्थाओं में चाहे जहाँ भी रहे, विश्वव्याप्य चेतना की ममता, करुणा इन तीनों लोकों

और तीनों अवस्थाओं में आकाश गङ्गा, पाताल गङ्गा और भागीरथी बनकर उसे उपलब्ध रहती है । 'ईश्वर' उस अखण्ड चेतना को यह संज्ञा देने से बचते रहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि करुणा प्रत्येक काल, प्रत्येक अवस्था एवं प्रत्येक देश में जीव की जीवनधारा के साथ-साथ बहती रहती है । अब यह जीव पर है कि वह उसकी करुणा में अवगाहन करता है या नहीं ।

गङ्गा भारतीय संस्कृति का मूर्तिमंत और जीवंत प्रवाह तो है ही, उसकी एक-एक लहरों में भारतीय अतीत का एक-एक अध्याय समाहित है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में लिखा भी है -

कहि-कहि कोटिग कथा प्रसंगा, राम बिलोकहि गङ्ग तरंगा।

हमारे पूर्वजों के सपने, जय-पराजय, प्रार्थनायें-मिन्नतें, तप-व्रत, आँसू-मुस्कान, गीत-संगीत से लेकर उनकी अस्थियाँ तक इस गङ्गा माता के प्रवाह में लहर-लहर में अनुस्यूत हैं । गङ्गा नदी नहीं संस्कृति है । गङ्गा के बिना भारत आत्मा के बिना शरीर की तरह अर्थात् शव हो जायेगा । हम मात्र भूगोल को देश कह सकते हैं, राष्ट्र नहीं, राष्ट्र तो देश-विशेष की साँस्कृतिक अस्मिता का ही नाम है । गङ्गा ही भारत राष्ट्र की प्राण-धारा है। साँस्कृतिक-अस्मिता है । वह मात्र राष्ट्र-नदी नहीं वरन् स्वयं भारत राष्ट्र है।

गङ्गा केवल भारत की ही नहीं वरन् इस विश्व ब्रह्माण्ड की संस्कृति का मूर्त रूप है । प्रकृति और संस्कृति का भेद एवं रहस्य हम इस निबन्ध के आरम्भ में ही देख चुके हैं । प्रकृति के पृष्ठ पर जब मानवीय हाथ, अपनी अनुभूतियों एवं कल्पनाओं के चित्र को साकार रूप देता है तो वही मानवीय संस्कृति बन जाती है । इस प्रकृति का प्राकृतिक सत्य तो यह है कि इसकी सारी विविधितायें मात्र छलावा हैं और यह एक तत्व की ही विविध अभिव्यक्ति हैं अर्थात् जो बात हजारों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने हमें बता दिया है - **'एकोहम् बहुस्याम्'** वही विज्ञान आज बता रहा है, वह भी आधे-अधूरे ढंग से । पहले विज्ञान कहता था कि

यह सारी सृष्टि अणुओं से मिलकर बनी है । फिर उसे परमाणु का पता चला और बहुत लम्बे समय तक उसने इस दुनिया को यह कहकर धोखे में रखा कि परमाणु ही इस विश्व ब्रह्माण्ड की ईकाई है और ये अविभाज्य है । डाल्टन के परमाणुओं के अविभाज्यता के सिद्धान्त का डंका बजता रहा पर विज्ञान को जल्द ही अपने अज्ञान का पता चल गया कि परमाणु अविभाज्य नहीं वरन् अन्य सूक्ष्म कणों से मिलकर बने हैं और विभाज्य हैं । फिर विज्ञान को इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान का पता चला । लेकिन आज विज्ञान इन्हें भी मूलकण नहीं मानता है और इस ब्रह्माण्ड की विविधता जिस एक मूलकण की शरारत है विज्ञान उसे आज क्वार्क या क्वांटा कहता है । अब विज्ञान अपने इस अज्ञान पर कब तक कायम रहेगा ये तो समय ही बतायेगा पर एक बात जो विज्ञान ने पते की ढूँढ निकाली है वह है इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान । एक परमाणु मूल रूप से इन्हीं तीन कणों से मिलकर बना होता है । इलेक्ट्रान ऋणावेशित प्रोटान धनावेशित और न्यूट्रान आवेश रहित कण हैं । पूरे विश्व की विचित्रता और वैविध्य प्रकृति की इन्हीं तीन मूल लिपियों से अंकित हैं । एक प्रोटान और इलेक्ट्रान एक साथ खड़े हों तो इस सृष्टि का प्रथम तत्व हाइड्रोजन बन जाता है । दो इलेक्ट्रान, दो प्रोटान और दो न्यूट्रान साथ हों तो दूसरा तत्व हिलियम बन जाता है । इसी प्रकार छः प्रोटान, छः इलेक्ट्रान और छः न्यूट्रान मिले तो कार्बन तथा आठ-आठ मिले तो ऑक्सीजन । इसी तरह से ये तीन कण ही अपने अनुपात बदल-बदल कर विश्व की इस विविधता के पीछे खड़े हैं ।

जब हमारा आध्यात्म कहता था कि यह अनेकता एक ही तत्व की अभिव्यक्ति है तो तार्किक और वैज्ञानिक लोग इसकी हँसी उड़ाते थे पर आज विश्व की विविधता के लिये उत्तरदायी इन तीन कणों के पीछे खड़े उस मूल कण की भी पहचान हो गयी है पर हम यहाँ यह बताना चाहते हैं कि ये इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान आज के विज्ञान की कोई

मौलिक खोज नहीं है । इसे हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले वेदों में ही पता लगा लिया था । बस उनकी अभिव्यक्ति की भाषा और शैली अलग थी । हमारे वेदों और उपनिषदों में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है । सांख्य दर्शन भी प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहता है । ये तीन गुण हैं - सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुण । सत्त्व गुण शान्त, प्रकाशक एवं ज्ञानस्वरूप होता है । जब चित्त में किसी प्रकार का आवेश न हो एवं चित्त शांत एवं सुखरूप हो तो उसे सत्त्वगुणी चित्त कहते हैं । अतः सत्त्वगुण सभी प्रकार के आवेश से रहित शांत और संतुलित अवस्था का नाम है । रजोगुण धनात्मक आवेश को कहते हैं इसमें व्यक्ति महत्वाकांक्षी और कर्मशील हो जाता है । इस गुण से आवेशित व्यक्ति नयी-नयी इच्छाओं की पूर्ति के लिये नये-नये कर्मों का अनुष्ठान करता रहता है । इसकी प्रकृति चंचल होती है । अतः सर्जना और कर्म की उर्जा से आवेशित गुण को रजोगुण कहते हैं । तमोगुण रजोगुण के ठीक विपरीत गुण को अर्थात् ऋणात्मक आवेश को कहते हैं । इस आवेश से आवेशित चित्त प्रमाद और आलस्य से ग्रसित, मूढ़ता या मूर्छना की स्थिति को प्राप्त हो जाता है । हमारे वैदिक शास्त्रों के अनुसार प्रकृति की सारी विविधता इन्हीं तीनों गुणों के आपसी समीकरण के परिणाम हैं । रजोगुण रचनात्मक शक्ति का प्रतीक, सत्त्वगुण संतुलनात्मक शक्ति का प्रतीक तथा तमोगुण समाहारात्मक या विध्वंसात्मक शक्ति का प्रतीक है। यदि हम प्रकृति के इन तीन गुणों का मिलान विज्ञान के न्यूट्रान, प्रोटान और इलेक्ट्रान से करें तो हम पायेंगे कि ये सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के ही बदले हुये नाम हैं ।

तो प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । यह तो हुआ प्रकृति का प्राकृतिक स्वरूप पर इसमें दुनिया में सबसे पहले सभ्य होने वाली मानव-जाति ने थोड़ी सी अपनी संस्कृति भी मिला दी है । इस जाति ने जिसे आर्य कहलाने का गर्व प्राप्त हुआ इन तीनों शक्तियों के एक-एक अधिष्ठाता

शक्तिमान की कल्पना की और उनका मानवीकरण भी कर दिया। रजोगुण के अधिष्ठाता शक्तिमान को नाम मिला ब्रह्मा का, ये सृष्टि के रचनाकार हैं और प्रकृति की रचनात्मक शक्तियों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। सत्त्वगुण के अधिष्ठाता शक्तिमान हैं विष्णु जो प्रकृति की पोषण या स्थायित्त्व शक्ति के प्रतीक हैं तथा तमोगुण के अधिष्ठाता शक्तिमान हैं शिव या रुद्र जो प्रकृति की समाहारात्मक या संहारक शक्ति के प्रतीक हैं। पूरी भारतीय संस्कृति इन्हीं त्रिदेवों के समुच्चय का नाम है। गङ्गा माता का सम्बन्ध इन तीनों देवताओं से है। वे विष्णु के पदकमल से निकलीं हैं। ब्रह्मा के कमण्डल में रही हैं और वहाँ से निकलकर शिवजी के जटाजूट में समा गयी हैं। अतः जब हम गङ्गा में स्नान करते हैं तो पूरी भारतीय संस्कृति की अस्मिता में ही अवगाहन करते हैं और गङ्गा की धारा का स्पर्श करते ही एक श्रद्धालु भारतीय संस्कृति की त्रिवेणी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन तीनों देवताओं के स्पर्श का पुण्यलाभ प्राप्त कर लेता है।

जो श्रद्धालु नहीं है और जिन्हें अपनी परम्पराओं और संस्कृति तथा सभ्यता का मूल्य नहीं मालूम है उनके लिये भी गङ्गा का पर्यावरणिक महत्त्व कम नहीं है। उत्तर भारत का विशाल कृषि-प्रधान मैदानी भाग और उसकी उर्वरता गङ्गा और उसकी सहायक नदियों की ही देन हैं। जब विज्ञान के राक्षस से मानव-जाति की मैत्री नहीं हुयी थी तो यही मैदानी भाग हरे-भरे जंगलों एवं जंगली जीवों से भरा-पूरा था। तब इस गङ्गा के साथ-साथ भारत पर और पूरी मानव-जाति पर आकाशगङ्गा और पातालगङ्गा की कृपा भी बनी हुयी थी। आकाशगङ्गा का मतलब मानसूनी बादलों में तैरती अपार जलराशि और पाताल गङ्गा का मतलब पृथ्वी के नीचे की मीठे एवं पीने योग्य पानी की राशि है। कहना नहीं होगा कि ये दोनों गङ्गायें अर्थात् आकाश एवं पाताल गङ्गा आज विज्ञान के युग में भी पृथ्वी पर जीवन के एकमात्र स्रोत हैं। इन

दोनों गङ्गाओं का सम्बन्ध इस भूतल पर बहने वाली गङ्गा (जो पृथ्वी पर बहने वाली सारी नदियों की साम्राज्ञी और प्रतिनिधि हैं) से है ।

इस गङ्गा के सूखने का सीधा अर्थ है इन दोनों आकाश एवं पाताल गङ्गाओं का भी सूख जाना और पृथ्वी से पूरी तरह से हरियाली और जीवन का विनाश हो जाना । कुछ लोग तर्क देते हैं कि यदि बाँध नहीं बनेंगे तो बिजली कैसे पैदा होगी ? तो मेरा यही कहना है कि आप आज समय के उस मोड़ पर खड़े हैं जहाँ आपको बिजली और पानी में से एक का चुनाव करना है । आज के युग के बिजली की माँग पूरी करने में गङ्गा ही नहीं, विश्व की सारी नदियाँ मर जायेंगी और पृथ्वी पर नदियों की विदाई के साथ-साथ आकाशगङ्गा और पातालगङ्गा की अर्थात् वर्षा और पेयजल की भी विदाई हो जायेगी । बिजली को आये हुये इस धरती पर कितने दिन हुये ? मानवीय सभ्यता ने अपने सभी स्वर्णिम युग बिना बिजली के ही, लेकिन इन नदियों के साथ देखे हैं। हम बिना बिजली के पुनः अपनी सभ्यता के स्वर्णिम-युग में लौट जायेंगे पर बिना नदियों के बिजली के साथ एक दशक भी नहीं जी पायेंगे । आज का युग परमाणविक ऊर्जा का युग है । हम परमांणु उर्जा से भी बिजली बना सकते हैं और नदियों के सीने से सभी बाँध हटाकर नदियों को भी आजाद कर सकते हैं । इस तरह से हम अपने सानुकूल प्रकृति और बिजली दोनों का आनन्द उठा सकते हैं । आइये, हम-आप मिलकर नदियों की महारानी भगवती गङ्गा के साथ-साथ विश्व की अन्य सभी नदियों की धारा को अविरल और निर्मल बनाने का शिव-संकल्प लेकर अपनी आने वाली पीढ़ियों के नाम जीवन की संभावनाओं से परिपूर्ण प्रकृति और संस्कृति उत्तराधिकार के रूप में सौंपने के भगीरथ प्रयास में जुट जायें ।



नवम अध्याय

गङ्गा राष्ट्र-नदी क्यों ?

राष्ट्र मानवीय-सभ्यता के सर्वोच्च शिखर का नाम है । राष्ट्र मनुष्य के स्थूल व्यक्तित्त्व के सर्वाधिक आध्यात्मिक विस्तार का नाम है । इसीलिये राष्ट्र भौतिक नहीं आध्यात्मिक अवधारणा है जबकि राज्य इस आध्यात्मिक अवधारणा की भौतिक अभिव्यक्ति मात्र है । अतः हम कह सकते हैं कि राज्यरूपी शरीर का राष्ट्र आत्मा है । एक स्वस्थ व्यक्ति के लिये जैसे शरीर और आत्मा दोनों का सुपुष्ट होना आवश्यक है वैसे ही एक स्वस्थ एवं सबल देश के लिये उसके राज्य और राष्ट्र दोनों ही पक्षों का सम्यक् विकास एवं पुष्टता आवश्यक है । किसी भी देश की भावनात्मक एवं साँस्कृतिक एकता का नाम राष्ट्र है और उसकी भौतिक एवं राजनैतिक एकता का नाम राज्य है । हम कह सकते हैं कि भारत में और विशेषकर प्राचीन भारत में देश के इन दोनों आयामों का समान्तर विकास हुआ था और यही कारण है कि आज भारत दुनिया के इतिहास में सबसे प्राचीनतम राष्ट्र है ।

भावनात्मक एकता कोई एक दिन में पैदा होने वाली वस्तु नहीं है। ऐसा नहीं है कि कुछ लोग एक कमरे में बैठ कर आङ्ग्ल भाषा में लिख दें - 'वी आर द पीपुल ऑफ इन्डिया' और भारत के सारे लोग एक हो जायें'। किसी भी जनसमुदाय को एक राष्ट्र के रूप में ढालने के लिये कागज के पृष्ठ पर नहीं, हृदय के पृष्ठ पर एकता के मन्त्र लिखने होते हैं । जैसे एकता के मन्त्र हमारे वैदिक ऋषियों से लेकर पूज्यपाद शङ्कराचार्य एवं गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है । भारत जैसे विविधताओं से भरा देश जिसमें सैकड़ों प्रजातियाँ, सैकड़ों भाषायें एवं

सैकड़ों धर्म और सम्प्रदाय के लोग रहते हों यह एक दिन में राष्ट्र नहीं बना । आसेतु हिमालय इस देश को भावनात्मक एकात्मता के सूत्र में पिरोने में सहस्राब्दियों की साधना लग गयी । भारत राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया का वेदों में उल्लेख है यथा —

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः
तपो दीक्षां उपसेदुः अग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलं ओजश्चजातम्
तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ॥

- अथर्ववेद 19/41/1

अर्थात् आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत् का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के प्रारंभ में जो दीक्षा लेकर तप किया उससे राष्ट्र निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी प्रकट हुआ । इसलिये सब देवता इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें। स्पष्ट है कि यह राष्ट्र हमारे ऋषियों के तप से प्रसूत है, न कि किसी संविधान निर्मात्री सभा की कोख से । विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ और भारतीय संस्कृति के उत्स ऋग्वेद में भी एक मन्त्र में कहा गया है कि गायों को आगे बढ़ाने के लिये प्रयोग की जाने वाली लाठियाँ जिस तरह निर्बल तथा पृथक्-पृथक् हुआ करती हैं वैसे ही निर्बल तथा पृथक्-पृथक् लोग शिशुवत् तथा परिच्छिन्न थे । किन्तु उनके नेता ऋषि वशिष्ठ हुये । तब इसी भारत के लोग प्रख्यात तथा समृद्ध हुये । राष्ट्र के नाते यशस्वी हुये यथा —

दण्डाइवेद्गो अजनास आसन्
परिछिन्ना भरता अर्भकासः
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ
आदित्तृतसूनां विशों अप्रथन्त ।

- ऋग्वेद7/33/6

अतः भारत-राष्ट्र के निर्माता हमारे ऋषि हैं न कि गाँधी, नेहरु आदि

जिन्होंने हमारे ऋषियों की जुगाई हुयी सहस्त्राब्दियों की थाती को आपस में बैठकर ऐसे बाँट लिया जैसे एक बाप के नालायक बेटे स्वयं कुछ न कमाकर उसकी कमाई को आपस में बाँट लेते हैं । यह राष्ट्र हमारे ऋषियों की प्रार्थना की उपज है जो इस धरती पर सबसे पहले अस्तित्ववान हुआ —

आ ब्रह्मन ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसीजायताम्
आराष्ट्रे राजन्य शूरः इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्,
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनऽवान आशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्ताम्
योग क्षेमो नः कल्पताम् ।

- शुक्लयजुर्वेद 22/22

प्रश्न यह है कि राष्ट्र कहते किसे हैं ? कभी-कभी हम शब्दों का प्रयोग उसकी अर्थानुभूति के बिना ही करते जाते हैं - जैसे हम गङ्गा को माँ तो कहते हैं पर माँ की भावना नहीं रखते हैं । इसीलिये माँ कहते हुये भी उनमें गन्दगी डालते रहते हैं । उनका अपमान और दुर्गति करते रहते हैं पर यही कार्य क्या कोई उस स्त्री के साथ कर सकता है जिसके प्रति वह सचमुच माँ की भावना रखता है ? क्या कोई अपनी माँ पर खँखार कर थूक सकता है या उसके ऊपर नाबदान का जल छोड़ सकता है ?

इसीलिये जहाँ महाभाष्यकार पतंजलि ने यह कहा -

'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सम्प्रयुक्तः लोके स्वर्गे च कामधुक भवति'

'वहीं आङ्ल दार्शनिक वाल्तायर भी कहता है, "If you want to talk with me, define your terms. तो जैसे हम गङ्गा माता, गोमाता

आदि शब्दों का प्रयोग उसकी अर्थानुभूति या अर्थैकात्मता के साथ नहीं करते हैं वैसे ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग भी हम बिना उसकी अर्थानुभूति के कर डालते हैं ।

आज हम जिस राष्ट्र शब्द से परिचित हैं वह हमारे ऋषियों का नहीं वरन् पश्चिम के उन आकाओं का है जिनके हम सदियों तक गुलाम रहे हैं और आज भी हमारे बहुत से बुद्धजीवी मानसिक स्तर पर गुलाम बने हुये हैं । लेकिन हमारे ऋषियों के राष्ट्र और इन पश्चिमी चिन्तकों के राष्ट्र में उतना ही अन्तर है जितना अन्तर हमारे पिताश्री और उनके पापा में तथा माताश्री और उनके मम्मी में है । हमारे यहाँ भावनात्मक एकता एवं ईकाई का नाम राष्ट्र था उनके यहाँ राजनैतिक एकता और ईकाई का नाम राष्ट्र है । इसीलिये हमारे यहाँ एक भावनात्मक एकता के अन्दर बहुत सी राजनीतिक ईकाईयाँ हुआ करती थीं और उनके अन्दर एक राजनीतिक एकता के अन्दर बहुत से धर्म और सम्प्रदाय और आस्थागत विभिन्नतायें हुआ करती हैं । पश्चिम की तर्ज पर ही आज भारत को भी माता से मम्मी बनाया जा रहा है और एक राजनीतिक ईकाई के भीतर विविध आस्थाओं का पोषण किया जा रहा है, लेकिन यह प्रयोग ऐसा ही है जैसे एक शरीर के भीतर कई आत्माओं का प्रवेश हो जाये । हमारे यहाँ ऐसे शरीर को प्रेतग्रस्त कहते हैं । आज के राष्ट्रीय सिद्धान्त के अनुसार कश्मीर भारत की राजनीतिक इकाई के भीतर तो है पर एक विशेष धर्म एवं आस्था वाले लोग वहाँ नहीं रह सकते । क्या इसी तरह का राष्ट्र हमे चाहिये ? आज के हमारे राष्ट्र-निर्माताओं ने हमें ऐसा राष्ट्र दिया है जिसमें हम एक राजनीतिक इकाई के भीतर रह तो लेंगे पर एक साथ मिलकर एक राष्ट्रगीत नहीं गा सकते ।

वास्तव में प्राकृतिक अनेकता के भीतर भावनात्मक एकता के सूत्र पिरोना ही राष्ट्र निर्माण है और जिस बिन्दु पर जाकर यह कार्य पूर्ण हो जाता है उस भावनात्मक अवस्था को राष्ट्र कहते हैं । इसीलिये राष्ट्र की

रक्षा मात्र किसी देश या राज्य की सीमाओं की रक्षा ही नहीं वरन् उस सूत्र की भी रक्षा करना है, जिसमें उस राज्य की विविधता सलीके से संगुंफित की गई है । भारत के भूगोल को हमारे ऋषियों ने मात्र भूगोल ही नहीं समझा वरन् इसे एक आधिदैविक अस्तित्व का स्वरूप माना है। इसकी गोद में स्थित नदी, पहाड़, जंगल, सरोवर आदि से अपना तादात्म्य स्थापित किया है । अपने साँस्कृतिक नायक भगवान् श्रीराम के व्यक्तित्व में हमारे मनीषियों ने अपना सारा राष्ट्रीय भूगोल पिरो दिया है, यथा -

'समुद्र इव गांभीर्ये, धैर्येण हिमवान इव ।'

तो वहीं **'रामो विग्रहवान् धर्मः'** कहकर अपनी समूची भावनात्मक पूँजी भी इस व्यक्तित्व को अर्पित कर दी है। अतः भारत का सच्चा नागरिक वह है जो भारत के भूगोल को अपना व्यक्तित्व समझे और भारत की समूची साँस्कृतिक एवं धार्मिक पूँजी को अपनी आत्मा समझे। हमारे देश के प्रत्येक नागरिक के व्यक्तित्व का विस्तार हिमालय से कन्याकुमारी तक है और उसकी भुजायें सिन्ध से लेकर अरुणाञ्चल तक फैली है । उसकी आयु शिव में सबसे अधिक है । हमारे वेदों के ऋषियों ने इस देश के वनों, पर्वतों, नदियों, झीलों को इतना आदर दिया कि उन्हें तीर्थ बना दिया है, उन्हें माता-पिता और गुरु से भी आदरणीय और पूज्य बना दिया । उन्होंने अपने देश को माँ की गोद समझा और उनका भावोच्छवास निम्न मन्त्रों के रूप में फूट पड़ा —

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः - अथर्ववेद 12/1/12

भूमे मातः - अथर्ववेद 12/1/63

मातरम् भूमि धर्मणा धृताम् - अथर्ववेद 12/1/17

सानः माता भूमिः । - अथर्ववेद 12/1/10

सर्वं हिमवतो गङ्गा पुण्या च सर्वतः समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ॥ - वायुपुराण 77/1/17

हमारे ऋषियों एवं ऋषितुल्य पूर्वजों ने पर्वतों, नदियों एवं पुरियों के नाम को भगवन्नाम की तरह ही पवित्र माना और प्रत्येक हिन्दू को इनका प्रातःकाल एवं स्नानादि के समय स्मरण करने का विधान बनाया। यथा —

सात पर्वतों का नाम -

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्ष पर्वतः ।
विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥

- कूर्म पु.1/47/23-24

सात नदियों के नाम -

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधं कुरु ।

सात पुरियों के नाम -

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैताः मोक्षदायिका ॥

कुछ लोग इन पर्वतों, नदियों एवं पुरियों के नाम का प्रातः या स्नान के समय जप करने को पोंगापन्थी कार्य समझते होंगे, लेकिन उन्हें नहीं पता कि ये राष्ट्रीय एकता के मन्त्र हैं और एक भारतीय इन्हीं मन्त्रों का जप करते-करते पूरे भारत के भूगोल से तादात्म्य का अनुभव करने लगता है । हमारे पुराणों ने भी हमारे प्राकृतिक विविधता को एकता के सूत्र में पिरोने में पर्याप्त योगदान दिया है । विष्णुपुराण हमारे राष्ट्र की भौगोलिक सीमा का न केवल सीमांकन करता है वरन् उसके कण-कण के प्रति हमारे मन में गौरव और पूज्यता का भाव भरता है यथा —

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥

- वि.पु. 2/3/1

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।

स्वर्गापवर्गास्पद् मार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

- वि.पु. 2/3/24

हमारे ऋषियों के इस राष्ट्र निर्माण के अभियान में जो सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व था वह थी हमारी गङ्गा माता । ऋग्वेद के नदी सूक्त में सबसे पहले हमारी इसी गङ्गा माता का नाम आता है —

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरष्ण्या ।
असिकन्या मरुब्दृधे वितस्तायार्जिकीये शृणुह्या सुषोमया ॥

- ऋ. 10/75/5

जैसे कोई अपने परिवार के सदस्यों को अपनेपन से पुकारता है- ये मेरी माँ, ये मेरी बहन, ये मेरी बेटी वैसे ही अपने राष्ट्रकुल के पर्वत, नदियाँ सब सदस्य हैं और हमारे ऋषि इन्हें पुकारते हैं - ये मेरी गङ्गा, ये मेरी यमुना, ये मेरी सरस्वती । ऋग्वेद के इसी सूक्त के आधार पर अम्बेडकर ने आर्यों के मध्य एशिया या भारत के बाहर के किसी भी स्थान से भारत आने के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया । उनके शब्दों में - "The language in which reference to the seven rivers is made in the Rigveda (75.5) is very significant. No foreigner would ever address a river in such familiar and endearing term as my Ganga, my Yamuna, my Saraswati, unless by long association he had developed an emotion about it. In the face of such statements from the Rigveda, there is obiviously no room for theory of military conquest by the Aryan race of the Dasas and Dasyus". अतः हम अम्बेडकर साहब के द्वारा नदी सूक्त के इस मूल्यांकन से यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि गङ्गा माता एक नदी नहीं वरन् हमारे ऋषियों के हाथ लगा वह मुख्य सूत्र एवं मन्त्र हैं जिससे उन्होंने इस राष्ट्र की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोया है । ऋग्वेद में ही गङ्गा अति पवित्र एवं समूचे पापों का नाश करने वाली नदी की महिमा से मंडित हैं, यथा —

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।

ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥

- परिशिष्ट ऋ. 10/75

अर्थात् जो लोग श्वेत (गङ्गा) और कृष्ण (यमुना) नदी के मिलन स्थल पर स्नान करते हैं वे स्वर्ग को उड़ते हैं और जो लोग वहाँ अपना शरीर त्याग करते हैं अर्थात् अपनी स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त होते हैं वे मोक्ष पाते हैं । इस मन्त्र के साथ जो गङ्गा-महिम्न की तीर्थ-यात्रा आरम्भ होती हैं वह सम्पूर्ण पुराणों यथा - मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, शिव, बृहन्नारदीय, वाराह, मत्स्य, विष्णु, देवीभागवत, भविष्य, पद्म, आदित्य, स्कन्द, नारद, ब्रह्म, भागवत् आदि में अभिनन्दित होती हुयी महाकाव्यों एवं स्तुति-ग्रन्थों में भी सर्वाधिक स्तुत्य एवं वन्द्य हैं । यह गङ्गा इन्दुसरोवर से समुद्र तक एवं आर्यान से ब्रह्मदेश तक प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू जाति की आस्था एवं श्रद्धा का सर्वमान्य आधार बनी रही और आज भी हैं । हिन्दू चाहे कश्मीर का हो या कन्याकुमारी का, कच्छ का हो या कोहिमा का, उसकी अंतिम अभिलाषा यही होती है कि मरते समय उसके मुख में गङ्गाजल हो तथा जीवनपर्यन्त उसकी सबसे बड़ी पूँजी के रूप में उसके घर के किसी कोने में ताखे पर किसी पात्र या शीशी में गङ्गाजल हो । अतः गङ्गा मात्र एक नदी नहीं वरन् विश्व के इस सबसे प्राचीनतम् राष्ट्र की एकता की सबसे दृढ़तम सूत्र है ।

इस सूत्र के कमजोर एवं संकटग्रस्त होने का सीधा तात्पर्य है, राष्ट्रीय एकता के सर्वमान्य सूत्र का संकटग्रस्त होना । गङ्गा का पर्यावरणीय महत्व किसी से छिपा नहीं है फिर भी इस लेख का मुख्य विषय नहीं होने के कारण उसका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है । गङ्गा समूचे भारत की साँस्कृतिक अस्मिता, उसका प्राण ऊर्जा एवं सौभाग्य का सूचकांक एवं मूर्तमंत प्रतीक है । वेदों से लेकर पुराणों एवं महाकाव्यों की कथायें गङ्गा के एक-एक लहरों में समायी हुयी हैं । पूरी भारतीय संस्कृति ही द्रवीभूत होकर गङ्गा के रूप में प्रवहमान है और इसकी एक-

एक लहर में इस चिर-पुरातन, चिर-नवीन संस्कृति का एक-एक अध्याय उच्छरित है । तभी तो तुलसी ने लिखा है —

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। राम बिलोकहिं गङ्ग तरंगा।

गङ्गा भारत माता की माँग का सिन्दूर हैं जिसकी अक्षुण्णता की कामना भारत की प्रत्येक बेटी के विवाह में उसके माता-पिता के द्वारा दिये गये आशीर्वाद में ध्वनित होती है —

जबलगि गङ्ग-जमुन जलधारा। अचल रहहिं अहिवात तुम्हारा।

भारतीय राष्ट्रीय एकात्मता की भावराशि का प्रदूषित एवं विलुप्त हो जाना, भारत राष्ट्र की प्राणधारा का प्रदूषित एवं विलुप्त हो जाना तथा पृथ्वी को विराट् चेतना द्वारा प्रदत्त परम सौभाग्य का मलिन एवं विलुप्त हो जाना है । अध्यात्म और विज्ञान दोनों के अनुसार यह समूचा विश्व विचार का पदार्थीकरण मात्र है । अर्थात् इस सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ विराट् चेतना की अभिव्यक्ति का एक सोपान मात्र है । अतः इस गङ्गा के रूप में उस विराट् की करुणा ही द्रवीभूत होकर बह रही है । इसीलिये इसे ब्रह्मद्रव भी कहा जाता है । अतः गङ्गा के प्रदूषित, अवरुद्ध या विलुप्त होने का अर्थ है उस विराट् की करुणा का पृथ्वी से रूठ जाना। गंगा मात्र राष्ट्रनदी ही नहीं है, वरन् जैसे भगवान् श्रीराम विग्रहवान् मूर्तिमंत सनातन धर्म हैं वैसे ही गङ्गा भी विग्रहवान् मूर्तिमंत भारत राष्ट्र हैं ।



दशम् अध्याय

गङ्गा : धर्मद्रवी, ब्रह्मद्रवी एवं अमृतमयी धारा

'गङ्गा' मात्र दो अक्षरों का यह शब्द सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति, धर्म और राष्ट्रीयता की आत्मा है । यह दो अक्षरों का शब्द दो अक्षरों वाले 'राम' शब्द की तरह ही महामन्त्र है । जिन पुराणों और हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों ने 'राम' शब्द में महिमा भरी है उन्हीं पुराणों और धर्म ग्रन्थों ने 'गङ्गा' शब्द की भी महिमा गायी हैं । 'गङ्गा' और 'राम' ये दोनों ही नाम तारक मन्त्र हैं । रामनाम की महिमा का रामचरितमानस में वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं —

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू।।

वहीं 'गङ्गा' नाम की महिमा एवं इसकी तारक शक्ति के वर्णन से पुराण अटे पड़े हैं । यहाँ एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे —

गङ्गा गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ॥

- विष्णु पुराण 2/8/121

अर्थात् गङ्गा से सैकड़ों योजन दूर रहकर भी गङ्गा नाम के उच्चारण मात्र से ही जीव के तीन जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और —

योजनानां सहस्त्रेषु गङ्गा स्मरति यो नरः
अपिदुष्कृत कर्मा हि लभते परमां गतिम् ।
स्मरणादेव गङ्गायाः पाप संघातपंजरम्
भेदं सहस्त्रधा यातिगिरिर्वज्रहतो यथा ॥

अर्थात् जो मनुष्य गङ्गा से हजारों योजन दूर रहकर भी गङ्गा का स्मरण करता है वह पापी ही क्यों न हो, अवश्य परमगति को प्राप्त

करता है । गङ्गा के स्मरण मात्र से पापसमूहरूप कंकाल के उसी तरह सहस्त्र टुकड़े हो जाते हैं जैसे वज्र के गिरने से पर्वतों के हो जाते हैं ।

विष्णुसहस्त्रनाम एवं शिवसहस्त्रनाम की तरह ही स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में गङ्गा के सहस्त्र नामों का उल्लेख है । गङ्गा के नाम-संकीर्तन, स्मरण, उनका दर्शन एवं उनमें मज्जन के माहात्म्य से वेदों से लेकर पुराणों, यथा- ऋग्वेद, सामवेद, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवपुराण, बृहद्धर्मपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, देवीभागवत्, भविष्यपुराण, श्रीमद्भागवत्, नारदपुराण, आदित्यपुराण, स्कन्दपुराण, वाल्मीकि रामायण और महाभारत तक के पृष्ठ भरे पड़े हैं ।

यदि भगवान् देवाधिदेव शिव श्रीरामनाम का अमृत नित्य अपने मुख में धारण करते हैं तथा जन-कल्याण के लिये उसे राम-कथा के रूप में लोक में प्रवाहित करते हैं तो वहीं श्रीगङ्गा को भी अपने शीश पर धारण करते हैं और अखिल विश्वकल्याण के लिये उन्हें लोक में गङ्गा नदी के रूप में प्रवाहित करते हैं । दोनों ही गङ्गा यथा - कथागङ्गा और नदीगङ्गा, पापहारिणी एवं लोकपावनकारिणी हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी दोनों गङ्गा की तुलना करते हैं यथा —

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, सकललोक जग पावनि गङ्गा ।

* * * * * * *

'पुनि बन्दउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका।।

गङ्गा परात्पर परब्रह्म की विभूतियों में से एक हैं । गीता में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुये अर्जुन से कहते हैं —

पवनः पवतास्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।

- श्रीमद्भगवद्गीता 10/31

पद्मपुराणोल्लिखित श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में एक प्रकरण आता है जब भगवान् भूलोक को छोड़कर स्वधामगमन को तत्पर होते हैं तब उद्धव उनसे प्रार्थना करते हैं कि साधुजनों एवं भक्तजनों पर कृपा करने के लिये आप यहीं अपने श्रीविग्रह में निवास कीजिये । प्रभास क्षेत्र में उद्धव के इस आर्त निवेदन पर श्रीभगवान् विचार करने लगे कि मुझे क्या करना चाहिये । तब श्रीभगवान् ने अपनी सारी शक्ति श्रीमद्भागवत में रख दी और अन्तर्धान होकर भागवत समुद्र में प्रवेश कर गये । इसीलिये श्रीमद्भागवत भगवान् की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति हैं, जिसके सेवन, श्रवण, पाठ एवं दर्शन से ही मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं यथा —

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥

- भा. म. 3/61

तेनेयं वांगमयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥

- वहीं 62

जैसे श्रीमद्भागवत परात्पर ब्रह्म के सगुण स्वरूप श्रीकृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति हैं, उसी तरह गङ्गा परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का जलमय विग्रह हैं । इसीलिये तो गङ्गाजल को ब्रह्म-द्रव कहा जाता है । श्रीरामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने गङ्गा को 'ब्रह्मवारि' कहा है तथा श्री भरत जी को गङ्गाजल में परात्परब्रह्म के ही सगुण स्वरूप भगवान् श्रीराम के दर्शन होते हैं यथा —

एहि बिधि भरत सेनु सब संगा। दीखि जाइ जग पावनि गङ्गा।
राम घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।
करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।।

- रामचरितमानस अयोध्या 196

यदि श्रीमद्भागवत के पढ़ने, सेवन करने और दर्शन करने से जीव के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं तो गङ्गा के भी नामोच्चारण, स्मरण, दर्शन, प्रणाम एवं मज्जन करने से जीव के जन्म-जन्मान्तर के पाप भस्म हो जाते हैं । इस विषय में वेदों से लेकर पुराणों तक में प्रमाण भरे पड़े हैं यथा —

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ।

- परिशिष्ट ऋ. 10/75

अर्थात् जो लोग गङ्गा और यमुना के मिलन स्थान पर स्नान करते हैं सीधे स्वर्ग को प्राप्त करते हैं और जो यहाँ अपने स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त करते हैं वे मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

गङ्गा-गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 60/78

अर्थात् सैकड़ों योजन दूर से भी जो गङ्गा नाम का उच्चारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह व्यक्ति विष्णुलोक को चला जाता है । वहीं भविष्यपुराण का इस प्रकार प्रमाण है —

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात् तथा गङ्गेति किर्तनात्
स्मरणादेव गङ्गायाः सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥

- भविष्यपुराण

अर्थात् गङ्गा का दर्शन, जल का स्पर्श, पान, नाम-संकीर्तन तथा स्मरण करने से सभी पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।

श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने-दिने ॥

- वि.पु. 2/8/120

अर्थात् गङ्गा अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श, जलपान, स्नान

तथा यशोगान करने से ही नित्यप्रति प्राणियों को पवित्र करती रहती हैं-

सप्तावरान् सप्तपरान् पितृंस्तेभ्यश्च ये परे ।
पुमांस्तारयते गङ्गा वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तिनात् ।
पुमान्पुनाति पुरुषाञ्छशोऽथ सहस्त्रशः ॥

- नारद पुराण 39/3.4

अर्थात् गङ्गा के दर्शन, स्पर्श तथा स्नान से मनुष्य की सात पीढ़ी नीचे और सात पीढ़ी ऊपर के पितर तरते हैं । गङ्गा के द्वारा मनुष्य स्वयं अपना ही उद्धार नहीं करता वरन् गङ्गा के दर्शन, स्पर्श, पान तथा नामोच्चारण से वह सैकड़ों, हजारों मानवों को पवित्र करता है —

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाहिता च पीता च पुनात्यासप्तमंकुलम् ॥

- वनपर्व 85/93

अर्थात् गङ्गाजी का नाम लिया जाये तो वह सारे पापों को धोकर पवित्र कर देती है । दर्शन करने पर कल्याण प्रदान करती है तथा स्नान और जल का पान करने पर वह मनुष्य की सात पीढ़ियों को पावन बना देती है ।

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में गङ्गा को धरती पर विष्णु का प्रतिनिधि कहा गया है । इसी पुराण में गङ्गाजी को धर्मद्रवी कहा गया है —

विष्णु पादार्घसम्पूते गङ्गे त्रिपथगामिनी ।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवी ॥

- पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 60/60

अर्थात् हे गङ्गे । तुम विष्णु का चरणोदक होने के कारण परम पवित्र हो । तुम्हारा जल धर्ममय है, इसीलिये तुम धर्मद्रवी के नाम से विख्यात हो । हे माँ जाह्नवी मेरे पाप हर लो ।

गङ्गा को धर्मद्रवी तो इसलिये कहते हैं कि कोटि-कोटि तीर्थों में

स्नान करने का फल गङ्गा में स्नान करने से प्राप्त हो जाता है पर इन्हें ब्रह्मद्रवी क्यों कहते हैं यह प्रश्न विचारणीय है । प्रथम तो यह कि गीता में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें अपनी विभूति बतलाया है । द्वितीय गङ्गा का जल श्रीमद्देवीभागवत के अनुसार भगवान् शिव के गायन सुनकर द्रवीभूत हुये राधा और कृष्ण के अंगों से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मद्रव कहा जाता है । तृतीय, पुरुषसूक्त के अनुसार भूत, भविष्य और वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी जगत् हैं, यह सब उस विराट् पुरुष की महिमा है, परमात्मा की विभूति का विस्तार है ।

लेकिन परमात्मा का स्वरूप मात्र विश्व के बराबर ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट् स्वरूप से भी बहुत बड़ा है । यह सारा विश्व तो उसके एक पाद में है, उसके तीन पाद और शेष हैं । ब्रह्म का यह त्रिपादस्वरूप अमृत एवं अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूप में ही स्थित है । यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है । मात्र उसका एक पाद माया के सम्पर्क में आकर यहाँ जगत् के रूप में उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड़-चेतनमयी नाना प्रकार की सृष्टि के रूप में स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया —

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वंग व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥

- ऋ.10/90/3.4

यहाँ दो चीजें स्पष्ट करनी होगी - प्रथम यह कि परमात्मा चार पादों वाला है, इसका अर्थ यह नहीं कि परमात्मा के चौपाये की तरह चार अलग-अलग पाद हैं, वरन् जैसे एक रूपये में चार चवन्नियाँ होती हैं, कुछ इसी तरह परमात्मा के चार पाद समझना चाहिये । जब कहा गया कि परमात्मा का एक पाद विश्व में बदल गया तो इसका इतना ही

भाव लेना चाहिये कि परमात्मा अपने चौथाई भाग से इस विराट् के रूप में अभिव्यक्त है और अपने तीन चौथाई रूप से अपने अमृतस्वरूप में स्थित है । यह संकल्पना आज की अत्याधुनिक वैज्ञानिक परिकल्पना के एकदम सन्निकट है । विज्ञान के अनुसार भी ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण द्रव्यमान का मात्र कुछ प्रतिशत ही पदार्थ के रूप में प्रकट है और विश्व द्रव्यमान का तीन चौथाई से अधिक मात्रा अभी भी डार्क मैटर के रूप में अनभिव्यक्त है ।

दूसरी बात यह है कि परमात्मा अपने तीन पाद से ऊपर उठा हुआ है इसका अर्थ यह नहीं कि तीन पाद से यह विश्व विराट् वाला चौथा पाद बाहर या अलग है, वरन् पुरुष सूक्त के प्रथम मन्त्र के अनुसार वह परमात्मा इस विराट् विश्व को चारों तरफ से घेरकर दशांगुल उठा हुआ है । यहाँ दशांगुल का अर्थ लक्षणात्मक है, अर्थात् इस पूरे विराट् को वह उसी तरह से आवृत किया हुआ है जैसे - माता के गर्भाशय में भ्रूण को गर्भ द्रव (एमिआटिक फ्लूड) आवृत किये रहता है । इस अर्थ की पुष्टि श्रीमद्भागवत से भी हो जाती है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये ब्रह्मा कहते हैं —

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥

- भा.10/14/12

अर्थात् हे परमात्मन् ! जब बच्चा माता के पेट में रहता है, तब वह माँ के पेट में पाद संचार करता है लेकिन माता उसका बुरा नहीं मानती है । उसी तरह से 'अस्ति' और 'नास्ति' से अभिव्यंजित कोई ऐसी वस्तु है क्या जो आपकी कोख में या उदर में न हो ? श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास जी कागभुशुंडिजी के मुख से वर्णन करते हैं —

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया।

*** * * * * * ***

राम उदर देखउँ जग नाना। देखत बनइ न जात बखाना।

- रामचरितमानस 7/79/81

उपरोक्त अर्धाली में **'देखत बनइ न जात बखाना'** पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । परमात्मा और उसकी यह सृष्टि तर्क और वाणी का विषय ही नहीं । ये दोनों अव्याकृत हैं । वेद भी यहाँ हाथ खड़े करके 'नेति-नेति' पुकारने लगते हैं । तुलसी के शब्दों में **'इदमित्थम कहि जात न सोई'** और 'ऐसा है और ऐसा नहीं है' यह नहीं कहा जा सकता है। परमात्मा अनन्त है, अतः उसका कोई परिमाण नहीं है । श्रीमद्भागवत में, श्रुतियाँ सम्पूर्ण जगत् को अपने में लीन करके अपनी शक्तियों के सहित सोये हुये परमात्मा को जगाते हुये कहती हैं —

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ।
रव इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ।

-श्रीमद्भागवत 10/87/41

अर्थात् हे भगवान् ! स्वर्गादि लोकों के अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा प्रभृति भी आपका पार न पा सके । आश्चर्य की बात तो यह है कि आप भी स्वयं को नहीं जानते क्योंकि आप अनन्त हैं । अतः जब आपका अन्त है ही नहीं तब आप स्वयं को जानेंगे कैसे ? प्रभो ! जैसे आकाश में हवा से धूल के नन्हे-नन्हे कण उड़ते रहते हैं, वैसे ही आपमें काल के वेग से अपने से उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरणों के सहित असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं । तब भला आपकी सीमा कैसे मिले? हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूप का साक्षात् वर्णन नहीं कर सकती। आपके अतिरिक्त वस्तुओं का निषेध करते-करते अन्त में अपना भी

निषेध कर देती हैं और आपमें ही अपनी सत्ता समाहित कर सफल हो जाती हैं ।' इसी भाव को शिवमहिम्न में पुष्पदन्त भी व्यक्त करते हुये कहते हैं —

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वांगमनसयो-
रतदव्यावृत्तया यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

आइये अब श्रुति के हृदय में ही झाँककर देखते हैं कि ये श्रुतियाँ उस अपरिमेय के परिमाण के बारे में क्या कहती हैं —

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेना-
य को वेद यत आबभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न दधे ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् ।
सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥

- ऋ. वेद 10/129/6.7

अर्थात् सद्रूपी जगत् का यह विसर्ग किससे या कहाँ से आया ? इससे अधिक विस्तारपूर्वक यहाँ कौन कहेगा? इसे कौन निश्चयात्मक जानता है ? देव भी इस विसर्ग के पश्चात् ही हुये हैं । फिर यह सृष्टि जहाँ से उत्पन्न हुयी उसे कौन जानेगा ? सत् का विस्तार या प्राकट्य जहाँ से हुआ अथवा निर्मित किया गया उसे परम आकाश में रहने वाला इस सृष्टि का जो अध्यक्ष है, वही जानता होगा या न भी जानता हो ?

तो यह है उस परमात्मा की अपरिमेयता । जब उसका कोई परिमाण ही नहीं तो एक पाद, दो पाद या एक चौथाई और तीन चौथाई क्या होता है ? यह तो हमारी बुद्धि की अपनी सीमायें हैं जो अपनी ही भाषा में कोई बात समझ सकती है । अतः वेद और पुराणों के शब्दों का

अभिधात्मक नहीं लक्षणात्मक अर्थ ही पकड़ना चाहिये । श्रुतियों के शब्दों का लक्षणात्मक अर्थ यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा की नाभि में स्थित है । नाभि अर्थात् अन्तरिक्ष —

नाभ्या आसीदन्तरीक्षम् । -पु.सू. 13

विराट् पुरुष के इस नाभि में सृष्टि के उपादान प्रकृति का अष्टदल कमल खिला हुआ है - यही सांख्य के **अष्टधा प्रकृतिः षोडषविकारा** चौबीस तत्व हैं । इन्हीं प्रकृति के चौबीस तत्वों यथा- अव्यक्त, महत् तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रायें, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रिया, पाँच भौत्तिक तत्त्व एवं मन के खिले हुये कमल की कर्णिका में मकरन्दस्वरूप परमात्मा का चेतन बीज हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा बैठा हुआ है और वह इस प्रपंचात्मक विसर्ग का नित्यप्रति विस्तार कर रहा है । भाव यह है कि जैसे कुक्कुटी के अण्डकोश के श्वेत भाग में उसका केन्द्रीय पीतभाग तैरता रहता है उसी तरह परमात्मा के त्रिपाद अमृतस्वरूप में यह उसी परमात्मा के चौथे पाद की स्थूल अभिव्यक्ति के पांचभौतिक तत्त्वों की पंचीकरणाभूत सृष्टि तैरती रहती है ।

हमारी माँ गङ्गा पांचभौतिक तत्त्वों के पंचीकरण से समुद्भूत सृष्टि का अंश नहीं, वरन् वह अपने त्रिपाद में अपने अव्यय, अक्षरस्वरूप में स्थित परमात्मा के अंश से उत्पन्न हुयी है । विष्णुपुराण के अनुसार —

यतः सा पावनायालं त्रयाणां जगतामपि ।
समुद्भूता परं तत्तु तृतीयं भगवत्पदम् ॥

- विष्णु पुराण 2/8/122

अर्थात् त्रिलोकी को पवित्र करने में समर्थ गङ्गा जिससे उत्पन्न हुयी हैं वही भगवान् का तीसरा पाद या पद है । श्रीमद्भागवत के अनुसार जब राजा बलि की यज्ञशाला में त्रिलोकी को नापने के लिये भगवान् विष्णु ने अपना पैर उठाया तब उनके बाँये पैर के अँगूठे के नख से

ब्रह्माण्ड कटाह का ऊपर का भाग फट गया । उस छिद्र में होकर जो ब्रह्माण्ड से बाहर की जलधारा आयी वह उस चरणोदक को धोने से उसमें लगी हुयी केसर के मिलने से लाल हो गयी । उस निर्मल धारा का स्पर्श होते ही संसार के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं किन्तु वह सर्वथा निर्मल ही रहती है । पहले किसी और नाम से न पुकारकर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे । श्रीमद्भागवत के इस प्रकरण से भी विष्णुपुराण के उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है कि गङ्गा विराट् पुरुष के इस विश्व-प्रपंच से ऊपर उठे हुये अमृतमय त्रिपाद स्वरूप से समुद्भूत है। श्रीमद्भागवत के ही दूसरे प्रकरण में जहाँ देवता भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं लगभग इसी तथ्य की प्रकारान्तर से पुष्टि की गई है —

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्तेभयाभयकरोऽसुरदेवचम्बोः ।
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्
पादः पुनातु भगवन् भजतामघं नः ॥

- भागवत 11/6/13

अर्थात् हे अनन्त ! वामनावतार में दैत्यराज बलि की दी हुयी पृथ्वी को नापने के लिये जब आपने अपना पग उठाया था तो वह सत्यलोक में पहुँच गया था और तब वह ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बहुत बड़ा विजयध्वज हो । ब्रह्माजी के पखारने के बाद उससे गिरती हुयी गङ्गाजी के जल की तीन धारायें ऐसी जान पड़ती थी मानो उसमें लगी हुयी तीन पताकायें फहरा रही हों । उसे देखकर असुरों की सेना भयभीत हो गयी थी और देव-सेना निर्भय । भगवन् आपका वही पादपद्म हम भजन करने वालों के सारे पाप-ताप धो-बहा दे ।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट ही हो गया कि गङ्गा के जल को ब्रह्मद्रव क्यों कहा जाता है । इस ब्रह्माण्ड को चारों तरफ से आवृत्त किये हुये परमात्मा का जो त्रिपाद अमृतस्वरूप है, जो कारणसलिल के रूप

में विद्यमान है, गङ्गा उसी कारणसलिल का अंश है । इसी कारण सलिल को नासदीय सूक्त में **'अग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम्'**, तैत्तिरीय ब्राह्मण में **'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्'**, ऋग्वेद के **'यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत् । अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत्**[3] या **'तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे, अजस्य नाभावध्ये कमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः**[4], कहा गया है । इसीलिए वह ब्रह्मद्रव है यहाँ **'सलिल'** का अर्थ दो भाग हाइड्रोजन एवं एक भाग ऑक्सीजन गैस से मिलकर बना हुआ हाइड्रोजन मोनो ऑक्साइड यौगिक वाला भौतिक जल नहीं है । नासदीय सूक्त के **'अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्'** का भाष्य करते हुये सायणाचार्य जी लिखते हैं - **'कुतो वा न प्रज्ञायते तत्राह-सलिलम्। षल गतौ । औणादिकइचल् । इदं दृश्यमानं सर्वं जगत् सलिलं कारणेन संगतमा-विभागापन्नमाः आसीत् ।'** अर्थात् **अप्रकेतम्** शब्द का अर्थ है विशेष रूप से ज्ञायमान न होना । **'षल्'** धातु गत्यर्थक है, **'इलच्'** प्रत्यय है । यह सम्पूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारण से संगत, पूर्णरूप से अविभागापन्न था अथवा जैसे दुग्धमिश्रित जल का विज्ञान कठिन है वैसे ही तम से मिले हुये जगत् का ज्ञान कठिन था । मनु महाराज ने भी इसी अभिप्राय को अभिव्यञ्जित करते हुये मनुस्मृति में कहा है —

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥

1 - आरम्भ में यह सब भेदाभेद रहित जल था ।

- ऋ. 10/129/3

2 - यह सब पहले पतला पानी था

- तै. ब्रा. 1.1.3.5.

3 - हे देव ! आप जब इस विस्तृत सलिल में प्रतिष्ठित हुये तब

वहाँ आपके नर्तन से तीव्र रेणु अर्थात् पदार्थकण प्रकट हुये ।

- ऋ. वे. 10/72/6.

4 - सृष्टि के आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने अपतत्त्व के गर्भ को धारण किया है जो देव शक्तियों का आश्रय स्थल है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभिकेन्द्र में एक ही परमतत्त्व अधिष्ठित है, जिससे समस्त भुवन आरक्षित होकर स्थित है ।

- ऋ. 10/82.6

अर्थात् यह संसार महाप्रलय में तमस में लीन, अज्ञेय, चिह्नरहित, प्रमाणादि तर्कों से हीन अतएव अविज्ञेय तथा सर्वत्र सोये हुये के समान था । भाव यह कि आरम्भ में सलिल था इसका अर्थ यह नहीं कि भौतिक पानी था वरन् वह कारणरूप ब्रह्म ही था जिसमें यह सम्पूर्ण प्रपंच दूध में जल की तरह ही अव्यक्त, समाहित था । उसी कारणतत्त्व का आकाश के पृष्ठ पर हस्ताक्षर है आकाशगङ्गा या मंदाकिनी, धरापृष्ठ पर हस्ताक्षर है भागीरथी या गङ्गा और पाताल के पृष्ठ पर हस्ताक्षर है भोगावती । अतः इस जगत् के कारण ब्रह्मतत्व का ही स्वरूप होने के कारण गङ्गा को बह्मद्रवी कहा जाता है । चूँकि ब्रह्म का यह जगत् कारण स्वरूप अमृतरूप है, **'त्रिपादस्यामृतंदिवि'**। अतः गङ्गा धर्मद्रवी, ब्रह्मद्रवी के साथ-साथ अमृतद्रवी भी है ।

हमारे यहाँ शास्त्रों में तीन लोकों का वर्णन है - आकाश या द्युःलोक, पाताल एवं भूलोक । गङ्गा भी तीन ही हैं - आकाश गङ्गा या मन्दाकिनी, पाताल गङ्गा या भोगवती एवं भागीरथी गङ्गा । अब शास्त्रानुसार - **प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न वर्तते** बिना प्रयोजन के मूर्ख भी कोई कार्य नहीं करता तो फिर **'सत्यंज्ञानमनंन्तम्'** ब्रह्म भला बिना प्रयोजन के तीनों लोकों में एक-एक गङ्गा की व्यवस्था क्यों करता है ? निश्चित ही इन तीनों गङ्गाओं का इन तीनों लोकों में बहने का प्रयोजन है । वह प्रयोजन ऋग्वेद के दसवें मण्डल के बयासीवें सूक्त के

छठे मन्त्र में एवं श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के छठें अध्याय के तेरहवें श्लोक में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं ।

ऋग्वेदानुसार परमात्मा ने अप् तत्त्व (गङ्गाजल) को गर्भ में धारण किया है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभितत्त्व में विद्यमान उस एक ही तत्त्व अर्थात् अप् तत्त्व द्वारा समस्त भुवन आरक्षित होकर स्थिर हैं । श्रीमद्भागवतानुसार भी परमात्मा के दण्डस्वरूप पाद से त्रिपताका की तरह से तीनों लोकों में फहरती गङ्गा की धारा को देखकर जहाँ देवों की सेना उत्कर्ष को प्राप्त होती है वहीं दानवों की सेना अपकर्ष को प्राप्त हो पाताल लोक में छुप जाती है । यहाँ दैवी सेना का अर्थ गीतोक्त वे सद्गुण हैं जो सृष्टि को धारण करते हैं अर्थात् धर्म और दैत्यों की या असुरों की सेना का अर्थ वे दुर्गुण हैं जो सृष्टि को विछिन्न या नष्ट करते हैं अर्थात् अधर्म । पद्मपुराण के अनुसार भी गङ्गा धर्मद्रवी है । **'धारणात्धर्म इत्याहु'** के न्याय से जो धारण करे वही धर्म है । अतः यह गङ्गा आकाश, पाताल और भूलोक में धर्म की पताका की तरह फहरती हुयी इन तीनों लोकों को धारण करती है और ये तीनों लोक तभी तक संरक्षित हैं जब तक कि इन लोकों में प्रवहमान गङ्गा की धारा सुरक्षित है । यह गङ्गा तीनों लोकों की प्राणधारा है और गङ्गा के मिटने का अर्थ है तीनों लोकों का सम्पूर्ण सृष्टि प्रपंच का ही विनाश हो जाना ।

यहाँ तक तो हमने गङ्गा के धर्मद्रवी, ब्रह्मद्रवी और अमृतद्रवी होने का अनुशीलन किया । अब हम देखेंगे कि गङ्गा का **'गङ्गा'** नाम क्यों पड़ा ? वाराह पुराण (अध्याय 82) के अनुसार गङ्गा की व्युत्पत्ति **'गां गतां'** पद से है । जिसका अर्थ है जो पृथ्वी की ओर गयी हो । भाव यह है कि जैसे अपने भक्तों, सज्जनों एवं दीनजनों के कल्याणार्थ तथा धर्म के अभ्युदय के लिये परमात्मा का अवतार होता है उसी तरह सज्जनों, साधुजनों एवं असंख्य पापियों के कल्याणार्थ तथा धर्म के अभ्युदय के लिये ही माँ गङ्गा का ब्रह्मलोक से धराधाम पर अवतरण

हुआ है । परमात्मा तो अपना काम पूरा करके अन्तर्धानं हो जाते हैं पर माँ गङ्गा इतनी करुणामयी हैं कि वे अपनी संतति और शरणागतों को छोड़कर ब्रह्मलोक जाने को तैयार नहीं हैं । यद्यपि हमने माँ का उचित सम्मान नहीं किया फिर भी माँ **'माता कुमाता न भवति'** की युक्ति को चरितार्थ करती हुयी अविकल बहे जा रही हैं । हमने माँ के वक्ष पर सैकड़ों बाँध बाँधे, सैकड़ों नहरें निकाली, सैकड़ों शहरों के नाले उनमें गिरायें, उनमें कूड़े-कचरे, थूक-खखार सब डाले पर माँ की अगाध ममता कुंठित नहीं हुयी । वह अब भी अपने पुत्रों को तारती, आशीर्वादित करती और उनके मनोरथों को पूरा करते हुये बह रही हैं । माँ की इसी अगाध ममता का वर्णन करते हुए पद्मपुराण का कहना है कि पिता पुत्र को, पत्नी प्रियतम को, सम्बन्धी अपने सम्बन्धी को तथा अन्य सभी भाई बन्धु भी अपने प्रिय बन्धु को छोड़ देते हैं किन्तु गङ्गाजी अपने पुत्रों का परित्याग कभी नहीं करती हैं —

तजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत् ॥

- पद्मपुराण 60/26

आइये ! हम सभी ऐसी ममतामयी, पतितपावनी, जगततारिणी गङ्गा माँ को अविरल और निर्मल बनाने का शिव संकल्प लें - **'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।'**



एकादश अध्याय

गङ्गा : आँकड़े तथ्य एवं यथार्थ

1- गङ्गा की लम्बाई - 2525 कि.मी.

2- उद्गम - गढ़वाल जनपद के हिमालय के गङ्गोत्री हिमनद (ग्लेशियर) से भागीरथी के रूप में प्रकट होती हैं । इस हिमनद की लम्बाई करीब 25 कि.मी. है जो तेजी से कम हो रही है ।

3- गङ्गोत्री हिमनद की ऊँचाई - 6614 मी. है ।

4- गोमुख पर देवगाड नामक नदी गङ्गा में मिलती है ।

5- गङ्गोत्री धाम - गोमुख से 28 कि.मी. उत्तर पश्चिम यह प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । समुद्र तल से यह स्थान लगभग 3100 मी. ऊँचाई पर है । आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गङ्गाजी की मूर्ति यहाँ के प्रसिद्ध श्रीगङ्गा मन्दिर में है । यहाँ सूर्यकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड आदि तीर्थ हैं । प्रसिद्ध भगीरथ शिला भी यहीं है जिस पर महाराज भगीरथ ने गङ्गा को प्रसन्न करने के लिये तपस्या की थी ।

6- भैरवघाटी - यहाँ भैरव मन्दिर है । इस स्थान से कुछ पहले जाड़ गङ्गा या जाह्नवी की धारा भागीरथी में मिलती है ।

7- हरसिल (हरिप्रयाग) - यहाँ हरि गङ्गा तथा भागीरथी का संगम है । यहाँ से कुछ दूरी पर गुप्त प्रयाग तथा हरिप्रयाग है ।

8- धराली - श्रीकण्ठ शिखर से दूध गङ्गा आकर यहाँ भागीरथी में मिलती हैं । भागीरथी के दूसरे तट पर मुखबा मठ है जहाँ शीतकाल में गङ्गामूर्ति गङ्गोत्री से लाकर पूजी जाती है ।

9- गङ्गनानी - यहाँ ऋषिकुण्ड नाम का पवित्र गर्म सोता है ।

10- **उत्तरकाशी** - यह भागीरथी असि और वरुणा नदियों के बीच में है । यहाँ प्राचीन विश्वनाथ मन्दिर, एकादश रुद्रमन्दिर, गोपेश्वर, परशुराम, दत्तात्रेय, भैरव, अन्नपूर्णा, शिव, दुर्गा आदि मन्दिर हैं । यहाँ श्रद्धालु जन मुण्डन करवाते हैं । जड़भरत मन्दिर के पास ब्रह्मकुण्ड में पिण्डदान आदि करते हैं । यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है ।

11- शिव की तरह माँ गङ्गा भी पंचमुखी हैं इनकी मुख्य पाँच धारायें हैं तथा गङ्गा नाम में ये सभी धारायें समाहित हैं । गङ्गा की आरम्भ की पाँच मुख्य धारायें हैं- भागीरथी, अलकनन्दा, मन्दाकिनी, धौली गङ्गा तथा पिन्डर ।

12- **अलकनन्दा** - अलकनन्दा का भागीरथी से देवप्रयाग में संगम होता है । इसी संगम के बाद भागीरथी को गङ्गा कहते हैं । सतपथ स्वर्गारोहण, वसुधारा तथा बदरीनाथ इसके तट के प्रमुख तीर्थ स्थान हैं ।

13- **विष्णु प्रयाग** - यहाँ विष्णु गङ्गा तथा अलकनन्दा का संगम है । यह नारदजी की तपोभूमि है तथा यहाँ विष्णु मन्दिर है ।

14- **पाण्डुकेश्वर** - राजा पाण्डु द्वारा स्थापित पाण्डुकेश्वर या योगबदरी का मन्दिर है । राजा पाण्डु ने कुन्ती तथा माद्री सहित यहाँ तपस्या की थी ।

15- **जोशीमठ** - शीतकाल में बदरीनाथ जी की चलमूर्ति छः महीने यहीं रहती है । ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य मठ यहीं है ।

16- **रुद्रप्रयाग** - यहाँ मन्दाकिनी नदी का अलकनन्दा से संगम है । केदार तथा बदरीनाथ धामों के मार्ग यहाँ से अलग होते हैं । कोटेश्वर महादेव का लिंग एक गुफा में स्थित है ।

17- रुद्रप्रयाग से केदारनाथ जी तक मंदाकिनी के किनारे अनेक तीर्थ हैं जिनमें अगस्त्य मुनि, गुप्तकाशी, त्रियुगी नारायण तथा गौरीकुण्ड आदि प्रमुख हैं ।

18- **केदारनाथ** - केदारनाथ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है ।

19- **देवप्रयाग** - भागीरथी और अलकनन्दा के संगम पर यह प्रसिद्ध तीर्थ है । यहाँ का सबसे प्रसिद्ध मन्दिर श्रीरघुनाथ जी का है । देवप्रयाग के बाद ही भागीरथी को गङ्गा कहते हैं ।

20- **बदरीनाथ** - बदरीनाथ के मन्दिर में भगवान् विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति ध्यान मुद्रा में शालिग्राम शिला की बनी है । आदि शङ्कराचार्य भगवान् ने इसकी स्थापना की थी । शीतकाल में मन्दिर के कपाट छः महीने बन्द रहते हैं । यह अलकनन्दा के तट पर स्थित है । ऋषिकेश से रुद्रप्रयाग होते हुये बदरीनाथ धाम की दूरी लगभग 200 किमी. है ।

21- लगभग 250 कि.मी. की पहाड़ी यात्रा के बाद गङ्गा ऋषिकेश में लक्ष्मण झूला के बाद पहाड़ों से निकलती हैं ।

22- **हरिद्वार** - सप्तयुग में वर्णित मायापुरी हरिद्वार क्षेत्र के अन्तर्गत है यहाँ गङ्गा लगभग 12000 फुट नीचे उतर कर मैदानी भाग में बहती हैं । प्रसिद्ध हरि की पौड़ी (गङ्गाद्वार), कुशावर्त घाट, विल्वकेश्वर महादेव, नीलधारा, काली मन्दिर, चंडीदेवी मन्दिर, मनसा देवी तथा गौरीशङ्कर मन्दिर यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिर हैं । इधर भारत माता मन्दिर, तुलसी मानस मन्दिर आदि नये मन्दिरों का निर्माण हुआ है ।

23- **कनखल** - यहाँ नीलधारा तथा नहर वाली गङ्गा की धारा मिल जाती है । इसके पास ही दक्षेश्वर महादेव, सप्तर्षि आश्रम, सप्तधारा, कपिलस्थान, वीरभद्रेश्वर आदि पवित्र स्थान हैं ।

24- **शुकताल** - मुजफ्फरनगर से 30 कि.मी. दूर यह स्थान गङ्गा के तट पर स्थित है । यहाँ श्रीशुकदेव जी महाराज ने महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाया था ।

25- **गढ़मुक्तेश्वर** - गङ्गा के दाहिने तट पर यह नगर है । यहाँ मुक्तेश्वर शिव का विशाल मन्दिर है । यहीं बूढ़गङ्गा का संगम भी है ।

कार्तिक पूर्णिमा तथा गङ्गा दशहरा के प्रसिद्ध मेले लगते हैं । इसी क्षेत्र में हस्तिनापुर, गंज, सीतावनी आदि पवित्र क्षेत्र हैं ।

26- **बिठूर** - यह प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्थान है । यह ध्रुव की जन्म स्थली भी है । यहाँ ब्रह्मघाट प्रमुख हैं ।

27- **कानपुर** - उत्तर प्रदेश का बृहत्तम नगर है । यह नगर गङ्गा को सबसे अधिक मैला कर देता है । यहाँ कार्तिक पूर्णिमा का मेला लगता है । गङ्गा इस नगर के घाटों को छोड़कर बहुत दूर चली गई हैं।

28- **प्रयाग** - इसे तीर्थराज भी कहते हैं । यहाँ गङ्गा-यमुना और अदृश्य सरस्वती का संगम है । प्रति माघ में यहाँ श्रद्धालु हिन्दू कल्पवास करते हैं । वेदों से लेकर पुराणों तक इसी पुरी की महिमा गायी गयी है । अकबर का बसाया हुआ इलाहाबाद नगर भी इसी के तट पर है । यहाँ प्रति 12 वर्ष में कुम्भ तथा 6वर्षों के अन्तराल पर अर्धकुम्भ का मेला लगता है ।

29- **काशी** - हिन्दुओं का सबसे प्रसिद्ध तीर्थ गङ्गा के तट पर स्थित है । यहाँ गङ्गा उत्तरवाहिनी हो जाती हैं और पुराणों में उत्तरवाहिनी गङ्गा का विशेष महत्त्व बतलाया गया है । यह नगर **'काश्यां मरणान्मुक्ति'** के रूप में प्रसिद्ध है । यहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंगों के अध्यक्ष विश्वेश्वर महादेव का ज्योतिर्लिंग भी है ।

30- **पटना** - यही प्राचीन भारत का प्रसिद्ध पाटलीपुत्र नगर है। यह गङ्गा तट पर स्थित है ।

31- बंगाल में गङ्गा की मुख्य धारा भागीरथी के नाम से जानी जाती है । बँगलादेश में गङ्गा को पद्मा कहते हैं ।

32- **कोलकात्ता** - यह गङ्गा पर स्थित सबसे विराट् नगर है । यहाँ 51 शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ भी है ।

33- **गङ्गासागर** - गङ्गासागर संगम पर स्थित यह महातीर्थ गङ्गातट का अन्तिम तीर्थ है । यहीं पर कपिलमुनि का आश्रम है और

गङ्गा यहाँ अपनी लोकपावनी यात्रा पूरी करती हैं और अपने प्रियतम सागर की गोद में समा जाती हैं । यहाँ मकर संक्रान्ति पर बहुत बड़ा स्नान होता है और इसके विषय में यह लोकोक्ति है कि - **सब तीरथ बार-बार, गङ्गासागर एक बार ।**

34- गङ्गा का लम्बाई की दृष्टि से एशिया में 15वाँ तथा पूरे विश्व में 39वाँ स्थान है ।

35- युनानी दूत मेगस्थनीज (जो ईसापूर्व चौथी शताब्दी में भारत आया था) ने अपने यात्रा-वृतान्त में गङ्गा नदी से नहरों द्वारा होने वाली सिंचाई का उल्लेख किया है ।

36- गङ्गा बेसिन का कुल क्षेत्रफल 10,50,000 (दस लााख पचास हजार) वर्ग कि.मी. है, जिसका आठ लाख इकसठ हजार चार सौ चार वर्ग कि.मी. (8,61,404) भारत में है । यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग चौथाई (26.3%) है और देश का वृहत्तम् नदी बेसिन है ।

बेसिन -

37- जहाँ तक के भू-क्षेत्र का वर्षाजल एक नदी में प्रवाहित होता है उस क्षेत्र को उस नदी का जल संभरण क्षेत्र या बेसिन कहा जाता है।

38- गङ्गा बेसिन में औसतन 116 सेमी. वर्षा प्रतिवर्ष होती है ।

39- गङ्गा तथा इसकी सहायक नदियों का समवेत वार्षिक जल प्रवाह 493 अरब घन मीटर है और इस दृष्टि से यह विश्व की दसवीं नदी है ।

40- कलना के बाद भागीरथी के निचले प्रवाह मार्ग को हुगली कहा जाता है इसी पर प्रसिद्ध हावड़ा का पुल है ।

41- गङ्गा के उत्तरी तट पर मिलने वाली सहायक नदियाँ- रामगङ्गा, गोमती, सरयू, घाघरा, गंडक, बूढ़ीगंडक, बागमती, कमला, कोसी तथा महानन्दा हैं ।

42- गङ्गा के दक्षिण तट पर मिलने वाली प्रमुख नदियाँ यमुना, (इलाहाबाद), टोंस, कर्मनाशा, सोन, पुनपुन, किउल आदि हैं ।

43- भारत की कुल भूमिजल सम्पदा 275 अरब घन मीटर के लगभग है जिसमें 106 अरब घन मीटर भूमिजल गांगेय क्षेत्र में है ।

44- देश की कुल 19.3 करोड़ हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि में से 6.016 करोड़ हेक्टेयर भूमि गांगेय क्षेत्र में है । इस भूमि के लगभग 80% भाग पर खेती होती है ।

45- देश की जनसंख्या का लगभग 40% गांगेय क्षेत्र में रहता है ।

46- गङ्गा के पर्वतीय जलग्रहण क्षेत्र में होने वाले भू क्षरण से, उत्तरी भारत का उपजाऊ मैदान बना है ।

47- आस्ट्रिया के प्रकृति प्रेमी जल वैज्ञानिक शाबर्गर ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध करके दिखाया था कि नदी की स्वाभाविक गति सर्पाकार बहाव की होती है । इससे पानी का जीविततत्व कायम रहता है, परन्तु जब वही पानी बाँध बना कर रोका जाता है तो वह मृत हो जाता है ।

48- जल की अम्लता या क्षरता नापने की इकाई 'पी.एच' है । यह '0' से 14 तक हो सकता है । 7 से कम 'पी.एच.' वाला जल अम्लीय होता है और 7 से ज्यादा वाला क्षारीय । मानव शरीर के लिये जल के 'पी.एच.' की मात्रा 7 से 8 के बीच होनी चाहिये । यही पेयजल माना जाता है । पीने वाले जल में ठोस पदार्थों की मात्रा 500 मि.ग्रा. प्रतिलीटर से अधिक नहीं होनी चाहिये ।

49- पेयजल के इन मानकों के परिप्रेक्ष्य में आज गङ्गाजल की गुणवत्ता की जाँच करने पर हम पाते हैं कि किसी समय में अमृत तुल्य समझा जाने वाला यह जल हरिद्वार से लेकर गङ्गासागर तक भी पेय नहीं रह गया है ।

50- गङ्गा के किनारे बसे 48 के लगभग प्रथम श्रेणी के तथा 66 के लगभग द्वितीय श्रेणी के नगरों का दूषित जल गङ्गा में निरन्तर गिराये जा रहे हैं ।

51- केवल वाराणसी में ही 1000 लाख लीटर से अधिक अवजल प्रतिदिन गङ्गा में निस्सारित किया जाता है । 15 बड़े नाले गङ्गा में गिरते है ।

52- गङ्गा नदी का जल कानपुर एवं कलकत्ता में सर्वाधिक दूषित है ।

53- पृथ्वी के सतह का कुछ क्षेत्रफल 19,69,50,000 (उन्नीस करोड़ उनहत्तर लाख पचास हजार) वर्ग मील है जिसमें से 13,24,40,000 (तेरह करोड़ चौबीस लाख चालीस हजार) वर्ग मील क्षेत्र में पानी और 5,75,10,000 (पाँच करोड़ पचहत्तर लाख इस हजार) वर्ग मील में भूमि है ।

54- पृथ्वी पर कुल 32.7 करोड़ घनमील पानी है । इसका केवल 6% अर्थात् 1.96 करोड़ घनमील मीठा पानी है । इस पानी का केवल 1.5% ही भाग झीलों, नदियों, जलाशयों में विद्यमान है जब कि 57.5% भूमिगत है ।

55- 40 लाख गैलन से अधिक कचरा युक्त पानी केवल कानपुर शहर से ही प्रतिदिन गङ्गा में मिलाया जाता है ।

56- मानक के अनुसार काली फार्म जीवाणुओं की संख्या 100 मीली पीने के पानी में 50 व स्नान के लिये 500 तक मान्य है । लेकिन वाराणसी के गङ्गाजल में इन जीवाणुओं की संख्या प्रति 100मीली गङ्गाजल में 1 लाख 14 हजार है अर्थात् यहाँ गङ्गाजल स्नान करने के लायक भी नहीं है ।

57- गङ्गा को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिये 1985 में गङ्गा कार्य योजना शुरु की गयी । फरवरी 1991 में केन्द्रीय गङ्गा प्राधिकरण गङ्गा

कार्य योजना द्वितीय का गठन किया गया । इस योजना को 1995 में राष्ट्रीय नदी संरक्षण का रूप दे दिया गया ।

58- परमपूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा पीठाधीश्वर के भगीरथ प्रयास से 4 नवम्बर 2008 को गङ्गा को राष्ट्रीय धरोहर घोषित करते हुये इसे राष्ट्रीय नदी की संज्ञा दी गई ।

59- गङ्गोत्री से लेकर उत्तरकाशी तक निम्न जलविद्युत परियोजनाएँ प्रस्तावित हैं, जिनका क्रम गङ्गोत्री से मात्र 14 किमी दूरी से प्रारम्भ होता है । 1- भैरवघाटी (1) तथा (2) (स्थगित) 2- लोहारी नागपाला (निर्माणाधीन) 3- पाला-मनेरी (स्थगित) 4- मनेरी भाली (1) - 1960 में निर्मित 4-मनेरी भाली (2) 2008 में निर्मित । चूँकि, यह परियोजनायें एक के बाद एक हैं । अतः यह गङ्गा को गङ्गोत्री से मात्र 14 किमी की दूरी पर भैरोघाटी से उत्तरकाशी तक लगातार सुरंगों के भीतर डाल रही है । अतः गङ्गा को उद्गम घाटी में ही लुप्त किया जा रहा है ।

5- **मनेरी भाली-** 2 परियोजना, टिहरी बाँध को जाकर मिलती हैं, इस प्रकार गङ्गोत्री से ऋषिकेश तक वास्तव में हमारे पास कोई गङ्गा नहीं हैं ।

6- तुलसी ने लिखा है —

कीरति भनति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई।

मानस की उपरोक्त अर्धाली में गङ्गा की सर्वजन-सर्वोपलब्धता का वर्णन है पर गङ्गा के ऊपर चल रही परियोजनायें गङ्गा को उसके अपने ही बेटों से दूर कर दे रही है जो अमानवीय, अनैतिक और अधार्मिक कृत्य है । गङ्गा सुरंगों में बहने के लिये नहीं, सर्वजन सुलभ होकर बहने के लिए पृथ्वी पर आयी हैं ।

7- गङ्गोत्री ग्लेशियर तेजी से सिकुड़ रहा है । गङ्गा के उद्गम क्षेत्र

में चलने वाली परियोजनाओं के चलते इस क्षेत्र का प्रदूषण बहुत ही बढ़ गया है तथा गङ्गोत्री ग्लेशियर 23 मीटर प्रतिवर्ष की दर से पीछे सरक रहा है । यदि हमें भारतीय संस्कृति और राष्ट्र की पहचान, प्राणधारा एवं जीवनधारा गङ्गा को बचाना है तो इसके वक्ष पर बने सभी बाँधों को हटाकर इसे उन्मुक्त प्रवाहित होने देना होगा ।

8- पूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा पीठाधीश्वर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के द्वारा सार्वभौम गङ्गा सेवा अभियानम् इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश्य है कि हम गङ्गोत्री से लेकर गङ्गासागर तक गङ्गा को अविरल और निर्मल प्रवाहित होने दें तथा इस बीच कहीं से भी गङ्गा का स्वच्छ जल हम पहले की ही भाँति अंजुलि में भर कर निःसंकोच पी सके ।



द्वादश अध्याय

रसायन शास्त्र में गङ्गा

गङ्गा विश्व ब्रह्माण्ड का सर्वोत्तम रसायन है । ब्रह्मवैवर्त पुराण और देवीभागवत के अनुसार तो यह श्रीराधा-कृष्ण के दिव्यविग्रह का द्रवीभूत रसायन है । अन्य सभी पुराणों के अनुसार यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश के विभुत्व का रसायन है । यह भगवान् विष्णु के पाद-पद्मों से निसृत है, ब्रह्मा के दिव्य कमण्डलु में संरक्षित है एवं भगवान् शिव की जटाओं में वास करती है । मात्र गङ्गा के स्पर्श से ही एक साथ इन तीनों देवों का संस्पर्श एवं आशीर्वाद प्राप्त हो जाता हैं । इसीलिये गङ्गा को अमृत-रसायन एवं ब्रह्मद्रव की संज्ञा दी गई है । गङ्गा हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों से अलकनन्दा और भागीरथी के रूप में निकलती है । फिर से दोनों धारायें दक्षिण की तरफ बहती हुयी देवप्रयाग से समीप मिल जाती हैं और गङ्गा कहलाती हैं । यहाँ से ऋषिकेष तक गङ्गा पहाड़ों के बीच बहती हैं और हिमालय की गोदी में उगी हुयी जीवनप्रदायिनी औषधियों का रस अपने में समेटकर यह अमृत रसायन अपने उद्गम से 2525 किमी. दूर सागर तक पहुँचती है । इस बीच हिमालय, गङ्गा में सफेद मूसली, सर्पगन्धा, ब्राह्मी, जटामांसी, अश्वगन्धा, कालमेघ, कुटज, कस्तूरीभिण्डी, वच, शतावर, सनाय, घृतकुमारी, अपराजिता, कलिहारी, गुड़मार, ईस्सरमूल, गिलोय, लाजवती, प्रियंगु, गोखुरु, श्यामातुलसी आदि अमृत एवं जीवनप्रदायी औषधियों का अर्क घोल देता है और इन औषधियों के रसायन से आप्लावित गङ्गा की धारा संजीवनी बन जाती है । इन औषधियों के रसायन से गङ्गा के जल में वह शक्ति आ जाती है कि वह कभी नहीं सड़ता है । जीवाणु-वैज्ञानिकों के अनुसार गङ्गा के

जल में यह शक्ति एक प्रकार के जीवाणुओं के कारण आती है और इन जीवाणुओं को **वैक्टीरिओफाज** कहते हैं । ये **वैक्टीरिओफाज** गङ्गाजल में ही क्यों पाये जाते हैं तथा अन्य नदियों के जल में क्यों नहीं पाये जाते इसका वैज्ञानिक उत्तर देते हैं कि गङ्गा का जल सर्वाधिक ऊँचाई से धरती पर गिरता है इसलिये उसके वेग के कारण उसमें ये जीवाणु पैदा हो जाते हैं ।

कालिदास ने गङ्गा को हिमालय का उन्मुक्त हास कहा था । लेकिन हिमालय के चेहरे का यह उन्मुक्त हास उसी के घर में गङ्गा के वक्ष पर बनने वाली अनेकानेक जलविद्युत परियोजनाओं ने छीन लिया है । गङ्गा करुणार्द्र हिमालय के हृदय का द्रवीभूत रस बनकर बहती थी पर इस प्रकृति प्रदत्त अमृतधारा को वैज्ञानिक युग की नजर लग गयी । इस युग ने उन्मुक्त गङ्गा को बाँध दिया । स्वतन्त्र से परतन्त्र कर दिया, मानी से अमानी बना दिया । इसने हिमालय के उज्ज्वल हास को मलिन कर सुरंगों में कैद कर दिया । अब हिमालय की गोद बहती हुयी गङ्गा के प्राणवंत संस्पर्श से वंचित है । अब यह हिमालय के गोद की जीवनप्रदायी औषधियों का अमृत रसायन नहीं मात्र हिमनद की पिघली हुयी बर्फ है । गंगोत्री से लेकर उत्तरकाशी तक केन्द्र तथा प्रान्त सरकारों ने कई जलविद्युत परियोजनाएँ विकसित की हैं जिनका गंगोत्री से मात्र 14 किमी दूरी से प्रारम्भ होता है । इस परियोजनाओं में से कुछ प्रमुख हैं-

1- भैरोघाटी 1 तथा 2 (स्थगित), 2- लोहारी नागपाला (निर्माणाधीन), 3- पाला मनेरी (स्थगित), 4- मनेरी भाली-1 (1990 में निर्मित), 5- मनेरी भाली- 2 (2008) में निर्मित, 6- टिहरी बाँध। इन परियोजनाओं के चलते लगातार गङ्गा के प्रवाह को सुरंगों में से प्रवाहित किया जा रहा है और गङ्गा को उसके प्राकृतिक परिवेश से पूरी तरह काटा और अवरुद्ध किया जा रहा है । हिमालय गङ्गा का मायका

है । हिमालय की यह बेटी अपने मायके में ही स्वार्थी और अविवेकी मानव-असुरों द्वारा अवरुद्ध की जा रही है । उसका बचपन, उसकी उत्फुल्लता को मारा जा रहा है । अब यह कुचला, रौंदा हुआ बचपन लेकर गङ्गा मैदानों में उतरती है और आँसू बहाती हुयी सिसकियाँ भरती हुयी अपनी दुर्गति की कहानी अपने ससुराल सागर में जाकर अपने पति नारायण को सुनाती हैं । कालीदास के हिमालय का यह उन्मुक्त हास आज हिमालय की आँखों का पानी बन गया है ।

कल तक हिमालय जहाँ गङ्गा के पानी में औषधियों का अमृत रसायन घोलता था वही आज का विज्ञान, वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति और पूरी तरह वैज्ञानिक राक्षस बन चुके आत्मघाती मानवों की उपभोक्तावादी संस्कृति, इसके प्रवाह में जहरीले रसायन घोल रही है । आज गङ्गा के जल में औद्योगिक प्रदूषणों से क्रोमियम, आयरन, लैड, कैडमियम, कापर, मैग्नीशियम, पारा आदि भारी तत्त्वों की मात्रा बेतहाशा बढ़ रही है, जिससे न केवल गङ्गा वरन् गङ्गा बेसिन का भूगर्भीय जल भी दैनिक जीवन में सेवन के लायक नहीं रह गया है । इस प्रदूषण के चलते गङ्गा में पायी जाने वाली डाल्फिन नाम की मछली तथा अन्य बहुत सी जीव-जन्तुओं की जलीय-प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। गङ्गा के बेसिन में भारत की आबादी के कम से कम 44 करोड़ लोग अपना जीवन यापन करते हैं और इनका जीवन गङ्गा के जल में घुलने वाले इन जहरीले रसायनों के चलते खतरे में पड़ गया है । हाल ही में एक सर्वेक्षण के अनुसार गङ्गा किनारे बसे गाँवों में दूषित पानी पीने के कारण पित्ताशय के कैंसर की शिकायते बढ़ रही हैं । इस सर्वेक्षण के अनुसार प्रति एक लाख की आबादी में बारह से बीस लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं । गङ्गा बेसिन विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला बेसिन है जो कि भारत के क्षेत्रफल का लगभग चौथाई है इसकी गोद में करीब सात सौ शहर एवं हजारों गाँव बसे हैं । इतनी विपुल आबादी के

द्वारा लगभग 1.5 बिलियन लीटर अवशिष्ट प्रतिदिन गङ्गा में उढ़ेला जाता है । यह, वह जहरीला रसायन है जो आज की वैज्ञानिक सभ्यता गङ्गा की शिराओं में नालों के माध्यम से उडेल रही है । केवल वाराणसी में तीन दर्जन ऐसे स्थान हैं जहाँ से अवशिष्ट सीधे गङ्गा में आता है । कानपुर में ऐसे 48 स्थान हैं । इलाहाबाद में 14 नाले सीधे यमुना में और आठ नाले सीधे गङ्गा में जहरीले रसायन उढ़ेल रहे हैं ।

एक तरफ तो गङ्गा में ये जहरीले रसायन अवशिष्ट के माध्यम से निरन्तर उढ़ेल जा रहे हैं और दूसरी तरफ गङ्गा के प्रवाह को सैकड़ों जगह बाँधों के माध्यम से अवरुद्ध कर उसकी जीवनीशक्ति (Amunity power) को समाप्त किया जा रहा है । परिणामस्वरूप अपनी गङ्गा शीघ्र ही मृतनदी में परिणित होने वाली हैं ।

गङ्गा प्रकृति एवं परमेश्वर द्वारा प्रदत्त पृथ्वी की जल सम्पदा की महारानी है । जल की अधिष्ठात्री देवी है । जल ही जीवन है । ब्रह्माण्ड में जीवन की खोज में वैज्ञानिकों को जिस भी ग्रह या उपग्रह पर जल के चिह्न मिल जा रहे हैं तो उनकी बाँछे खिल जा रही हैं । जहाँ से जल रूठ गया वहाँ से जीवन रूठ गया । मंगल ग्रह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । यह पृथ्वी भी शीघ्र ही मंगल का स्थान लेने वाली है । गङ्गा सम्पूर्ण जल सम्पदा की नब्ज है । यह नब्ज बता रही है कि पृथ्वी से यह अमृत-रसायन जिसका दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन है, शीघ्र ही विदा होने वाला है । फिर दूसरे ग्रह से लोग पृथ्वी पर उतरेंगे जैसे आज हम मंगल पर उतरने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें यहाँ जल के होने के निशान तो मिलेंगे पर न जल मिलेगा न जीवन ।

पीने योग्य जल स्वयं में एक रसायन है । इसे हम अमृत कह सकते हैं । जीवन का प्रारम्भ भी जल से ही होता है । इसीलिये पोषण के देवता भगवान् विष्णु जल में निवास करते हैं । वे नारायण हैं । कहते हैं वे क्षीरसागर में रहते हैं । यहाँ क्षीरसागर का अर्थ इतना ही है कि दूध

जैसे धवल एवं स्वच्छ जल में ही नारायण भगवान् अर्थात् जीवन को बनाये रखने वाली शक्ति निवास करती है । पृथ्वी की सतह का कुल क्षेत्रफल 196,950,000 वर्गमील है । जिसमें से 13,24,40000 वर्गमील क्षेत्र में पानी है और 57,510,000 वर्गमील में भूमि है । यहाँ तक की जीवन का आधारभूत रसायन जीवद्रव्य का 90% जल ही होता है । जल मांसपेशियों में 75% यकृत में 69% हड्डियों में 22% होता है । शरीर के भार का लगभग 59% जल ही होता है । जल के प्रदूषण का अर्थ है जीवन के आधार का प्रदूषण, जल के विनाश का अर्थ है जीवन का विनाश ।

पीने योग्य पानी की पहले से ही धरती पर बहुत कमी है । धरती के लगभग 32.7 करोड़ घनमील जल सम्पदा का मात्र 6% ही अर्थात् 1.96 करोड़ घनमील ही मीठा पानी है । इस पानी का 1.5% झीलों, नदियों, जलाशयों में विद्यमान है जबकि 97.5% भूमिगत है । वर्षा से प्रति वर्ष प्रायः 380 अरब एकड़ फीट पानी गिरता है जो मीठा जल होता है पर इसका अधिकांश भाग समुद्र में ही बरसता है केवल 80 अरब एकड़ पानी ही स्थल के हिस्से में आता है । इसमें से भी अधिकांश जल भूमिगत हो जाता है और मात्र 27 अरब एकड़ फीट जल नदी, तालाबों, झीलों से मिल पाता है । गङ्गा बेसिन में लगभग 43.2 लाख घन एकड़ फीट मीठा जल उपलब्ध है । कोई भी जल विशेष पीने योग्य है अथवा नहीं इसको जानने के लिये जल की गुणवत्ता के सम्बन्ध में कुछ मानकों का निर्धारण आवश्यक है । सभी विकसित एवं अविकसित देशों ने पीने योग्य जल के लिये अपने अलग-अलग मानक निर्धारित किये हैं हमारे देश में स्वास्थ्य मंत्रालय ने पीने योग्य पानी के मानक निर्धारित किये हैं ।

पीने योग्य जल के मानकों को मुख्यतयाः चार वर्गों में विभाजित

करते हैं- (1) भौतिक (2) रासायनिक (3) रेडियो धर्मिता (4) सूक्ष्म जैविक । भौतिक वर्ग के अन्तर्गत पानी का स्वाद, गन्ध, रंग एवं गँदलापन आता है । रासायनिक वर्ग के अन्तर्गत सम्पूर्ण ठोस, सम्पूर्ण भारीपन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, मैग्नीज, ताँबा, जस्ता, क्लोराइड, सल्फाइड, फिनाल, फ्लोराइड, नाइट्रेट, क्रोमियम, सीसा, सेलेनियम आदि पदार्थ आते हैं। रेडियोधर्मिता के अन्तर्गत अल्फा एवं बीटा को उत्सर्जित करने वाले पदार्थों की मात्रा आती है । सूक्ष्म जैविक वर्ग के अन्तर्गत सम्पूर्ण कोलीफार्म संख्या एवं फिकलकोलीफार्म संख्या आती है। जल की अम्लता या क्षारता नापने की इकाई **'पी.एच.'** है । यह 0 से 14 तक हो सकता है । 7 से कम पी.एच. वाला जल अम्लीय होता है और 7 से अधिक पी.एच. मान वाला जल क्षारीय । पेयजल का पी.एच.मान 7 से 8 के बीच मे होना चाहिये । पीने वाला जल किसी प्रकार के गन्ध एवं रंग से रहित होना चाहिये । शुद्ध जल स्वादहीन भी होता है । ठोस पदार्थों की मात्रा पीने वाले जल में 500 मी.ग्रा. प्रतिलीटर निर्धारित की गई है । हल्का जल जहाँ हृदय के लिये हानिकारक होता है वहीं भारी जल आँतों को नुकसान पहुँचाता है । जल में क्लोराइड की मात्रा ज्यादा होने से जल का स्वाद नमकीन हो जाता है । क्लोराइड की मात्रा जल में अधिक होने से पीने वाले को पेट सम्बन्धी रोग हो सकते हैं । क्लोराइड दंत क्षय को रोकता है । शुद्ध पेयजल में क्लोराइड की मात्रा 0.6 से 1.2 मीलीग्राम प्रतिलीटर होनी चाहिये । इसकी मात्रा जल में अधिक होने से डेण्टल फ्लोरोसिन नामक बीमारी होती है । जल में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होने से इनफैन्ट मैथमोंग्लोबीनीमिया नामक बीमारी होती है । जिसके कारण शरीर का पूरा खून नीला पड़ जाता है । यदि पीने वाले जल में आर्सेनिक की मात्रा मानक से ज्यादा हो तो आर्सेनियासिस नामक बीमारी होती है ।

इस बीमारी में हाँथ-पाँव पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं जो बाद में कैंसर का रूप धारण कर लेते हैं । आर्सेनिक 0.2 से 1.4 मि.ग्रा. प्रतिलीटर तक होने से विष का कार्य करता है । कोलिफार्म वैक्टीरिया स्वयं में तो हानिकारक नहीं है पर जल में उनकी उपस्थिति मानव मलजन्य रोगाणुओं की उपस्थित की सूचना देती है । एक तालिका द्वारा हम पीने योग्य जल के सभी मानकों को दर्शा सकते हैं —

वर्ग मानक अधिकतम

भौतिक वर्ग-

(1) गंदलापन

(सिलिका मानक) 5 यूनिट्स 25 यूनिट्स

(2) रंग (प्लेटिनम,कोबाल्ट मानक यूनिट)5 यूनिट्स 25 यूनिट्स

(3) स्वाद, गंध कुछ नहीं अरुचिकर

रासायनिक वर्ग-

(1) पी.एच. 7.0 से 8.5 6.5 से कम या 9.2 से अधिक

(2) कैल्शियम कार्बोनेट 300 मीग्रा0/ली0 600मीग्रा0/लीटर

(3) कैलसियम 75 मीग्रा0/लीटर 200 मीग्रा0/लीटर

(4) मैगनेशियम 50 मीग्रा0/लीटर 150 मीग्रा0/लीटर

(5) लोहा 0.3 मीग्रा0/ली0 1.0 मी0ग्रा0/ली0

(6) मैग्नीज 0.1 मीग्रा0/ली0 0.5 मीग्रा0/ली0

(7) ताँबा 1.0 मीग्रा0/ली0 3.0 मीग्रा0/ली0

(8) जस्ता 5.0 मीग्रा0/ली0 15.0 मीग्रा0/ली0

(9) क्लोराइड 250 मीग्रा0/ली0 1000 मीग्रा0/लीटर

10) सल्फेट 250 मीग्रा0/लीटर 400 मीग्रा0/लीटर

(11) फिनाल 0.001 मीग्रा0/लीटर 0.002मीग्रा0/ली0

(12) फ्लूराइड 1.0 मीग्रा0/लीटर 2.0 मीग्रा0/लीटर

(13) नाइट्रेट 20 मीग्रा0/लीटर 50 मीग्रा0/लीटर

(14) आर्सेनिक .... 0.2 मीग्रा0/लीटर

(15) क्रोमियम .... 0.05 मीग्रा0/लीटर

(16) सायनाइड .... 0.01 मीग्रा0/लीटर

(17) सीसा .... 0.1 मीग्रा0/लीटर

रेडियो धर्मिता-

(1) अल्फा (माइक्रोक्यूरी/मिली0) .... 10^{-9}

(2) बीटा (माइक्रोक्यूरी/मिली0) .... 10^{-8}

कोलीफार्म .... 10 प्रति मी0ली0 से कम

वैक्टीरिया ....

शुद्ध पेयजल के इन मानकों के परिप्रेक्ष्य में गङ्गाजल की गुणवत्ता की जाँच करने पर हम पाते हैं कि यह जल पीने तो क्या स्नान करने के भी योग्य नहीं रह गया है । गङ्गाजल का प्रदूषण घटने की अपेक्षा तेजी से बढ़ रहा है और गङ्गा प्रदूषण को रोकने के सारे प्रयास असफल और निरर्थक सिद्ध हुये हैं । जबकि गङ्गा के निर्मलीकरण का अभियान आरम्भ होता है तो भ्रष्टाचार की एक नई गङ्गा हमारे इस गङ्गा माँ के समान्तर बहने लगती है जो अपने प्रवाह में जनता की गाढ़ी कमाई के सारे पैसे बहा ले जाती है । वास्तव में भारतीय समाज में जो बेईमान, भ्रष्टाचार, कदाचार, कलुषता, कल्मषता, दीनता, दरिद्रता, अमानवीयता भर गई है उसी की काली छाया माँ गङ्गा पर पड़ रही है । गङ्गा तो अब भी निर्मल, विमल एवं पवित्र हैं उसमें जो प्रदूषण और मलिनता दिख रही है वह गङ्गा की नहीं हमारी और हमारे समाज की मलिनता है । हम कितने नीच हैं कि गङ्गा जैसी पवित्र सौगात को भी मलिन किये बैठै हैं। गङ्गा जब गोलोक से राधा के शाप से स्खलित होने लगी तो उसने परमेश्वर

श्रीकृष्ण से पूछा कि लोग मुझमें अपना पाप धो-धोकर मुझे मलिन कर देंगे तो मैं स्वयं को निर्मल एवं पवित्र कैसे कर पाउँगी । तब परमात्मा श्रीकृष्ण ने गङ्गा से कहा था कि जब कोई साधु-पुरुष तुझमें स्नान करेंगे तो तुम्हारी सारी मलिनता नष्ट हो जायेगी । भाव यह कि गङ्गा हमारे समाज की साधुता एवं असाधुता का प्रतिछाया मात्र है। मैले और अपवित्र समाज में निर्मल और पवित्र गङ्गा बह कैसे सकती है । कहाँ गये वे साधु-महात्मा जिनकी प्रत्याभूति पर भगवान् श्रीकृष्ण ने गङ्गा को पृथ्वी पर बहने के लिये भेजा था ? भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति की जीवन धारा गङ्गा मर रही है, सनातन धर्म की रीढ़ सड़ रही है और हमारे साधु-महात्मा नाच-नाच कर ढोल-नगाड़े बजा-बजाकर उसमें समारोह पूर्वक नहाने में लगे हुये हैं । कुछ मरते-मरते भी गङ्गा के आँचल में बचे-खुचे पुण्य एवं माल-असबाब को लूटने में लगे हुये हैं, ये मरती हुयी गङ्गा की आरती उतार रहे हैं । धन्य हैं माँ तेरी ममता ! तू मृत्यु शैय्या पर पड़ी हुयी भी अपने नालायक और कोख के कलंको को कुछ न कुछ दे ही रही है ।

गङ्गा को शुद्ध करने के लिये 1985 में भारत सरकार ने गङ्गा कार्य-योजना बनायी थी फिर फरवरी 1991 में केन्द्रीय गङ्गा-प्राधिकरण गङ्गा-कार्ययोजना द्वितीय का गठन किया गया जिसे 1995 में नदी संरक्षण प्राधिकरण का रूप दे दिया गया । इन सभी योजनाओं का पैसा नेताओं, अधिकारियों और बेईमान गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओज.) के पापी पेट में चला गया । गङ्गा कुछ और मैली हो गई । ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य **स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज** के भगीरथ प्रयत्न से 4 नवम्बर 2008 को गङ्गा को राष्ट्रीय धरोहर घोषित करते हुये इसे राष्ट्र-नदी की संज्ञा दी गई ।

गङ्गा शुद्धिकरण की तीसरी कार्ययोजना पर जो अरबों रूपये खर्च होने वाले हैं, उन अरबों रूपयों की कोख से जाने कितने ए. राजा और कलमाड़ी पैदा होने वाले हैं । जो कभी गङ्गा की तरफ मुड़कर नहीं देखते थे वही आज गङ्गा शुद्धिकरण के लिये एन.जी.ओ. बनाकर बैठे हैं । गङ्गा के नाम पर एक बार फिर विराट् महाभोज का आयोजन होने वाला है और इसमें भाग लेने वाले सभी गिद्ध अपनी-अपनी चोंचें तेज करने में लगे हुये हैं । प्रश्न है कि इन गिद्धों से कौन बचायेगा गङ्गा को ? गङ्गा एक बार पुनः कातर नेत्रों से जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज जैसे सन्तों को निहार रही है क्योंकि उसके कानों में अभी भी भगवान् की वह वाणी गूँज रही है - जब तू पापियों के पाप धोते-धोते मलिन हो जायेगी तो सन्त तुम्हारी मलिनता दूर करेंगे । समर शेष है, कार्य अधूरा है ।

सार्वभौम गङ्गा सेवा अभियानम् का यह दृढ़ संकल्प है कि गङ्गाजल को इतना शुद्ध एवं निर्मल बनाया जायेगा कि गंगोत्री से गङ्गासागर तक कहीं से भी कोई अँजुलि में इसे लेकर निःसंकोच पी सके। आज स्थिति यह है कि गङ्गा के किनारे बसे नगरों एवं उनके उद्योगों से 1.5 बिलियन लीटर (14 अरब लीटर) अवशिष्ट (sewage) प्रतिदिन गङ्गा में उढ़ेलकर उसे रुग्ण एवं प्रदूषित बना रहे हैं । वाराणसी में मानव मल से उत्पन्न होने वाले कोलिफार्म जीवाणुओं की संख्या गङ्गा के जल में अपने मानक से कहीं बहुत अधिक है । वर्तमान समय में प्रति 100 घ.सेमी. पानी में इनकी संख्या मानक से कई गुना अधिक 60,000 है । बी. ओ. डी. भी चार-पाँच मीलीग्राम प्रति लीटर है जब भी इसकी अधिकतम मात्रा 3 मीग्रा./लीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिये। केवल वाराणसी में ही 900 लाख लीटर से अधिक अवजल (sewage) प्रतिदिन गङ्गा में निस्तारित होता है । इन सभी समस्याओं का समाधान

सुझाते हुये दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी कहते हैं कि हमें आज भगीरथ नहीं चाहिये । भगीरथ ने तो गङ्गा बहा दिया उनका काम पूरा हुआ । हमें आज श्रीकृष्ण चाहिये जो कालियानागरूपी नालों के फन अवरुद्ध कर गङ्गा में अरबों गैलन अवजल का विष घुलने से रोक सके । स्वामी जी कलियुग में श्रीकृष्ण की तलाश में जुटे हैं पर प्रश्न वही है कि —

जब सभी अंग नासूर से रिस रहे हों,
तो मसीहा कहाँ हाय मरहम लगाये ।



भौतिक शास्त्र में गङ्गा

भौतिक शास्त्र इस संसार के पदार्थिक स्वरूप का अध्ययन करता है । जिज्ञासा मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी विशेषता है । आरम्भ काल से ही मानव के मन में यह जानने की जिज्ञासा रही है कि विश्व के निमार्ण का मूल पदार्थ क्या है ? (What are the building blocks of Universe) ? इस दिशा में सबसे प्रथम प्रयास भारतीय दार्शनिक कणाद का प्राप्त होता है जिन्होंने ईसा से बहुत पूर्व ही वैशेषिक दर्शन का निर्माण किया । आपने सबसे पहले परमाणु की अवधारणा को जन्म दिया । कणाद का अर्थ ही होता है 'कण' के सिद्धान्त को प्रदान करने वाला । वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार इस विश्व के निर्माण के पीछे कुल नौ तत्त्व - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा हैं । यहाँ दो चीजें उल्लेखनीय हैं - पहली यह कि आपनी आत्मा को भी द्रव्य ही माना है और दूसरी यह कि आपने आकाश और दिक् दोनों को एक नहीं अलग-अलग तत्त्व माना है जो कि आज के वैज्ञानिक तथ्यों के एकदम अनुकूल है । वैशेषिक दर्शन पाँच भूतों की भी बात करता है । वे पाँच भूत हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश । ये पाँच भूत पाँच तत्त्व नहीं हैं वरन् पदार्थ या तत्त्व की पाँच अवस्थायें हैं । इन्हीं पाँच अवस्थाओं में प्रत्येक तत्त्व कहीं न कहीं होते हैं । यदि आज के भौतिक शास्त्र की भाषा में वैशेषिक दर्शन के इन पाँचभूतों को प्रस्तुत करें तो वे होंगे - ठोस (Solid), द्रव (Liquid), गैस (Gaseous), उष्मा (Energy) और ईथर (Eather) । चार भूत पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु तो परमाणुओं से बने होते हैं पर आकाश परमाणुओं से नहीं

बना है । कणाद के अनुसार आकाश एक अविच्छिन्न एवं अखण्ड सत्ता है । काल, दिक्, मन और आत्मा ये आकाश से भी सूक्ष्म हैं ।

ग्रीक दर्शन में भी उन आधारभूत तत्त्वों की कल्पना की गयी है जिनसे यह विश्व ब्रह्माण्ड बना है । थेल्स (625-546 ई0पू0) ने कल्पना की कि सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति के पीछे जल (water) है । एनाक्सीमिनीज (494 ई0पू0) के अनुसार वायु और हेराक्लिट्स (535-475 ई0पू0) के अनुसार अग्नि तत्त्व इस विश्व-ब्रह्माण्ड के आधारभूत तत्त्व हैं । जेनोफिनीज के अनुसार पृथ्वी और जल तत्त्व से यह सारा ब्रह्माण्ड निर्मित है । एम्पीडोक्लीज (495-435) ने घोषणा की कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चारों तत्त्व इस विश्व ब्रह्माण्ड की आधारभूत ईकाईयाँ हैं । भारतीय दर्शन और ग्रीक दर्शन में सबसे बड़ा अन्तर यह रहा है कि जहाँ भारतीय दर्शन में आरम्भ से ही आकाश को भी एक तत्त्व माना गया वहीं पाश्चात्य दर्शन में 19वीं सदी तक आकाश को तत्त्व की संज्ञा नहीं मिली थी ।

कणाद् की स्थापना तक पहुँचने में ग्रीक दर्शन को कई सौ वर्ष लगे। ल्युकिपस और उसके शिष्य डेमोक्रिटस (460-370 ई0पू0) ने मिलकर परमाणु की अवधारणा विकसित की और उनके अनुसार परमाणु ही इस विश्व ब्रह्माण्ड की आधारभूत ईकाई है । ग्रीक दर्शन में यह डेमोक्रेटियन सिद्धान्त पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक प्रभावी रहा । व्युतपत्ति के अनुसार एटम का अर्थ होता है अविभाज्य - (A = not, tems = cut) अर्थात् जिसे काटा न जा सके । डेमोक्रेटस ईश्वर में विश्वास नहीं करता था । उसका परमाणु उन सभी विशेषताओं से विभूषित था जिन विशेषताओं से भारतीय दर्शन में हम ईश्वर को विभूषित करते हैं अर्थात् उसका परमाणु अजर-अमर और अज था । बस भारतीय ईश्वर और उसके परमाणु में अन्तर यही था कि हमारा ईश्वर एक है और उसके परमाणु अनन्त थे और हमारा ईश्वर चेतन है और उसके

परमाणु जड़ थे । ये परमाणु शून्य में इधर-उधर गतिशील रहते थे । ग्रीक दर्शन में जिसे शून्य (Void) कहा जाता था उसे ही बाद में क्लासिकल फिजिक्स में न्युटन ने आब्सोल्यूट स्पेस (Absolute Space) कहा । ग्रीक दर्शन एवं कणाद् के वैशेषिक दर्शन के परमाणु अवधारणा में बस एक ही समानता थी कि दोनों के अनुसार परमाणु अविभाज्य थे। वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रत्येक परमाणु की अपनी एक विशिष्टता थी इसी कारण इसे वैशेषिक दर्शन कहा भी जाता है । कणाद् की यह अवधारणा आज के अति आधुनिक भौतिकशास्त्र की परमाणविक अवधारणा से मेल खाती है जहाँ प्रत्येक परमाणु की अलग-अलग परमाणु संख्या एवं परमाणु भार होता है । जबकि डेमोक्रेटियन परमाणु अवधारणा में परमाणुओं की कोई अलग विशेषता नहीं होती है । कणाद् ईश्वर का अपने दर्शन में कहीं कोई उल्लेख नहीं करते हैं पर ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार नहीं करते हैं । वे एक धार्मिक ऋषि थे और अपने दर्शन में ईश्वर का उल्लेख न करते हुये भी उन्हें और उनके अनुयायियों को ईश्वर में विश्वास था । दूसरी तरफ ग्रीक परमाणु दार्शनिक ईश्वर की सत्ता को पूरी तरह नकारते थे पर दोनों ही दर्शन में परमाणु की न तो उत्पत्ति थी और न ही विनाश । यहूदी और ईसाई दर्शन के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना शून्य से की । ये दोनों दर्शन सृष्टि के पीछे किसी आधारभूत तत्त्व को नहीं देखते हैं जब कि भारतीय दर्शन ब्रह्म को जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण मानता है ।

परमाणु के बारे में भारतीय एवं ग्रीक अवधारणा दो हजार से अधिक वर्षों तक प्रभावी रही । एक अंग्रेज रसायनशास्त्री जान डाल्टन ने 1803 में अपना परमाणविक सिद्धान्त प्रस्तुत किया । डाल्टन एक स्कूल टीचर था । उसने घोषणा की कि परमाणु किसी भी तत्त्व की सबसे सूक्ष्मतम् ईकाई हैं । अणु किसी भी यौगिक की सूक्ष्मतम ईकाई हैं । प्रत्येक तत्त्व के परमाणु एक जैसे होते हैं । एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में

इसलिये नहीं बदला जा सकता क्योंकि प्रत्येक तत्त्व के परमाणु अभिन्न एवं अपरिवर्तनीय होते हैं । डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त को हम अग्रलिखित रूप से संक्षिप्त कर सकते हैं- (1) प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म कणों से बने हैं जिसे परमाणु कहा जाता है । (2) किसी भी एक तत्त्व के परमाणु एक जैसे होते हैं । (3) रासायनिक प्रक्रिया या तो परमाणुओं का आपस में संयोग (Combination) या पृथक्करण (Separation) है। (4) परमाणु आपस में जुड़कर अणु का निर्माण करते हैं ।

आइजेकन्युटन (1642-1727) को क्लासिक फिजिक्स का फादर कहते हैं । ग्रीक परमाणु शस्त्रियों ने अनजाने ही भौतिकशास्त्र की आधारशिला रख दी थी लेकिन क्लासिक मेकेनिक्स (Classic mechanics) का जन्म 1687 ई0 में होता है जब न्युटन की पुस्तक "फिलासफिया नेचुरेलिस प्रिसंपिया मैथमेटिक (Philosophia Naturalis Principia Mathematica) प्रकाशित होती है । उसने क्लासिक फिजिक्स के तीन प्रमुख सिद्धान्तों को जन्म दिया जिसे हम भौतिकी में न्यटन के नियम (नैूदह' थैं) के नाम से जानते हैं । न्युटन के अनुसार - (1) यदि कोई वस्तु स्थिर है तो स्थिर रहना चाहेगी और यदि गतिशील है तो सीधी रेखा में समान गति से गतिशील रहेगी यदि उसपर कोई वाह्य बल न लगाया जाये । यह न्युटन के गति का पहला नियम है । (2) न्यूटन के गति के दूसरे नियम के अनुसार किसी विशेष बल के द्वारा किसी गतिशील वस्तु पर उत्पन्न त्वरण बल के परिमाण के समानुपाती होता है । (3) न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया के बराबर और विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है ।

डेमोक्रिट्स और न्यूटन दोनों फुल और वायड (Full and Void theory) सिद्धान्त में विश्वास रखते थे । परमाणु जिनसे मिलकर पदार्थ बनते हैं, ठोस (Full) माने जाते थे और जिस आकाश में ये पदार्थ रहते हैं उन्हें शून्य (Void) माना जाता था । न्यूटन 'आप्टिक्स' में परमाणु

के बारे में लिखता है, "It seems probable to me that God in the beginning formed matter in solid, massy, hard, impenetrable, movable particles of such size and figures, and with such other properties, and such proportion to space, as most conduct to end for wich He formed them, and that these primitive particles being solids, are incomparably harder than any porous bodies is compounded of them; even so very hard, as never to wear or break in pieces; no ordinary power being able to devide what God Himself made one in the first creation." आज के भौतिक विज्ञान में न्यूटन के समय के परमाणु की पूरी अवधारणा ही बदल गयी है । आज स्थिति यह है कि इस ब्रह्माण्ड की मूल ईकाई की खोज करते-करते परमाणु तो क्या पदार्थ नाम की कोइ चीज ही नहीं बची है । वार्नर हेजिन्बर्ग के शब्दों में - By getting to smaller and smaller units, we do not come to found a mental units, or indivisible units, but we do come to a point where division has no meaning' अर्थात् विश्व संरचना की सूक्ष्मतम् ईकाई की खोज करते-करते आज हम उस बिन्दु तक पहुँच गये हैं जहाँ अब और सूक्ष्मता का कोई अर्थ ही नहीं बचता है । पदार्थ को ढूंढने चले तो वह सूक्ष्म होता होता पूरी तरह गायब हो गया और जो हाथ लगा वह थी ऊर्जा । समय के छोटे से फलक पर खोजों की एक शृंखला ने कणाद से लेकर डाल्टन तक के परमाणु सिद्धान्तों को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया । ये खोजें थी 1895 में एक्स-रे की खोज, 1896 में रेडियो एक्टीविटी की खोज, 1897 में इलेक्ट्रान की खोज और 1898 में रेडियम की खोज ।

1891 में स्टोनी ने विद्युत आवेश की इकाई के रूप में इलेक्ट्रान का नाम सुझाया था । 1897 में जे. जे. थामसन ने घोषणा की कि कैथोड रेज (Cathode rays) वास्तव में ऋणात्मक विद्युत आवेश वाले कणों की धारा (Stream) है । धनात्मक आवेश वाले प्रोटान का पता

भी 1898 में ही चला गया था तथा 1907 में जे. जे. थामसन ने इसे Positive rays (धनात्मक किरणें) नाम भी दे दिया था पर इस कण को प्रोटान नाम 1920 में मिला । प्रोटान पर विद्युत का धनात्मक इकाई आवेश होता है जब कि इलेक्ट्रान ऋणात्मक ईकाई आवेश होता है । प्रोटान का भार इलेक्ट्रान के भार का 1836 गुना होता है । इलेक्ट्रान का भार 9.1083×10^{-28} ग्राम होता है । इसे यदि भिन्न (fraction) में समझना चाहे तो —

9.108310000000000000000000000000000 होगा या 910830000000000000000000000 ग्राम होता है । 1932 तक आते-आते रदरफोर्ड के एक सहायक जेम्स चैडविक द्वारा विद्युत आवेश से पूर्णतया रहित न्यूट्रान (Neutron) का भी पता चल गया । अब कणाद, डेमोक्रेटियन, डाल्टन एवं न्यूटन का अविभाजित परमाणु टुकड़े-टुकड़े में बँट चुका था और अब वह विश्व निर्माण की सूक्ष्मतम और अविभाज्य ईकाई नहीं रह गया था । अब वह इलेक्ट्रान, प्रोटान एवं न्युट्रान इन तीन कणों में बँट चुका था । न्यूट्रान आवेशरहित और प्रोटान से थोड़ा भारी कण होता है ।

यहाँ तक हमें यह बात समझ लेनी चाहिये कि प्रत्येक तत्त्व के परमाणु इन्हीं तीन कणों इलेक्ट्रान, प्रोटान एवं न्यूट्रान से बनते हैं। किसी भी एक तत्त्व के सभी परमाणु एक जैसे पर दूसरे तत्त्व से भिन्न होते हैं और यह भिन्नता इन्हीं तीन कणों के आपस में जुड़ने के अनुपात से आती है । उदाहरणार्थ एक प्रोटान और एक इलेक्ट्रान मिलकर हाइड्रोजन के एक परमाणु का निर्माण करते हैं । 2 प्रोटान, 2 इलेक्ट्रान और 2 न्यूट्रान मिलकर हिलियम के एक परमाणु का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार कार्बन में 6 इलेक्ट्रान, 6 प्रोटान और 6 न्युट्रान, नाइट्रोजन एक परमाणु में 7:7:7, आक्सीजन में 8:8:8, फास्फोरस में 15:15:16, लोहे (Iron) में 26 इलेक्ट्रान, 26 प्रोटान और 30 न्यूट्रान, चाँदी में

47 इलेक्ट्रान, 47 प्रोटान और 60 न्युट्रान तथा सोने में 79 इलेक्ट्रान, 79 प्रोटान और 118 न्यूट्रान होते है । इस तरह हम देख सकते हैं प्रकृति के सारी विविधता के पीछे इन्हीं तीन कणों इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान के आपसी संयोग का अनुपात है । ये ही तीन मूल लिपि हैं जिनसे प्रकृति की सारी विविधता लिखी गयी है ।

पर क्या इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान ये ही तीन मूलकण हैं जिनसे यह सृष्टि निर्मित है । जी नहीं, ये सभी कम्पोजिट कण हैं, संघटित हैं और इनसे भी सूक्ष्म इनके संघटक हैं । विज्ञान की भाषा में इन्हें सबएटामिक पार्टिकल (Sub Atomic Particle) कहते हैं । इन्हें विज्ञान दो भागों में बाँटता है - (1) हैड्रान (Hadron) (2) लेप्टान (Lepton) । 'हैड्रान' ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है शक्तिशाली। अतः इस वर्ग के अन्दर वे सबएटामिक पार्टिकल आते हैं जो अत्यन्त शक्तिशाली नाभिकीय इन्टरैक्शन रखते हैं । हैड्रान अनन्त प्रकार के हैं जिनमें से बहुत तो बहुत ही क्षणिक होते हैं । उनकी आयु एक सेकेंड के खरबवें भाग से भी कम होती है । वे निरन्तर दूसरे कणों में बदलते रहते हैं । हैड्रान के भी दो प्रकार हो जाते हैं - (1) बेरयान्स (Baryons) (2) मीजान्स (Mesons) । प्रोटान और न्यूट्रान बेरयान समूह के कण हैं जब कि पाइआन (Pion) और केआन (Kaon) मीजान समूह के अन्तर्गत आते हैं । 1961 में जेलमैन और उनके सहायक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि हैड्रान भी मूलकण नहीं है ये जिन कणों से बने हैं उन्हें क्वार्क कहते हैं । अतः हैड्रान, क्वार्क (Quark) के अणु हैं । इस खोज के लिये 1969 में जेलमैन (Murray Gell Mann) को नोबल प्राईज दिया गया । ये क्वार्क इलेक्ट्रान की तरह ही क्वांटम कण हैं । लेप्टान हल्के और मूल कणों के समूह को कहते हैं पर इन्हें भी सृष्टि का मूल कण इसलिये नहीं मानते हैं क्योंकि ये अनेक प्रकार के हैं - जैसे इलेक्ट्रान (1897), म्युआन (1937), न्यूट्रीनों (1930), ट्युआन

(1976)। वैज्ञानिकों के अनुसार ये कण इतने सूक्ष्म होते हैं और इनमें से कुछ की भेदक क्षमता इतनी होती है कि यदि 250 पृथ्वियाँ एक सीध में रखी जाये तो एक न्यूट्रीनों इन सभी पृथ्वीयों को पार कर जायेगा और ऐसा करने में वह इनके किसी भी दूसरे कण से नहीं टकरायेगा।

1900 ई0 को हम क्लासिकल फिजिक्स (Classical Physics) और माडर्न फिजिक्स (Modern Physics) के बीच विभाजक रेखा मान सकते हैं। मैक्स प्लांक (1858-1947) जो कि एक जर्मन वैज्ञानिक था, क्वान्टम फिजिक्स (Quantum Physics) की आधारशिला रखी। प्लांक को 1918 में उसके प्लांक समीकरण के लिये नोबलप्राइज दिया गया। एक छोटे से लेख में Atomic Physics का वर्णन सम्भव नहीं है फिर भी यहाँ हम क्वांटम भौतिकी क्या है, इसे संक्षेप में समझने का अवश्य प्रयास करेंगे। सूक्ष्म जगत् में कणों का निरन्तर तत्वान्तरण (Transmutation) चलता रहता है। एक प्रकार के कण दूसरे प्रकार के कणों में बदलते रहते हैं। कण ऊर्जा से बनते हैं फिर ऊर्जा में ही विलीन हो जाते हैं। ऊर्जा का एक अनन्त महासमुद्र है जिसमें से बुदबुदे की तरह ही पदार्थकण उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। यह ऊर्जा का महासमुद्र अनन्त एवं अखण्ड है। इसमें अखण्ड सात्यता (Continuity) है। इसलिये इस विश्व में न तो कोई पृथक् अस्तित्व वाली वस्तु है, न तो कुछ भी पदार्थ है और ना ही कोई ऐसा कण है जो मूल एवं स्थायी हो। पदार्थ और रिक्त या शून्य आकाश से भेद पूरी तरह समाप्त हो गया। जब यह सत्य भैतिक विज्ञान के सामने आया कि इस शून्य समझे जाने वाले आकाश या (Void) से ही पदार्थ अस्तित्त्व में आते हैं और उसी में कुछ देर स्थित रहकर फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। वास्तव में हम आज तक जिसे शून्य समझते रहे हैं वह क्वान्टम भौतिकी (uantum Physics) के अनुसार ऊर्जा का आवेशित विराट क्षेत्र (Field) है और पदार्थ उस विराट् ऊर्जा क्षेत्र में जिसे हम दिक् या आकाश या

शून्य समझते हैं, समुद्र में लहरों की तरह प्रकट होते हैं, कुछ देर उसमें स्थित रहते हैं फिर उसी में विलीन हो जाते हैं । जैसे वायु में जल होता है पर दिखता नहीं पर रात में वही ठंड पाकर ओस की बूँदों के रूप में अपने को प्रकट कर देता है, ठीक उसी तरह यह विराट् ऊर्जा का क्षेत्र कहीं-कहीं संघनित होकर अपने को पदार्थ के रूप में प्रकट (Manifest) कर देता है । क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics) में शून्य को ही सभी पदार्थों के प्रकटीकरण का आधार माना जाता है । वास्तव में पदार्थ कुछ है ही नहीं । संघनित ऊर्जा क्षेत्र ही अपने को पदार्थ के रूप में प्रकट कर देता है । वर्तमान भौतिकी में विराट् ऊर्जा क्षेत्र (Field) या शून्य और पदार्थ दोनो के लिये स्थान नहीं है । वास्तव में एक अनन्त और अखण्ड ऊर्जा क्षेत्र ही है पदार्थ नाम की कोई चीज है ही नहीं । **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** यही आज का वैज्ञानिक सत्य है । आइन्स्टीन के शब्दों में - "We may therefore regard matter as a being constituted by the regions of space in which the field is extremely intense...... there is no place in this new kind physics both for the field and matter, for the field is the only reality." यह पूरा विश्व जो कि अनन्त आकाशगङ्गाओं और विधिताओं से भरा पड़ा है, वास्तव में अभिन्न और एक है । यहाँ अनेकत्व के लिये कोई भी स्थान नहीं है । इस विशाल और शान्त ऊर्जा क्षेत्र (Field) में पदार्थ मात्र उसके विकार की तरह हैं जो थोड़ी देर तक आभासिक अस्तित्त्व में रहकर फिर अपने अधिष्ठान में विलीन हो जाते हैं । संक्षेप में यही है क्वांटन भौतिकी ।

इस संदर्भ में आइन्स्टीन के सापेक्षतावाद का उल्लेख असमीचीन नहीं होगा, जिसने न्यूटन के विश्व के मैकेनिकथियरी को पूरी तरह से विदा कर दिया था । आइन्स्टीन ने 1905 में अपने सापेक्षतावाद (Theory of Relativity) को प्रस्तुत किया था । इस सिद्धान्त के अनुसार (1) दिक् (Space) सापेक्ष (Relative) है, (2) काल (ऊग्स) सापेक्ष है,

(3) दिक् (Space) त्रिआयामी (Three - dimensional) नहीं है, (4) काल (Time) केवल एक ही दिशा में अर्थात् अतीत (Past) से वर्तमान (Present) और वर्तमान से भविष्य (Future) की तरफ नहीं गमन करता है, (5) काल (Time) दिक् (Space) से निरपेक्ष कोई सत्ता नहीं है । दिक् और काल जैसी कोई चीज नहीं है, बस केवल दिक्-काल (Space and Time) ही है, अर्थात् दिक् और काल एक ही सत्ता के दो पहलू हैं, (6) दिक् और काल (Space and Time) आपस में अन्योन्याश्रित रूप (Inextricably) संयुक्त हैं जैसे - एक सिक्के के दो पहलू, और ये मिलकर एक चौथा आयाम (Four dimesional continuam) प्रस्तुत करते हैं - जिसे दिक्-काल सातत्य (Space -Time continuum) कहते हैं । (7) द्रव्यमान नाम की कोई चीज नहीं है केवल ऊर्जा है ।

विराट जगत् में हमें द्रव्यमान की सत्यता का बोध होता है पर सूक्ष्म स्तर (श्गीम्देम्दज्म्म तनत) पर पदार्थ गायब हो जाता है । पदार्थ अणुओं से और अणु परमाणुओं से बने हैं । परमाणु (Atom) उपपरमाणविक कणों (Sub-atomic particles) से बने हैं । ये उपपरमाणविक कणिकायें (Sub-atomic particles) ऊर्जा के स्तबक (Bundle of energy) हैं और ये किसी भी पदार्थ से नहीं बने हैं । ये ऊर्जा के बन्डल केवल अपनी क्रियात्मकता (Activity) से ही पहचाने जा सकते हैं । पदार्थ और कुछ भी नहीं केवल ऊर्जा की क्रियात्मकता है और ये केवल अपने गत्यात्मक संदर्भ (Dynamic context) में ही पहचाने जा सकते हैं । प्रत्येक पदार्थ गतिशील एवं क्रियाशील है । इस विश्व में कुछ भी स्थिर नहीं हैं -

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।

- कठोपनिषद् 2/3/2

आइन्सटीन पदार्थ और ऊर्जा से सम्बन्धित एक सूत्र भी दिया है जो आज के भौतिकी (Modern physics) का सर्वमान्य सूत्र है - $E=mc^2$ । यहाँ E का अर्थ ऊर्जा - (Energy), m का अर्थ ग्राम में मात्रा

एवं c का अर्थ प्रकाश का वेग है, जो $3x10^{10}$ cm./sec. अर्थात् तीन लाख किमी. प्रति सेकेण्ड है । इस सूत्र के अनुसार पदार्थ और कुछ नहीं केवल ऊर्जा है । पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को पदार्थ में बदला जा सकता है । इस सृष्टि में यही गतिशील प्रक्रिया (Dynamic Process) निरन्तर चल रही है । विराट् ऊर्जा का समुद्र अपने को पदार्थ (विश्व) के रूप में अभिव्यक्त (Menfest) कर रहा है ।

संक्षेप में आज के भौतिकी (Modern physics) का यही पदार्थ विज्ञान है । आधुनिक विज्ञान के उपरोक्त स्थापनाओं को हम उपनिषद् के दो-तीन मन्त्रों में ही अभिव्यक्त कर सकते हैं । आधुनिक विज्ञान का कहना है कि अव्यक्त (Void or field) से ही व्यक्त (Metter) प्रकट हो रहा है और फिर उसी अपने आधार में समा जा रहा है । हमारा उपनिषद् भी कहता है -

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत ।

- तैत्तिरीय उपनिषद् ब्र.व.2/7

अर्थात् आरम्भ में अव्यक्त (Void or field) ही था, उसी से यह पदार्थरूप जगत् प्रकट हुआ । आज का विज्ञान कहता है कि एक विराट् ऊर्जा का अव्यक्त महासमुद्र है उसी में यह विश्व-ब्रह्माण्ड लहरों की तरह उठकर उसी में स्थित रहते हुये पुनः उसी आधार में विलीन हो जाता है। हमारा उपनिषद् भी तो यही हजारों वर्ष पहले से कहता आ रहा है -

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ॥

- तैत्तिरीय उपनिषद् भृगु वल्ली, प्रथम अनुवाक

अर्थात् जिस एक सत्ता से ये सम्पूर्ण दृश्य जड़-चेतन उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर जिसमें अस्तित्त्वमान होते हैं तथा फिर जिसमें विलीन हो जाते हैं वह परमाधिष्ठान सत्ता ब्रह्म है । आज का विज्ञान कहता है कि विश्व की सारी विविधता आभासिक है । इसके पीछे एक

ही शक्ति का क्रीड़ा विलास है जो अनन्त, अखण्ड, शाश्वत, सार्वजनिक और सार्वकालिक है । हमारा उपनिषद् भी यही कहता है —

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

- कठोपनिषद् 2/1/10

अर्थात् जो यहाँ है वही वहाँ है और जो वहाँ है वही यहाँ है । जो इस एकता में विविधता को देखते हैं वही सत्य को न जान पाने के कारणं झूठरूपी मृत्यु को प्राप्त होते हैं । विज्ञान कहता है कि शून्य (Void) दिखने वाले उसी अमूर्त, अव्यक्त विराट् क्षेत्र (Field) से ये दृश्य जगत् उत्पन्न और फिर उसी में विलीन होते रहते हैं । यह सारा दृश्य जगत् उसी शून्य क्षेत्र पर आश्रित हैं । यदि वह कैनवस है तो यह जगत् उस शून्य भित्ति पर मात्र चित्रित (Painted) है । हमारा उपनिषद् कहता है —

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।
एतद् वै तत् ॥

- कठोपनिषद् 2/2/8

अर्थात् यह जो नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला परमपुरुष परमेश्वर सबके सो जाने पर भी जागता रहता है (Dynamic continuam), वही शुक्र अर्थात् परम विशुद्ध तत्त्व (Building blocks of the Universe) है । वही ब्रह्म है, वही अमृत कहलाता है । उसी में सम्पूर्ण लोक आश्रय पाये हुये हैं । उसका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता यही है वह । यही है वह जिसे ढूँढते-ढूँढते भी विज्ञान अब तक पूर्णरूपेण नहीं ढूँढ पाया है । जेम्स जीन्स कहता है कि विज्ञान आज कोई भी निश्चित घोषणा कर सकने की स्थिति में नहीं है क्योंकि विज्ञान

की नदी बड़ी तेजी से मोड़ ले रही है । अन्त में आज का विज्ञान Micro (सूक्ष्म) और Macro (विराट्) जगत् की बात करता है । हमारा उपनिषद् भी **अणोरणीयान्महतो महीयान्** की बात करता है । अन्त में इस लेख में उद्घाटित सभी वैज्ञानिक स्थापनायें गोस्वामी तुलसीदास जी के एक पद में समाहित हो जाती हैं —

केशव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये ॥1॥
सून्य भीति पर चित्र रंग नहि तनु-बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरइ भीति दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥2॥
रबिकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माही ।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥3॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ॥4॥

- वि.प.

,अब हम अपने निबन्ध के मूल विषय पर आते हैं । प्रश्न है कि भौतिकशास्त्र के आणविक विज्ञान में अपनी गङ्गा कहाँ है । शून्य भित्ति पर यह जो आभासिक विश्वचित्र बना है इसमें अपनी गङ्गा कहाँ चित्रित है और उसके होने का अर्थ क्या है ? हम इतना तो अब तक इस निबन्ध में देख ही लिये कि प्रत्येक स्थूल की जड़ें कहीं बहुत गहरे सूक्ष्म में स्थित हैं । गङ्गाजी गंगोत्री से लेकर गङ्गासागर तक मचलती हुयी अखण्ड अविकल प्रवाहित 2500 कि.मी. लम्बी इस जलराशि की जड़ें सूक्ष्म जगत् (Micro cosma) में कहाँ है ?

पौराणिक कथाओं के अनुसार गङ्गा का सम्बन्ध ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इन तीनों त्रिदेवों से है । माँ गङ्गा भगवान् विष्णु के पाद्पद्मों से निकलकर ब्रह्माजी के कमण्डलु में संगृहीत है । वहाँ से वे भागीरथ की तपस्या से शंकरजी के जटाजूट में अवतरित हुयी हैं और पुनः शिवजी

की कृपा से एक धारा बनकर पृथ्वी पर अविकल प्रवाहित हैं । भारतीय संस्कृति के ये त्रिदेव सृष्टि की सम्पूर्णता के प्रतीक हैं । ब्रह्माजी सृष्टि की सर्जना के कार्य करते हैं, विष्णु सृष्टि का पोषण करते हैं तथा शिवजी सृष्टि का संहार करते हैं । क्रियेशन, मेन्टिनेन्स और एनीहिलेशन, क्वांटम भौतिकी की ये तीनों क्रियायें हमारे इन त्रिदेवों के द्वार सुसंपादित होती है । अब हम यह देखेंगे कि क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics) में ब्रह्मा, विष्णु और शिव कहाँ हैं ?

हमारे भारतीय दर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है । वह रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण वाली सृजनात्मक स्वरूपा है । प्रकृति की सारी विविधता इन्हीं तीनों गुणों के आपसी संक्रिया का परिणाम है यथा —

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

- श्वेताश्वतर उपनिषद् 4/5

अर्थात् यह प्रकृति अजन्मा है तथा लोहित (रजोगुण), शुक्ल (सतोगुण) तथा कृष्ण (तमोगुण) गुणों वाली है सृजनात्मिका है । विज्ञान कहता है कि प्रकृति की सारी विविधता मात्र तीन उप परमाणविक कणों (Sub-atomic particles) के आपसी संयोग का परिणाम है । वे तीन कण हैं - प्रोटान, न्यूट्रान एवं इलेक्ट्रान । प्रोटान पर धनात्मक, और इलेक्ट्रान पर ऋणात्मक और न्यूट्रान पर कोई आवेश नहीं होता है । वास्तव में आज जिसे विज्ञान प्रोटान, न्यूट्रान और इलेक्ट्रान कहता है उसे ही हमारे भारतीय दार्शनिकों एवं ऋषियों ने रजोगुण (प्रोटान), सतोगुण (न्यूट्रान) और तमोगुण (इलेक्ट्रान) कहा है । रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण ये शक्तिरूपा प्रकृति की तीन शक्तियाँ हैं । रजोगुण

सृजनात्मक, सतोगुण शान्त और तमोगुण प्रतिक्रियात्मक या लयात्मक शक्ति का नाम है । रजोगुण से प्रकृति सर्जना का कार्य करती है, सतोगुण से वह सृष्टि के नियम एवं स्थायित्त्व का कार्य करती है, तमोगुण से वह सृष्टि के लय का कार्य करती है । प्रकृति में सृजन, अस्तित्व और विसर्जन की क्रिया प्रतिपल हो रही है । प्रकृति के इसी स्वरूप को आज का विज्ञान डायनामिक्स (Dynamics) कहता है । मात्र भाषा का अन्तर है, आज विज्ञान जिसे प्रोटान, न्युट्रान और इलेक्ट्रान कहता है, उसे ही हमारे ऋषियों ने प्रकृति के रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण कहा था । ब्रह्मा रजोगुण के अधिष्ठाता, विष्णु सत्त्वगुण के अधिष्ठाता और शिव तमोगुण के अधिष्ठाता देवता हैं । ये त्रिदेव प्रकृति के इन तीनों गुणों के आधिदैविक स्वरूप हैं और ये तीनों गुण इन तीनों देवताओं के आधिभौतिक या क्रियात्मकस्वरूप हैं । आज के भौतिक विज्ञान के अनुसार हम ऊर्जा और पदार्थ को पृथक् नहीं कर सकते, दिक् और काल (Space and Time) को पृथक् नहीं कर सकते, उसी तरह इन त्रिदेवों को इनकी शक्ति से हम पृथक् नहीं कर सकते । ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये भी आपस में पृथक्-पृथक् नहीं वरन् एक ही अस्तित्व के तीन आयाम हैं । गङ्गा, अस्तित्त्व के इन तीनों आयामों का संस्पर्श करती है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की समरसता, संतुलन एवं स्वास्थ्य का सूचकांक है। जैसे शरीर के स्वास्थ्य का पता नाड़ी देखने से चल जाता है, उसी तरह गङ्गा इस पूरे विश्व-ब्रह्माण्ड की नाड़ी है । गङ्गा का प्रदूषण मात्र एक नदी का प्रदूषण नहीं है, वह इस बात की सूचक है कि पूरे ब्रह्माण्ड का स्वास्थ्य खराब चल रहा है । गङ्गा का प्रदूषण एक महाविनाश की आहट है ।

गङ्गा की आयु से पूरे ब्रह्माण्ड की आयु उसी तरह से जुड़ी है जैसे नाड़ी के स्पन्दन से मनुष्य की आयु जुड़ी रहती है । मृत्यु से कुछ क्षण पहले जैसे नाड़ी का स्पन्दन बन्द हो जाता है, उसी तरह इस पूरे

ब्रह्माण्ड की मृत्यु अर्थात् महाप्रलय से कुछ हजार वर्ष पहले गङ्गा लुप्त हो जायेंगी, ऐसा वर्णन पुराणों में मिलता है । पुराणों में आया है- **'पृथ्वी गङ्गाया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ'** अर्थात् अन्तिम कलि में पृथ्वी गङ्गा से हीन होगी । इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि गङ्गा इस कलियुग के अन्त में विदा हो जायेगी । हमारी काल गणना के अनुसार ब्रह्मा के एक दिन का एक कल्प होता है । एक कल्प में एक हजार चतुर्युगी का समावेश हो जाता है । मानव वर्षों के अनुसार चारों युगों की कालगणना निम्न प्रकार है —

सतयुग - 17 लाख 28 हजार वर्ष
त्रेतायुग - 12 लाख 96 हजार वर्ष
द्वापर युग - 8 लाख 64 हजार वर्ष
कलियुग - 4 लाख 32 हजार वर्ष

इस तरह एक चतुर्युगी 43,20,000 मानव वर्षों के बराबर होती है । ब्रह्मा के एक दिन में एक हजार चतुर्युगी होती है, जिसे एक कल्प कहते हैं । अतः ब्रह्मा का एक दिन जो कि एक कल्प है- 43,20,000 1000 = 4,32,00,00,000 अर्थात् 4 अरब 32 करोड़ मानव वर्ष का होता है । ब्रह्मा का जब एक दिन पूरा होता है तब सृष्टि का कल्पान्त होता है और महाप्रलय उपस्थित होता है ।

महाप्रलय का वर्णन पुराणों में विस्तार से है, तदनुसार प्रलय चार प्रकार के होते हैं - (1) नित्य प्रलय - प्रतिदिन जन्म और मृत्यु की क्रिया, (2) नैमित्तिक प्रलय - जब ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है और विश्व-ब्रह्माण्ड का नाश होता है । (3) प्राकृतिक प्रलय - जब प्रत्येक वस्तु प्रकृति में विलीन हो जाती है, (4) आत्यन्तिक प्रलय - मोक्ष अर्थात् सम्यक् ज्ञान से परमात्मा में विलीनता ।

कूर्मपुराणानुसार (2/45/11-59) नैमित्तिक प्रलय का एक दृश्य प्रस्तुत है - जब एक सहस्र चतुर्युगी का अन्त होता है तो एक सौ वर्ष

तक लगातार वर्षा नहीं होती है । परिणाम यह होता है कि प्राणी मर जाते हैं और पृथ्वी में विलीन हो जाते हैं । सूर्य की किरणें असह्य हो जाती हैं, यहाँ तक कि समुद्र सूख जाते हैं । पर्वतों, वनों एवं महाद्वीपों के साथ पृथ्वी सूर्य की भीषण गर्मी से जलकर राख हो जाती है । तब सूर्य की किरणें प्रत्येक वस्तु को जलाती हुयी गिरती हैं और सम्पूर्ण विश्व धधकता हुआ विशाल अग्नि का गोला बन जाता है । चल और अचल सभी वस्तुएँ जल उठती हैं । महासमुद्रों के जन्तु जलकर राख बन जाते हैं । संवर्तकाग्नि प्रचण्ड आँधी से बढ़कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जलाने लगती हैं और उसकी ज्वालाएँ सहस्रों योजन ऊपर उठने लगती हैं । ये ज्वालाएँ गन्धर्वों, पिशाचों, यक्षों, नागों, राक्षसों को जलाने लगती हैं । केवल भू ही नहीं भुवः, स्वःलोक भी जल जाते हैं । तब विशाल संवर्तक-बादल हाथियों के झुण्ड के समान विद्युत से चमत्कृत हो आकाश में उठने लगते हैं । कुछ तो नीले कमलों के सदृश, कुछ पीले, कुछ धूमिल, कुछ मोम से लगते हैं और आकाश में छा जाते हैं और अति वर्षा कर अग्नि बुझाने लगते हैं । जब अग्नि बुझ जाती है, नाश के बादल सम्पूर्ण लोक को बाड़ों से घेर लेते हैं, पर्वत छिप जाते हैं, पृथ्वी पानी में निमग्न हो जाती है और सभी कुछ जलार्णव हो जाता है और तब ब्रह्मा योगनिद्रा में आ जाते हैं । फिर एक हजार चतुर्युगी की ब्रह्मा की रात होती है तथा पुनः ब्रह्मा का दिन शुरू होता है और सृष्टि का विकास पूर्व कल्पानुसार ही होने लगता है —

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

- ऋग्वेद (10/19/3

अर्थात्, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सूर्य, चन्द्र, दिन, पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष की पहले कल्प की ही भाँति सृष्टि की । एक कल्प का ब्रह्मा का एक दिन और एक कल्प की ब्रह्मा की एक रात होती है । इस दिनमान से

360 दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और 100 वर्ष की ब्रह्मा की आयु होती है । अतः ब्रह्मा मानव वर्ष के अनुसार - 4,32,00,00,0002360100=31,10,40,00,00,00,000 वर्ष तक जीते हैं । एक ब्रह्मा की आयु में 14 मनु राज्य करते हैं । एक मनु का काल 71 चतुर्युगी से कुछ ज्यादा होता है । ये चौदह मनु नरसिंह पुराण (24/17-35) के अनुसार इस प्रकार है - (1) स्वायम्भु (2) स्वारोचिष (3) उत्तम (4) तामस (5) रैवत (6) चाक्षुषु (7) वैवस्वत् (8) सावर्णि (9) दक्षसावर्णि (10) ब्रह्म सावर्णि (11) धर्म सावर्णिक (12) रुद्र सावर्णिक (13) रुचि सावर्णिक एवं (14) भौमसावर्णिक । इस समय ब्रह्मा की आयु 50 वर्ष की हो चुकी है । ब्रह्मा की आधी आयु को परार्ध कहते हैं । इस समय प्रथम परार्ध समाप्त हो चुका है और ब्रह्मा का द्वितीय परार्ध चल रहा है । इस प्रथम परार्ध में अब तक छः मनु व्यतीत हो चुके हैं और इस समय सातवें मनु वैवस्वत् का मनवन्तर चल रहा है । मनवन्तर का अर्थ है अन्य मनु । हमारे संकल्प मन्त्र के अनुसार ..... **प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे** .... यह सातवें मनु के कार्यकाल का 28वाँ कलियुग चल रहा है । इससे पहले 7वें मनु के कार्यकाल में 28 सत्युग, 28 त्रेता, 28 द्वापर और 27 कलियुग बीत चुके हैं और अठ्ठाइसवें कलियुग का भी 5100 से अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । अभी नैमित्तिक प्रलय में बहुत वर्ष बाकी हैं । अभी क्रम से सात मनुओं के कार्यकाल व्यतीत होने वाले हैं । ब्रह्मा की अभी आधी आयु बाकी है । तो काल गणना के अनुसार अभी नैमित्तिक प्रलय में 15502000000000 मानव वर्ष बाकी हैं । अतः गंगा की आयु अभी 15501999957330 वर्ष अर्थात् 15 नील 50 खरब 19 अरब 99 करोड़ 95 लाख 73 हजार वर्ष बाकी है । जो लोग पुराणों

के श्लोक का गलत अर्थ लगाकर गङ्गा की आधी उम्र में ही उन्हें विदा करने को तैयार बैठे हैं वे गङ्गा के साथ ही नहीं, इस पूरे ब्रह्माण्ड के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं । गङ्गा के पृथ्वी पर से विदा होने का अर्थ है इस पूरे विश्व ब्रह्माण्ड के मरने की और नैमित्तिक प्रलय की प्रक्रिया का प्रारम्भ । आधुनिक भौतिकी के अनुसार भी पूरा विश्व एक ईकाई है और इसके किसी कोने में होने वाली छोटी सी हलचल पूरे विश्व को प्रभावित करती है । गङ्गा का विदा होना तो एक बहुत बड़ी घटना है अभी तो गङ्गा मात्र इतना बता रही है कि पूरे ब्रह्माण्ड का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है ।



चतुर्दश अध्याय

गङ्गा का भूगोल

गङ्गा का मूल उद्गम गंगोत्री हिमनद है । दुनिया में कुल तीन करोड़ उन्तीस लाख घन किमी. बर्फ है जिसका अधिकांश दक्षिणी और उत्तरी ध्रुवों में स्थित है । इसी बर्फ का कुछ अंश हिमनदों के रूप में ऊँची-ऊँची पर्वत चोटियों पर जमा है जिसमें से सदानीरा नदियाँ निकलती हैं। देवनदी गङ्गा जिस हिमनद (ग्लेशियर) से निकलती हैं उसे गंगोत्री हिमनद कहते हैं । यह समुद्रतल से 4120 मीटर से लेकर 7000 मी. तक की ऊँचाई पर 200 वर्ग किमी. के क्षेत्र में फैला है । इसमें तीन मुख्य एवं अठ्ठारह सहायक हिमनद हैं । इस हिमनद के पास कुल बीस घन किमी. बर्फ है । यह हिमनद 30 किमी. या 19 मील लम्बा और 2 से 4 किमी. चौड़ा है । इसी गंगोत्री हिमनद के गोमुख से गङ्गा निकलती हैं जो गंगोत्री तीर्थ से वर्तमान में 18 किमी. उत्तर में स्थित हैं और ग्लोबल वार्मिंग के चलते यह हिमनद प्रतिवर्ष 15 मीटर या उससे भी अधिक तेजी से सिकुड़ता जा रहा है । गङ्गा जिस हिमनद से निकलती हैं उसका प्राकृतिक ढलान चीन की तरफ है । निश्चित रूप से राजर्षि भगीरथ के प्रयास से ही गङ्गा चीन में बहने के स्थान पर भारत में बह रही हैं । पर यदि गंगोत्री हिमनद इसी तरह से पीछे खिसकता रहा तो 20 किमी. और पीछे खिसकने पर यह हिमनद भारत के बदले चीन में होगा और गङ्गा का उत्स भारत के बदले चीन के अधिकार में चला जाएगा । गङ्गा की दूसरी धारा अलकनन्दा की सहायक पिण्डर नदी का उद्गम पिण्डारी ग्लैशियर तो प्रतिवर्ष 24 मी. की दर से पीछे खिसक रहा है ।

भागीरथी और अलकनन्दा की सम्मिलित धारा का नाम गङ्गा है । अपने स्रोत गंगोत्री में गङ्गा भागीरथी के नाम से जानी जाती हैं । हिमालय से निकलकर जाह्नवी नदी गंगोत्री के निकट भागीरथी में मिलती हैं । भागीरथी की मुख्य सहायक नदी भिलङ्गना है जो टिहरी बाँध में भागीरथी से मिल जाती है । अलकनन्दा बद्रीनाथ के ऊपर से निकलती हैं, जिसमें धौलागिरि पर्वत श्रेणियों में स्थित ग्लेशियरों से उद्गमित धौली-गङ्गा विष्णुप्रयाग में आकर अलकनन्दा से मिलती हैं । आगे,चलकर पाताल गङ्गा, गरुड़ गङ्गा इसमें मिलती हैं । नन्दप्रयाग में त्रिशूल पर्वत से निकलने वाली मन्दाकिनी अलकनन्दा में समाहित होती हैं । पिण्डारी ग्लेशियर से आने वाली पिण्डर कर्णप्रयाग में आकर अलकनन्दा में समाहित होती हैं । रुद्रप्रयाग में मन्दाकिनी भी अलकनन्दा में मिल जाती हैं ।

अलकनन्दा और भागीरथी का संगम देवप्रयाग में होता है । उसके आगे यह प्रवाह गङ्गा के नाम से ऋषिकेश, हरिद्वार, प्रयाग और काशी से होता हुआ 2525 किमी. की यात्रा पूरी कर बंगाल की खाड़ी तक जाता है । पर्वतीय भागों में करीब 250 किमी. तक प्रवाहित होने के बाद ऋषिकेश में गङ्गा मैदानों में उतरती है । ऋषिकेश से 30 किमी. पर ही हरिद्वार है । हरिद्वार से ऊपरी गङ्गा नहर निकलती है । फिर 240 किमी. बाद नरोरा से निचली गङ्गा नहर निकलती है ।

गंगा बेसिन तथा गङ्गा की सहायक नदियाँ -

जहाँ तक के भू-क्षेत्र का वर्षा का जल एक नदी में प्रवाहित होता है, उस क्षेत्र को कथित नदी का जलग्रहण क्षेत्र, जलसंभरण क्षेत्र या बेसिन कहा जाता है । देश में कुल 14 प्रमुख नदी बेसिन है जिसमें से सिन्ध, गङ्गा तथा ब्रह्मपुत्र का नदी बेसिन प्रमुख माना जाता हैं । देश की 14 प्रमुख नदियों का जलागम क्षेत्र (बेसिन) देश के कुल क्षेत्रफल, जो कि लगभग 31.2 लाख वर्ग किमी. है, का 83% है । देश का कुल

वार्षिक जल प्रवाह 1645 अरब घनमीटर है जबकि इन चौदह प्रमुख नदियों के बेसिन का जल प्रवाह भारत के कुल जल प्रवाह का 85% अर्थात् 1406 अरब घनमीटर है ।

गङ्गा बेसिन का कुल क्षेत्रफल 1050,000 वर्ग किमी. है जिसमें से 861,404 वर्ग किमी. भारत में है तथा शेष बांगलादेश में है । गङ्गा का जलग्रहण क्षेत्र भारत के कई राज्यों में फैला है पर उसका सबसे अधिक भाग 34.2% उत्तर प्रदेश में है । गङ्गा के उत्तरी किनारे पर मिलने वाली सहायक नदियों का कुल बेसिन क्षेत्रफल 420,000 वर्ग किमी. है, जबकि दक्षिणी किनारे की सहायक नदियों का बेसिन क्षेत्रफल 5, 80,000 वर्ग किमी. है । बंगाल में गङ्गा की भगीरथी हुगली धारा में मिलने वाली सहायक नदियों का जलग्रहण क्षेत्र 60,000 वर्ग किमी. का है । गङ्गा के प्रवाह का 60% उत्तरी जलग्रहण क्षेत्र से आता है जबकि गङ्गा के उत्तरी बेसिन का क्षेत्रफल इसके दक्षिणी भाग का करीब तीन चौथाई ही है । इसका प्रमुख वार्षिक जल प्रवाह 493 अरब घनमीटर है । इस दृष्टि से गङ्गा का विश्व की नदियों में दसवाँ स्थान है। पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रह्मपुत्र बेसिन में ही इससे कुछ अधिक जल (510 अरब घन मी.) प्रति वर्ष प्रवाहित होता है । गांगेय क्षेत्र का जल प्रवाह देश के सभी नदियों के जल प्रवाह का लगभग 30% है ।

हरिद्वार से करीब 530 किमी. पर प्रयाग है यहाँ यमुना, गङ्गा से दक्षिणी किनारे पर आकर मिलती है, गङ्गा के उत्तरी किनारे की मुख्य सहायक नदियाँ हैं —

<u>रामगङ्गा</u> - इसका उद्गम गढ़वाल जिले में समुद्रतल से 3110 मी. की ऊँचाई पर है । यह कालागढ़ में मैदान में उतरती है और करीब 596 किमी. के प्रवाह के बाद कन्नौज के पास गङ्गा में मिलती है । इसकी सहायक नदियों खोह, गंगन, आरिल, कोसी तथा देववहा है । इसका जलग्रहण क्षेत्र 32493 वर्ग किमी. है ।

गोमती - इसका उद्गम पीलीभीत के समीप है । यह उद्गम स्थल समुद्रतल से करीब 200 मीटर की ऊँचाई पर है । इसकी लम्बाई 940 किमी. है तथा जलागम क्षेत्र 30437 वर्ग किमी. है । इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं - सई, गचई, जोमकई, बरना, चूहा तथा सरयू ।

घाघरा - इसका उद्गम मानसरोवर झील के पास है तथा जलग्रहण क्षेत्र 127.950 वर्ग किमी. का है जिसका 45% नेपाल में है । घाघरा में मिलने से पहले गङ्गा में जलप्रवाह की मात्रा घाघरा से कम होती है। इसकी सहायक नदियाँ - शारदा, सरयू, राप्ती, छोटी गंडक आदि हैं ।

गंडक - नेपाल तिब्बत सीमा पर समुद्रतल से 7620 मी. की ऊँचाई पर धौलागिरि के पास इसका उद्गम है । इसका जलग्रहण क्षेत्र 46300 वर्ग किमी. का है जिसमें से 7600 वर्ग किमी भारत में है । यह पटना के निकट गङ्गा में मिलती हैं ।

बूढ़ी गंडक - इसका उद्गम समुद्र से 300 मीटर की ऊँचाई पर बिहार के चम्पारन में है । इसका बेसिन क्षेत्रफल 10150 वर्ग किमी है तथा इसकी लम्बाई 320 किमी है । यह मुँगेर जिले में गङ्गा में मिलती है ।

कोसी - इसका उद्गम नेपाल में है । सोनकोसी, ताँबकोसी, अरुणकोसी तथा तामरकोसी की धाराओं के संगम से यह नदी बनती है। यह कुरसैला के पास आकर गङ्गा में मिलती है । यह विनाश और बाढ़ की नदी कहलाती है । इसका जलागम क्षेत्र 74500 वर्ग किमी. का है जिसमें से 1000 वर्ग किमी. भारत में है ।

महानन्दा - इसका उद्गम समुद्रतल से 2100 मी. की ऊँचाई पर दार्जिलिंग जिले में है । इसका बेसिन 20600 वर्ग किमी है जिसमें से 11530 वर्ग किमी भारत में है । यह बंगला देश-भारत की सीमा के पास बहती हुयी गोदागिरि के पास गङ्गा में मिलती है ।

(1) यमुना - गङ्गा की सहायक नदियों में यमुना सबसे

महत्वपूर्ण एवं धार्मिक तथा पौराणिक महत्त्व की नदी है । इसके बेसिन का कुल क्षेत्रफल 366223 वर्ग किमी. है । इसका उद्गम स्थल उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध चार धामों में से एक यमुनोत्री है । यह स्थल समुद्रतल से 6320 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है । यमुनोत्री ग्लेशियर से प्रयाग तक इस नदी की कुल लम्बाई 1376 किमी है । पर्वतीय क्षेत्रों में ऋषि गङ्गा दाहिने किनारे पर मिलने वाली इसकी मुख्य धारा है । बंदर पूछ की ढलानों से 3900 मीटर की ऊँचाई पर पहाड़ी टोंस नदी कलसी में यमुना से मिलती है । यहाँ टोंस का प्रवाह यमुना से दोगुना है । इलाहाबाद तक इसमें हिंडन, करन, सागर, रिन्द आदि उत्तर से तथा चंबल, सिंध, बेतवा तथा केन दक्षिण से आकर मिलती हैं । चंबल विन्ध्य पर्वतमाला से निकलकर 965 किमी प्रवाह के बाद इटावा में यमुना से मिलती है ।

कर्मनाशा - मिर्जापुर में कैमूर श्रेणी से निकलती है । यह उत्तर प्रदेश - बिहार की सीमा से बहती हुयी चौरम के पास गङ्गा से मिलती है । इसके बेसिन का क्षेत्रफल 11709 किमी. है । दुर्गावती, चन्द्रप्रभा, खजुरी आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं ।

सोन - सोन गङ्गा के दक्षिणी किनारे से मिलने वाली एक बड़ी सहायक नदी है । इसका जलग्रहण क्षेत्र 71259 किमी. है । इसका उद्गम विन्ध्यक्षेत्र के शोणभद्र में समुद्रतल से 600 मीटर की ऊँचाई पर है । अपने उद्गम स्थल से गङ्गा में संगम तक इस नदी की लम्बाई 784 किमी है । यह दानापुर के पास गङ्गा में मिलती है ।

पुनपुन - यह पटना के पूरब गङ्गा में मिलती है । इसका उद्गम स्थल छोटा नागपुर है । इस नदी की लम्बाई 200 किमी है तथा इसके बेसिन का क्षेत्रफल 8530 वर्ग किमी है ।

किउल - यह नदी छोटा नागपुर से निकलती है तथा यह मुँगेर जिले में गङ्गा से मिलती हैं । इसकी लम्बाई 111 किमी. है तथा इसका जलसंभरण क्षेत्र 16580 वर्ग किमी. है ।

दामोदर - इसका उद्गम स्थल पलामू जिले में है । 541 किमी प्रवाहित होने के बाद हुगली में फुल्टा पर मिलती है । इसका जलसंभरण क्षेत्र 6050 वर्ग किमी. है ।

गङ्गा के 2525 किमी. लम्बी यात्रा पथ के ये कुछ सहयोगी नदियाँ हैं जो गङ्गा को अपना जल समर्पित करती हैं और बदले में गङ्गा इन्हें सागर तक की यात्रा कराती है । लम्बाई की दृष्टि से गङ्गा का एशिया में 15वाँ तथा विश्व में 39वाँ स्थान है । पर यह अपनी गोद 45 करोड़ आबादी का भरण-पोषण करती है और विश्व में इस क्षेत्र में इसका कोई शानी नहीं है । अब हम गङ्गा के किनारे बसे हुये प्रमुख नगरों एवं तीर्थों का दर्शन करेंगे ।

1- गंगोत्री - गोमुख से करीब 25 किमी उत्तर पश्चिम में यह प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है । समुद्रतल से यह स्थान करीब 2500 मीटर की ऊँचाई पर है । यहाँ का श्रीगङ्गा मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध है और इस मन्दिर में आदि शङ्कराचार्य जी महाराज द्वारा स्थापित गङ्गाजी की मूर्ति है । यहाँ सूर्य कुण्ड, विष्णु कुण्ड, ब्रह्म कुण्ड आदि तीर्थ हैं ।

2- भैरव घाटी - यहाँ भैरव मन्दिर है । इस स्थान से कुछ पहले जाड़ गङ्गा या जाह्नवी की धारा भागीरथी में मिलती है ।

3- हरसिल या हरिप्रयाग- यहाँ हरि गङ्गा तथा भागीरथी का संगम है ।

4- धराली - श्रीखण्ड शिखर से दूध गङ्गा यहाँ आकर भागीरथी में मिलती हैं । भागीरथी के दूसरे तट पर मुखबा मठ है जहाँ शीतकाल में गङ्गामूर्ति गंगोत्री से लाकर पूजी जाती है ।

5- उत्तरकाशी - यह उत्तराखण्ड का प्रसिद्ध तीर्थ है । यह भागीरथी, असि और वरणा नदियों के बीच में है । प्रचीन विश्वनाथ मन्दिर, एकादश रुद्र मन्दिर, गोपेश्वर, परशुराम, दत्तत्रेय, भैरव, अन्नपूर्णा, शिव-दुर्गा आदि मन्दिर है । यहाँ जड़ भरत मन्दिर तथा

आश्रम भी है जिसके पास ब्रह्मकुण्ड में श्रद्धालु अपने पितरों का पिण्डदान करते हैं ।

6- बदरीनाथ - भारत के चार धामों में से यह एक है । यह अलकनन्दा के तट पर स्थित है । बदरीनाथ के मन्दिर में भगवान् विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति ध्यानमुद्रा में शालिग्राम शिला की बनी है । जगद्‌गुरु आदि शङ्कराचार्य ने इस मूर्ति की स्थापना की थी । मन्दिर के कपाट शीतकाल में छः महीने के लिये बन्द रहते हैं ।

7- विष्णु प्रयाग- विष्णु गङ्गा तथा अलकनन्दा का संगम है ।

8- पाण्डकेश्वर-पाण्डु द्वारा स्थापित पाण्डकेश्वर या योगबदरी का मन्दिर है।राजा पाण्डु ने कुन्ती तथा माद्री सहित यहाँ तपस्या की थी ।

9- जोशीमठ- ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य मठ यहीं है । शीतकाल में छः महीने भगवान् बदरीनाथ की चलमूर्ति यहीं रहती है ।

10- रुद्रप्रयाग - यह तीर्थ मन्दाकिनी और अलकनन्दा के संगम पर अवस्थित है । केदार तथा बदरीनाथ धामों के मार्ग यहाँ से अलग होते हैं । यहाँ एक गुफा में कोटेश्वर महादेव का लिंग अवस्थित है ।

11- केदारनाथ - यह मन्दाकिनी के तट पर स्थित तीर्थ है । यहाँ शिवजी के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग अवस्थित है।

12- देवप्रयाग - यह भागीरथी और अलकनन्दा के संगम पर अवस्थित प्रसिद्ध तीर्थ है ।

13- ऋषिकेश - ऋषिकेश का पौराणिक नाम कुब्जाम्रक भी है । यहाँ त्रिवेणी घाट, लक्ष्मण झूला, मुनि की रेती आदि प्रसिद्ध स्थान है । यहाँ से गंगा मैदानों में उतरती है ।

14- हरिद्वार - सात पुरियों में वर्णित यहाँ मायापुरी है । यह महातीर्थ है । इसका पौराणिक महत्त्व भी बहुत अधिक है । हरिद्वार में गङ्गा अपने उद्गम स्थल से 12000 फुट की ऊँचाई से गिरती है और सात धाराओं में विभक्त हो जाती है । यही सप्तऋषि आश्रम भी है ।

यहाँ प्रति 12वें वर्ष कुंभ तथा छठे वर्ष अर्ध कुम्भ का धार्मिक मेला लगता है ।

15- शुकताल - मुजफ्फरनगर से तीस किलोमीटर दूर यह पवित्र थान गङ्गा किनारे स्थित है । यही श्रीशुकदेव जी ने महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाया था ।

16- गढ़मुक्तेश्वर - यही गङ्गा से बूढ़ गङ्गा का संगम भी है । यह तीर्थ गङ्गा के दाहिने किनारे पर स्थित है । यहाँ मुक्तेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर है ।

17- कन्नौज- यह पौराणिक स्थान है । महर्षि ऋचीक ने महाराज गाधि की कन्या सत्यवती से यहीं पर विवाह किया था । गङ्गा जी अब यहाँ से कुछ दूर बहती है ।

18- बिठूर - यह ध्रुव की जन्म स्थली एवं प्राचीन तीर्थ स्थल है । यहाँ का ब्रह्मघाट अत्यन्त प्रसिद्ध है ।

'**19- कानपुर** - यह उत्तर प्रदेश का वृहत्तम औद्योगिक नगर है और गङ्गा को प्रदूषित करने के लिये तथा अपने चर्म उद्योग के लिये प्रसिद्ध है ।

20- प्रयाग - यहीं गङ्गा और यमुना का संगम है । यह स्थल तीर्थराज कहा जाता है । वेदों से लेकर पुराणों तक में इन तीर्थ की महिमा भरी पड़ी है । यहाँ बना बेनी माधव मन्दिर और अक्षयवट प्रसिद्ध है । आजकल यह तीर्थ स्थल अकबर द्वारा बसाये गये इलाहाबाद जिले में पड़ता है ।

21- काशी - तीनों लोकों से न्यारी काशी गङ्गा के बाँयें तट पर स्थित हिन्दुओं का सबसे प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है । यहाँ विश्वेश्वर महादेव का ज्योतिर्लिंग स्थित है । यहाँ गङ्गा उत्तरवाहिनी हैं तथा यह मुक्ति प्रदायी तीर्थ स्थल माना जाता है । सप्तपुरियों में काशी की गणना होती है ।

22- बक्सर - बिहार में प्रवेश करने पर यह पहला तीर्थ स्थल

पड़ता है । महर्षि विश्वामित्र का आश्रम यही स्थित था जहाँ भगवान् राम लक्ष्मण ने विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा की थी ।

23- पटना - यह बिहार प्रान्त की राजधानी है । इसका प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था । यहाँ हिन्दुओं के तीर्थ के अतिरिक्त सिक्ख गुरु गुरु गोविन्द सिंह की जन्मस्थली भी है ।

24- सुल्तानगंज- यहाँ गङ्गा के बीच एक छोटे द्वीप पर अजगयबी नाना महादेव मन्दिर है । यहाँ से गङ्गाजल काँवर पर ले जाकर वैद्यनाथ धाम में चढ़ाते हैं ।

25- कलकत्ता - यह गङ्गातट पर स्थित सबसे विराट् नगर है। यहाँ 51 शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ है ।

26- गङ्गासागर - गङ्गा तट पर स्थित यह अन्तिम गङ्गातीर्थ है। यह गङ्गा और सागर के संगम पर स्थित है । यहीं गङ्गा अपनी यात्रा पूरी कर सागर की गोद में विश्राम करती हैं । यह कलकत्ता से लगभग 150 किमी दूरी पर पड़ता है । मकर संक्रान्ति को यहाँ तीन दिन का स्नान होता है ।

देवपगा को वैदिक नमस्कार -

यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती ।
यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्त माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥

हे सोम ! तुम इन्द्र के पानार्थ रसरूप में निकलो । जिस तीर्थ में गंगा, यमुना तथा पूर्वाभिमुख सरस्वती हैं और जिस तीर्थ में सोमेश्वर महादेव है, वहाँ आकर तुम मुझे अमृत (मुक्ति) प्रदान करो ।

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥

- ऋग्वेद परिशिट 3-4



पञ्चदश अध्याय

परिशिष्ट

1- हिन्दू धर्म कोष, सं. राजबलि पाण्डेय

2- मनुस्मृति - 2/6, मत्स्यपुराण - 52/7.

3- "इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंह्येत्" महाभारत - 1/1/267.

4- नारदीय पुराण - 2/24/7.

5- अथर्ववेद काण्ड - 11 सूक्त - 9 मन्त्र - 24. सं. श्रीराम शर्मा आचार्य

6- वृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय - 2 ब्राह्मण - 4, मन्त्र - 10.

7- छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय - 7 खण्ड - 1 मन्त्र - 2

8- मत्स्यपुराण - 53/3.

9- नारदीयपुराण - 2/24/7.

10- शतपथ ब्राह्मण - 13/4/13.

11- छान्दोग्य उपनिषद् - 7/1/2.

12- महाभारत - 1/1/267.

13- वायुपुराण - 1/20/1.

14- ब्रह्माण्ड पुराण - 1/1/71.

15- भागवत् - 3/12/39.

16- मत्स्यपुराण - 53/63.

17- वायुपुराण - 1/203.

18- वृ. उ. - 2/4/10. मन्त्र पर शांकरभाष्य

19- शतपथ ब्राह्मण - 13/4/3. पर सायण भाष्य
20- अमरकोष - 1/5/4.
21- नीलकण्ठ टीका (महाभारत - 1.5.1)
22- महाभारत आदिपर्व - 1/267-268.
23- निरुक्त - 3/19.
24- ब्रह्माण्ड पुराण - 1/1/37-38.
25- श्रीमद्भागवत - 2/10/1-2.
26- पद्मपुराण - 1/53.
27- मत्स्यपुराण - 53/3, 8,9,10.
28- विष्णुपुराण - तृतीय अंश - चौथा अध्याय - पाँचवां श्लोक
29- देवीभागवत - 1/3.
30- पद्मपुराण - 6/263/85.
31- भविष्यपुराण - 3.3.28.13.15.
32- मत्स्यपुराण - 53/67-68.
33- ऋग्वेद - 6/45/31.
34- ऋग्वेद - 10/75/5.
35- ऋग्वेद - 10/75/7.
36- ऋग्वेद नदीसूक्त खिलमन्त्र
37- शतपथ ब्राह्मण काण्ड 13, अध्याय 5, ब्राह्मण 4, मन्त्र 11, ऐतरेय ब्राह्मण 39/9.
38- शतपथ ब्राह्मण - 13/5/4/11.
39- जैमनीय ब्राह्मण - 3/183.
40- रामोत्तर तापिनी उपनिषद् - 1/4.
41- श्रीमद्भागवत - 6/17/1-9.
42- श्रीमद्भागवत - 8/20/21-34, 8/21/1-4.
43- श्रीमद्भागवत - 8/21/4.

44- श्रीमद्भागवत - 6/17/9.
45- श्रीमद्भागवत - 9/8.
46- श्रीमद्भागवत - 9/9/6.
47- श्रीमद्भागवत - 9/9/12-13.
48- श्रीमद्भागवत - 9/9/14-15.
49- श्रीमद्भागवत - 9/8-9.
50- श्रीमद्भागवत - 11/6/13.
51- ऋग्वेद - 10/129.
52- ऋग्वेद - 10/129/1.
53- विष्णुपुराण - 2/8/104-114.
54- विष्णुपुराण - 2/8/120.
55- विष्णुपुराण - 2/8/121-122.
56- विष्णुपुराण - 4/4/31.
57- विष्णुपुराण - 4/4/34-35.
58- विष्णुपुराण - 4/7/1-6.
59- शिवपुराण कोटि रुद्र सं. - 4/43.44.45.46.
60- शिवपुराण कोटि रुद्र सं. - 26/24.
61- शिव पु. को. रु. सं. - 26/24.
62- शिव पु. रु. सं. - 4/26/6.
63- स्कन्दपुराण का.ख. पूर्वार्ध - 27/37.
64- स्कन्दपुराण का.ख. पूर्वार्ध - 27/37.
65- स्कन्दपुराण का.ख. पूर्वार्ध - 27/157-174.
66- वायुपुराण - 42/36-37.
67- वायुपुराण - 42/40.
68- मत्स्यपुराण - 104/8.
69- मत्स्यपुराण - 104/13-14.

70- मत्स्यपुराण - 106/51.
71- मत्स्यपुराण - 106/56.
72- मत्स्यपुराण - 107/4-11.
73- मत्स्यपुराण - 121/24-42.
74- अग्निपुराण - 110/43.
75- अग्निपुराण - 110/6.
76- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय - 25.
77- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड - 60/5-7.
78- प.पु.सृ.ख. - 60/26.
79- प.पु.सृ.ख. - 60/60-62.
80- प.पु.सृ.ख. - 60/78.
81- प.पु.सृ.ख. - 60/116.
82- प.पु.सृ.ख. - 60/123.
83- प.पु.स्वर्ग ख. - 39/86-87, 89-90.
84- प.पु.स्वर्ग ख. - 41/14-17.
85- प.पु.स्वर्ग ख. - 43/52-56.
86- प.पु.स्वर्ग ख. - 47/7.
87- प.पु.स्वर्ग ख. - 49/15-16.
88- प.पु. उत्तरखण्ड - 23/2.
89- प.पु. उत्तरखण्ड - 23/18-26.
90- प.पु. उत्तरखण्ड - 82/24.
91- प.पु. उत्तरखण्ड - 82/26-27.
92- प.पु. उत्तरखण्ड - 82/34-35.
93- प.पु. उत्तरखण्ड - 82/38-39.
94- कूर्म पु. पूर्वभाग - 31/49-50.
95- कूर्म पु. पूर्वभाग - 36/29-30.

96- कूर्म पु. पूर्वभाग - 37/34.
97- कूर्म पु. पूर्वभाग - 37/34-39.
98- ब्रह्माण्ड पु. मध्यभाग - 56/1-57.
99- वामन पुराण - 91/33-34.
100- वामन पुराण - 34/6-8.
101- वायुपुराण - 34/9.
102- ब्रह्मवैवर्त पुराण - 1.
103- ब्र.वै.पु. प्रकृतिखण्ड अध्याय - 10.
104- ब्र.वै.पु. द्वितीयभाग प्रकृतिखण्ड अध्याय - 11-12.
105- ब्र.वै.पु. प्रकृतिखण्ड - 6/48-51.
106- ब्र.वै.पु. प्र.खं. - 6/66. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
107- ब्र.वै.पु. प्र.खं. - 6/72-73.
108- ब्र.वै.पु. प्र.खं. - 6/85-89.
109- ब्र.वै.पु. गणपति खण्ड - 3/5-30.
110- ब्र.वै.पु. श्रीकृष्णजन्म खण्ड - 14/17-21.
111- ब्र.वै.पु. श्रीकृष्णजन्म खण्ड - 34/30-33.
112- ब्र.वै.पु. श्रीकृष्णजन्म खण्ड - 35.
113- श्रीमद्देवी भागवत - 2/3-4.
114- श्री. दे. भा. - 9/11.
115- श्री. दे. भा. - 9/12/16-43.
116- देवीभागवत पु. - 9/12,13,14.
117- ब्रह्मपुराण - 8/1-77. हिन्दीसाहित्य सम्मेलन प्रयाग
118- ब्रह्मपुराण - 71/14-22.
119- ब्रह्मपुराण - 71/23-34.
120- ब्रह्मपुराण - 71/36.
121- ब्रह्मपुराण - 73/60-63.

122- ब्रह्मपुराण - 73/64-69.
123- ब्रह्मपुराण - 74/1-88.
124- ब्रह्मपुराण - 75/19-20.
125- ब्रह्मपुराण - 75/35-45.
126- ब्रह्मपुराण - 78/1-77.
127- ब्रह्मपुराण - 105/1-30.
128- ब्रह्मपुराण - 107/50,51,52.
129- ब्रह्मपुराण - 119/11-12.
130- ब्रह्मपुराण - 120/3-4.
131- ब्रह्मपुराण - 175/80-85.
132- बृहन्नारदीय पुराण पूर्वभाग - 6/12.
133- बृहन्नारदीय पुराण पूर्वभाग - 6/27.
134- वृहन्नारदीय पूर्वभाग - 6/32-33.
135- वृहन्नारदीय पूर्वभाग - 6/64-65.
136- वृहन्नारदीय पूर्वभाग - 6/69-70.
137- वृहन्नारदीय पूर्वभाग - 9/146,147,148.
138- वृहन्नारदीय पूर्वभाग - 11/196-197.
139- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/3.
140- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/8.
141- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/20.
142- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/23.
143- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/24.
144- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/26.
145- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/27-35.
146- वृहन्नारदीय उत्तरभाग -
147- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/36.

148- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 38/36-40.
149- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 39/2-4.
150- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 39/14-22.
151- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 39/25-38.
152- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 39/38.
153- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 39/46.
154- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 40/1-32.
155- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 40/26-27.
156- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 43/109-111.
157- वृहन्नारदीय उत्तरभाग - 51/2-21.
158- नारदपुराण पूर्व - 6/12-13.
159- नारदपुराण पूर्व - 6/21.
160- नारदपुराण पूर्व - 6/24,27.
161- नारदपुराण पूर्व - 6/58,60.
162- नारदपुराण पूर्व - 6/67.
163- नारदपुराण उत्तरभाग - 38/8.
164- नारदपुराण उत्तरभाग - 38/20-27.
165- नारदपुराण उत्तरभाग - 38/34-35.

महाभारत में गङ्गा -

1- महाभारत आदिपर्व - 1/62-68.
2- महाभारत वनपर्व - 85/88-100.
3- महाभारत वनपर्व - 142/4-10
3- महाभारत वनपर्व - 142/4-10.
4- महाभारत उद्योगपर्व - 178/86-89.
5- महाभारत उद्योगपर्व - 182/15,16,17.
6- महाभारंत उद्योगपर्व - 186/34-38.

बाल्मीकीय रामायण में गङ्गा -

1- वाल्मीकीय रामायण - 1/35/12.

2- वाल्मीकीय रामायण - 1/41/19-20.

3- वाल्मीकीय रामायण - 1/43/26½- 30½

4- वाल्मीकीय रामायण - 1/44/6.

5- वाल्मीकीय रामायण - 1/44/14.

6- वाल्मीकीय रामायण - 2/50/11-17.

7- वाल्मीकीय रामायण - 2/50/22.

8- वाल्मीकीय रामायण - 2/50/27.

9- वाल्मीकीय रामायण - 2/50/28.

10- वाल्मीकीय रामायण - 2/52/82-91.

तुलसी वांगमय में गङ्गा -

1- रामचरित मानस - 1/27/8.

2- रामचरित मानस - 1/5/7.8.

3- रामचरित मानस - 1/6/3-9.

4- बृ. ना. पु. - 6/65,70.

5- रामचरित मानस - 1/6.

6- रामचरित मानस - 1/10.

7- महाभारत वनपर्व - 131/11.

8- ब्र. वै. पु. - 2/6/17.

9- रामचरित मानस - 1/15/1-2.

10- रामचरित मानस - 1/37/3.

11- रामचरित मानस - 1/39/1.

12- आनन्दरामायण / यात्राखण्ड - 4/91,92,93.

13- रामचरित मानस - 1/40/2-5.

14- रामचरित मानस - 1/43.

15- रामचरित मानस - 1/11/7.

16- रामचरित मानस - 1/43/1-5.

17- रामचरित मानस - 1/43/7,8.

18- रामचरित मानस - 1/44/1.

19- रामचरित मानस - 2/100/5.

20- रामचरित मानस - 2/101/1.

21- रामचरित मानस - 2/102/1.

22- रामचरित मानस - 2/102/2-7.

23- रामचरित मानस - 2/103/1.

24- रामचरित मानस - 2/104.

25- रामचरित मानस - 2/104/2-8.

26- रामचरित मानस - 2/105.

27- रामचरित मानस - 2/137/3-4.

28- रामचरित मानस - 2/189/1-4.

29- रामचरित मानस - 2/203/4.

30- रामचरित मानस - 2/215/1-3.

31- रामचरित मानस - 2/286/1-5.

32- रामचरित मानस - 6/119/6.

33- रामचरित मानस - 6/120/7.8.9.

34- रामचरित मानस - 7/126/5.





राजर्षि गांगेय हंस

जन्म - भाद्रपद अमावस्या संवत् 2008 विक्रमी तदनुसार दिनांक 1 सितम्बर 1951

जन्म स्थान - सराय गोकुल, [illegible], उ.प्र.

माता-पिता द्वारा प्रदत्त नाम - [illegible]ली सिंह

'स्वामिश्रीः' द्वारा प्रदत्त नाम - [illegible] हंस

उल्लेखनीय योग्यता एवं उपलब्धि - अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा दीक्षा एवं शिष्यत्त्व की प्राप्ति ।

जीवन का मूल मन्त्र - 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' ।

जीवन का उद्देश्य - सनातन धर्म के पूज्य ऋषियों, सन्तों एवं आचार्यों का दूत बनकर उनके अमृत-चिन्तन को जन-जन तक पहुँचाना । पिछले 35 वर्षों से यह कार्य अविकल रूप से पूरे भारत में चल रहा है ।

प्रकाशक

श्रीशंकराचार्य गंगा सेवा न्यास

श्रीविद्यामठ

बी. 6/97, केदारघाट, वाराणसी - 221001 (उ.प्र.)

चलभाष - 09670296702 ईमेल - gangaseva@gmail.com